शभूदयाल सकसेना :
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

नाट्यकला और कृतियाँ

जिल्द १

लेखक

डाक्टर रामचरण महेन्द्र

एम० ए० पी-एच० डी०

गवर्नमेन्ट कालेज कोटा (राजस्थान)

[हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास, सेठ गोविन्ददास : नाट्यकला एवं कृतियाँ, डी० पी० श्रीवास्तव की नाट्यकला, वृन्दावनलाल वर्मा की उपन्यास-कला, हिन्दी महाकाव्य और महाकाव्यकार, हिन्दी नाटक और नाटककार आदि पुस्तकों के रचयिता]

प्रगति प्रकाशन

बीकानेर

मुख्य वितरक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

● ●

प्रकाशक
प्रगति प्रकाशन
बीकानेर

मुद्रक
एजुकेशनल प्रेस,
बीकानेर

प्रथमावृत्ति अप्रैल १९६२
मूल्य ५/००

भूमिका

राजस्थान के पुराने बहुमुखी साहित्यकारों में बीकानेर के वयोवृद्ध साहित्यकार श्री शम्भूदयाल सक्सेना का स्थान महत्वपूर्ण है। गत चालीस वर्षों में सक्सेना जी की लेखनी से काव्य, नाटक, एकांकी, उपन्यास, आलोचना, कहानियां और बाल साहित्य प्रचुर मात्रा में निकला है, पुरस्कृत हुआ है, तथा राजस्थान एवं भारत भर में लोकप्रिय हुआ है। आपकी पुस्तकें स्कूल और कालेजों में पाठ्यक्रमों में लगी हैं और उनका विशेष अध्ययन हुआ है। आपके नाटक उच्च कक्षाओं में विशेषरूप से अध्ययन के लिए लगे हुए हैं। छोटे छोटे ग्रन्थ सक्सेना जी की कला पर लिखे भी गए हैं, पर वे अपूर्ण और एकांगी से रहे हैं। पाठकों और विद्यार्थियों की मांग थी कि सक्सेना जी के समग्र साहित्य पर एक स्वतन्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हो, उनके विचारों, कला, एवं कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश पड़े और अध्ययन में सहायता मिले।

राजस्थान के नाटक साहित्य के अध्येता और एकांकी साहित्य के विशेषज्ञ डा० रामचरण महेन्द्र ने अपने थीसिस "हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास" में सक्सेना जी की नाट्यकला और कृतियों पर संक्षेप में प्रकाश डाला था, पर इतिहास की उस पुस्तक में विस्तार से विचार करना कदाचित संभव न था। हमारे विशेष आग्रह पर उन्होंने सक्सेना जी के नाट्य-साहित्य पर विशेष और उनके शेष साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डाली है। इस पुस्तक से सक्सेना-साहित्य को समझने और परखने में बड़ी सहायता मिलेगी, क्योंकि इस पुस्तक में साहित्यकार श्री शम्भूदयाल सक्सेना के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में उपादेय नवीन और स्थायी सामग्री प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक द्वारा सक्सेना जी के साहित्य की विवेचना ही नहीं होती, वरन् उनके जीवन और अन्तर्मुख चेतना का भी दर्शन होता है। डा० महेन्द्र के निष्कर्ष मौलिक, और नए हैं, उनका विश्लेषण तथ्यपूर्ण एवं दृष्टि व्यापक है।

इस आलोचनात्मक पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने सक्सेना-साहित्य पर स्वस्थ पाठक की तरह विवेचन किया है, निर्मम और शुष्क आलोचक की तरह नहीं। गम्भीर अध्ययन की छाप स्थान स्थान पर है। विद्वान लेखक द्वारा व्यापक और निष्पक्ष रूप से सक्सेना-साहित्य को समझना और उसके रसास्वादन के लिए उपयुक्त बौद्धिक

एकता की उपलब्धि कर सकना इस पुस्तक के द्वारा संभव हुआ है। जिन परिस्थितियों और पारिवारिक वातावरण में सक्सेना जी की प्रतिभा पुष्पित और फलित हुई थी उसकी इतनी व्यापक जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। इस पुस्तक से राजस्थान के विद्यार्थी वर्ग और रसज्ञ पाठकों को बहुत सहायता मिलेगी और विद्वानों के चिन्तन को नवीन धाराएं प्राप्त होंगी। इस जिल्द में नाटक साहित्य पर विशेष रूप से विस्तृत सामग्री है।

हमें आशा है सक्सेना जी के उपन्यास और काव्य-साहित्य पर अगले भागों में विस्तार से विचार किया जायेगा।

नयापुरा, कोटा
(राजस्थान)

प्रोफेसर मोहनलाल वर्मा,
एम० ए० एल-एल० बी०

लेखक के दो शब्द

यह गौरव प्राप्त करने में मुझे प्रसन्नता है कि राजस्थान के शीर्ष साहित्यकार श्री शंभूदयाल सक्सेना के कृतित्व के एक विशेष अंग पर मैं इस पुस्तक में अपने विचार व्यक्त कर सका हूँ। सक्सेना जी ने इतनी तरह का और इतना प्रचुर साहित्य हिन्दी को दिया है कि उस पर किसी एक व्यक्ति द्वारा न्यायपूर्वक लिखा जाना वस्तुतः कठिन है। कविता कहानी उपन्यास नाटक एकांकी गद्यगीत और बच्चों के साहित्य के अतिरिक्त अनेक तरह की पाठ्यपुस्तकों के वे निर्माता हैं। अपने नाम से और भिन्न भिन्न नामों व उपनामों से उन्होंने जितना लिखा है उसका लेखा शायद ही कभी लगाया जा सके। १९५० से १९६० के बीच उन्होंने 'सैनानी' साप्ताहिक का संपादन किया। इस काल में उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का उपयोग विशेषकर राजनैतिक लेखमाला के रूप में हुआ। 'सैनानी' के अग्रलेखों और सम्पादकीय टिप्पणियों में उनकी लेखनी की तीव्र चुभन का अनुमान जिन लोगों ने अनुभव किया होगा। अनेक लेखों में उनके पत्र की उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती थी तो अनेक अर्थों में उसका प्रकाशन मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता था। निर्भीकता स्पष्टता और युक्तियुक्तता के द्वारा समाचारपत्र जगत में सक्सेना जी की लेखनी ने एक स्वस्थ परम्परा कायम की है। इसी का परिणाम हुआ कि अखिल राजस्थान समाचारपत्र संपादक सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के सभापतित्व के लिए उन्हें ही चुना गया। वे लेखक और साहित्यकार के अतिरिक्त एक सफल संपादक भी रहे हैं। 'सैनानी' में प्रकाशित उनके लेखों का संकलन कभी हो तो उनकी प्रतिभा का एक और पक्ष प्रकाश में आ सकता है। भावी लेखकों और संपादकों के लिए वह अवश्य मार्गदर्शन का काम करेगा।

इस ग्रन्थ में सक्सेना जी की नाट्यकला और उनके नाटकों व एकांकियों का ही परिचय दिया गया है और वह भी सरसरी दृष्टि से। उनके काव्य कहानी उपन्यास गद्यगीत और बाल साहित्य का परिचय देने का विचार तो है ही पर वह कब और किस प्रकार संभव होगा यह कहना कठिन है। अच्छा तो यह होगा कि उनकी रचनाओं के एक एक प्रकार का उस विषय के अधिकारी विद्वानों द्वारा मूल्यांकन किया जाय।

सक्सेना जी की लेखनी अब तक अविश्रान्त भाव से साहित्य-रचना में दत्तचित्त है, और आशा की जाती है कि अब जो साहित्य उनके द्वारा निर्मित होगा वह उनके व्यापक अनुभव के निचोड़ के रूप में और भी ऊँचे दर्जे का होगा। उनका नया नाटक 'मंसारों की मौत' मेरी इस धारणा की परिपुष्टि करता है।

गवर्नमेंट कालेज, कोटा — रामचरण महेन्द्र

विषय सूची

पहला खंड

दूसरा खंड

तीसरा खंड

चौथा खंड

पांचवां खंड



श्री शंभूदयाल सक्सेना



श्री [illegible]

है

। स्वयं
पानेवाला
कारण
ने अपने
। उसकी
मारी के
ाल तक
२१ का
ही मारा
ान की।
र निकम
ल हुई
। स्कूल
उचित न
गह कुछ
। यहाँ
। किया
अनुवाद

ाष्ट्रीय
उनकी
लिए
सिव
र से
ड़ाई
की
पूरी

प्रथम खण्ड

(१) श्री शम्भूदयाल सक्सेना व्यक्तित्व और उसका विकास

१– जीवन-परिचय

परिवार तथा परिस्थितियाँ

साहित्यकार श्री शंभूदयाल सक्सेना का जन्म फर्रुखाबाद नगर में संवत् १९५८, पौष शुक्ल नवमी को हुआ था। आपके पिता श्री गुरुप्रसाद जी सरकारी वकील के मुन्शी थे। कायस्थ समाज में उन दिनों उर्दू और फारसी का ही प्रचार था। जीवन यापन के लिए जिस जाति को कलम पर ही निर्भर रहना था उसके लिए सरकारी दफ्तरों में प्रचलित भाषा के अतिरिक्त और किसका सहारा होता? मध्यम श्रेणी के परिवारों में अंग्रेजी के प्रति अनुराग तो था ही परन्तु बच्चों की शिक्षा का आरम्भ 'बिस्मिल्ला अल् रहिमानुर्रहीम' से ही कराया जाता था। उस समय हिन्दी पढ़कर कुछ कर गुजरने पर किसी को विश्वास न था। हिन्दी की पढ़ाई किसी काम आयेगी, इस पर उन लोगों को भी आस्था कम ही थी जो हिन्दी के हिमायती थे। अतः बालक शंभूदयाल के परिवार में भी उर्दू फारसी ही चलती थी। उर्दू के वातावरण में ही उनके शैशव के प्रारम्भिक वर्ष बीते। वे ढाई साल के ही थे कि उनकी माता का देहान्त हो गया। भाई बहिनों में सबसे छोटे होने के कारण माँ की मृत्यु के उपरान्त उनका लालन पालन पिताजी के लिए एक समस्या हो उठा। उसका हल उनकी मौसी और चाची द्वारा जिनके कोई संतान न थी दो छोटे बहन भाइयों को अपने यहाँ गाँव में ले जाने से हुआ। माँ की मृत्यु के कुछ समय बाद ही वे फर्रुखाबाद से अलीगढ़ चले गये। अलीगढ़ गंगा पार एक गाँव था। उन दिनों तहसील का सदरमुकाम होने से उस छोटे से गाँव में तहसील थाना और डाकघर सभी कुछ थे, परन्तु स्कूल नहीं था। स्कूल था अलीगढ़ से आठ मील दूर राजेपुर में। अपर प्राइमरी कक्षाओं तक वहाँ अध्ययन होता था।

अलीगढ़ एक छोटा गाँव था। गंगा और रामगंगा के मध्य में होने के कारण

वहाँ तथा आसपास प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुहावने थे। अमरोहे शहर के वातावरण ने आगे बालक पंचूदयाल के मन पर गहरा प्रभाव डाला। उनकी रचनाओं में प्रकृति का जो मनोहर चित्रण मिलता है वह इसी प्रभाव से संभूत है। छः सात वर्ष की अवस्था में उनके पढ़ने लिखने की समस्या सामने आई तो उस समय की प्रथा के अनुसार चाचा ने एक मौलवी साहब को सौंपा। विधिवत पट्टी पूजी गई पर मौलवी साहब के मकतब में बालक का जी न लगा। एक के पश्चात् एक कितने मौलवी बदले गये, पर साधारण अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त कोई प्रगति न हो सकी। एक सप्ताह पढ़ाई होती तो तीन सप्ताह बीमारी चलती थी। चाची के लाड़ प्यार और मौलवियों की कामचिलाई में इतना अधिक अन्तर था कि बालक उन दोनों के बीच में अपने को फिट नहीं कर पा रहा था। सबको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह बालक पढ़ने लिखने वाला नहीं है। परिवार में बहुत चिंता होने से लोगों ने यह सलाह दी कि उसे स्कूल में प्रविष्ट करा दिया जाय। स्कूल था दूसरे गाँव में और चाची को अबोध बालक पर भरोसा न था। कैसे बालक इतनी दूर जायेगा फिर आयेगा और फिर जायेगा और फिर शाम को आयेगा। उनका प्रेम उसे घर में ही घेर कर रखना चाहता था। अन्ततः बालक की इच्छा चाचा की प्रेरणा और साथियों के प्रोत्साहन से बालक को रानीपुर के अपर प्राइमरी स्कूल में प्रविष्ट करा दिया गया। उर्दू के स्थान पर उसने हिन्दी पढ़ना पसंद किया। थोड़े ही दिनों में अध्यापक उसकी असाधारण प्रतिभा बुद्धि और योग्यता की चर्चा करने लगे। हिन्दी उसे अपनी स्वाभाविक रुचि के इतनी अनुकूल पड़ी कि वह सदा कक्षा में सबसे आगे रहने लगा। सबको आश्चर्य होता था कि इतना कम पढ़ने लिखने वाला बालक किस प्रकार कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर लेता है। परन्तु फिर तो जब तक पढ़ाई चली इस नियम में कभी व्याघात नहीं हुआ। इसका कारण शायद बालक में किसी लेखन-प्रतिभा का होना हो सकता है जिसका ज्ञान किसी को नहीं था। स्वयं वह भी नहीं जानता था कि किसी दिन उसे लेखन को अपने जीवन का मुख्य ध्येय बनाना पड़ेगा।

अलीगढ़ में अपर प्राइमरी स्कूल से आगे शिक्षा की व्यवस्था न थी और चाची चाचा को बालक से इतना स्नेह हो गया था कि वे उसे कहीं बाहर भेजने को तैयार न थे। परन्तु बालक पंचूदयाल की आगे पढ़ने की इच्छा थी। अन्त में बालक की अदम्य इच्छा की विजय हुई और वह आगे पढ़ने के लिए फरुखाबाद अपने बड़े भाई

श्री भगवतीप्रसाद के पास आ गया। श्री भगवतीप्रसाद बड़े सूझबूझ के व्यक्ति थे। स्वयं उर्दू-दाँ थे, पर इस बात का उन्हें दृढ़ निश्चय था कि आगे हिन्दी का युग आनेवाला है। अखबारी राजनीति का बहुत बारीकी से अध्ययन करने के कारण देश के भविष्य के विषय में उनके विचार बहुत स्पष्ट और निश्चित थे। उन्होंने अपने छोटे भाई को हिन्दी की ओर प्रवृत्त करने में सदा उत्साहित किया और जब उनकी शिक्षा-दीक्षा उन्हीं पर आ गई तब तो बड़ी लगन से उन्होंने दो महीने की तैयारी के बाद ही उसे फर्रुखाबाद के मिशन हाई स्कूल में प्रविष्ट करा दिया। पाँच साल तक बालक शंभुदयाल ने मिशन हाई स्कूल में शिक्षा पाई कि आ गया १९२१ का ऐतिहासिक वर्ष जब असहयोग की आँधी में हजारों लाखों छात्रों के जीवन की धारा सदा के लिए बदल गई। मिशन हाई स्कूल के छात्रों ने भी सामूहिक हड़ताल की। 'महात्मा गांधी की जय' के नारों के साथ तीन चार सौ लड़के स्कूल छोड़कर निकल आये। उनकी शिक्षा के लिए स्थानीय नेताओं ने फर्रुखाबाद नगर में नेशनल हाई स्कूल की स्थापना की। बाद में हड़ताल करने वाले अधिकांश छात्र अपने पुराने स्कूल लौट गये परन्तु कुछ छात्र वापस नहीं गये। उन्हें क्षमायाचना करके स्कूल में जाना उचित न जँचा। वे नेशनल हाई स्कूल में पढ़ने लगे। इस राष्ट्रीय स्कूल में शिक्षा का ढंग कुछ कुछ बदला हुआ था, और छात्रों को राष्ट्र निर्माण के कार्यों में भी लगाया जाता था। यहाँ छात्र शंभुदयाल ने पढ़ाई के साथ साथ एक हस्तलिखित मासिक पत्रिका का संपादन किया और उसके लिए "माडर्न रिव्यू" और "इंडियन रिव्यू" के कई लेखों का स्वयं अनुवाद किया।

उस समय आन्दोलन तीव्रगति से चल रहा था और फलस्वरूप अनेक राष्ट्रीय दैनिक बंद हो गये थे। कुछ के साइक्लोस्टाइल संस्करण निकलते थे। उनकी परिमित संख्या में प्रतियाँ आ जाती थीं। मुख्य समाचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए नगर में स्थान स्थान पर ब्लैक बोर्ड लगे थे। रोज के समाचार उन बोर्डों पर लिख दिए जाते थे। यह कार्य छात्र शंभुदयाल ने बराबर तब तक किया जब तक पत्रों पर से प्रतिबन्ध नहीं उठा लिया गया। इस तरह आन्दोलन में भाग लेने के साथ साथ पढ़ाई भी चलती रही और इसी काल में छात्र शंभुदयाल ने गुजरात विद्यापीठ से मैट्रिक की परीक्षा पास की। अगले वर्ष काशी विद्यापीठ की प्रवेशिका परीक्षा में बैठे, परन्तु पूरी तैयारी न होने के कारण तर्कशास्त्र में अनुत्तीर्ण रहे। काशी से वापस आकर छात्र

शंभुदयाल ने लाला लाजपतराय जी से पत्र व्यवहार आरंभ किया। लाला जी ने बड़ी प्रसन्नता और आत्मीयता से छात्रवृत्ति देकर उन्हें लाहौर आने की स्वीकृति दे दी परन्तु बड़े भाई साहब ने फर्रुखाबाद में रहकर ही अध्ययन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा क्यों नहीं दे लेते? अतः युवक शंभुदयाल जुट और लग गये और क्रमशः विशारद संपादन कला विशारद व साहित्यरत्न परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। साहित्यरत्न परीक्षा में बैठने से पूर्व उस समय एक वृहत् निबन्ध (थीसिस) देना पड़ता था। रामचरितमानस और रामचंद्रिका' शीर्षक ढाई सौ पृष्ठ का तुलनात्मक अध्ययन थीसिस के रूप में प्रस्तुत करने पर उन्हें साहित्यरत्न परीक्षा देने योग्य समझा गया। शायद साहित्यरत्न परीक्षा के निमित्त स्वीकृत यह दूसरा निबंध था।

इसके बाद उनकी रुचि साहित्यिक कार्यों की ओर विशेष रूप से हो गई। उन्होंने प्रयाग जाकर 'चांद' के संपादक श्री रामरखसिंह सहगल से भेंट की और कुछ दिन 'चांद' में काम भी किया। फिर भाई भगवतीप्रसाद जी ने इन्हें फर्रुखाबाद बुला लिया और तभी देवा दास सम्मेलन के प्रचार मंत्री श्री रामनारायण चतुर्वेदी की ओर से उन्हें सम्मेलन में काम करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। परन्तु सम्मेलन में कुछ महीने ही उन्होंने काम किया। इसके बाद इंडियन प्रेस में स्थान मिल गया और वहां चले गये। प्रयाग में इनकी घनिष्ठता श्री विजय वर्मा, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री पदुमलाल बख्शी श्री गिरिजादत्त शुक्ल श्री आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव आदि से हुई। उस काल के और भी अनेक लेखकों से इनका परिचय हुआ। यहीं इन्होंने श्री विजय वर्मा और भगवती प्रसाद वाजपेयी के साथ मिलकर "मीठी चुटकी" नामक उपन्यास लिखा। इसी काल में इनकी अनेक कविताएं और कहानियां उस समय की प्रसिद्ध पत्रिकाओं माधुरी' 'सरस्वती' और विशाल भारत' आदि में छपीं। इन्हीं दिनों भारती परिषद् पटना से इनका कहानी संग्रह 'चित्रपट' छपा और साहित्य निकेतन दारागंज प्रयाग से बहूरानी' उपन्यास। परन्तु उस समय पुस्तकों से आर्थिक लाभ नाम मात्र को ही होता था, अतः न चाहते हुए भी इन्होंने प्रो० दयाशंकर जी दुबे की प्रेरणा से पाठ्य-पुस्तकों की एक सीरीज लिखी। उस ग्राम्य पाठमाला को इंडियन प्रेस ने छापा और वह कई साल तक पाठ्यक्रम में रही।

प्रयाग में रहते समय इनका परिचय उस समय के सभी प्रमुख साहित्यकारों से हुआ। कवित्व प्रधान इनकी प्रतिभा को कथा-शिल्प की प्रेरणा यहीं से मिली। आगे

प्रकट होनेवाली कई पुस्तकों की रूपरेखा इसी काल में बनी। यह पहला मोड़ था जहाँ आकर उन्हें यह सोचना पड़ा कि कविता या कहानी किस माध्यम से वे अपने आपको ठीक तरह अभिव्यक्त कर सकते हैं। उस समय इसका निर्णय नहीं हो पाया। और दोनों प्रकार की रचनाओं का प्रणयन जारी रहा। साथ ही बाल साहित्य की सृष्टि भी करते रहे। उस समय के इनके समस्त साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह की जड़ता के साथ साथ घरेलू जीवन का स्पंदन ही अधिक मिलता है। १६५१ में अचानक परिवर्तन आया। वे प्रयाग छोड़कर बीकानेर आ पहुँचे और साहित्यिक चक्र से निकलकर अध्यापक बन गये। यह परिवर्तन इन्होंने आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री के परामर्श और आग्रह के अनुसार स्वीकार किया। वे कहा करते थे कि कोरी साहित्य सेवा से जीवन-निर्वाह अभी तक सम्भव नहीं है। शायद कोई युग आये जब हो।

जीवनयापन के लिए अध्यापन स्वीकार करके वे प्रयाग से बीकानेर आये और सेठिया संस्थाओं व सेठिया नाइट कालेज में अध्यापक के रूप में सोलह वर्ष तक कार्य किया। साहित्य साधना बराबर चलती रही। उपन्यास कहानी संग्रह, कविता संग्रह खंडकाव्य आलोचनात्मक निबंधों व बाल साहित्य की इनकी अनेक पुस्तकें निकलीं। इस काल में इनकी प्रतिभा में नाटक और एकांकी रचना का और योग हुआ। जो आगे चल कर इनकी कला का एक प्रमुख प्रकार बन गया। इनकी नाट्य-रचना के कौशल का उल्लेख 'Indian Drama नामक पुस्तक में Hindi Drama and Theatre अध्याय के अन्तर्गत इन शब्दों में हुआ है, Of the more recent playwrights in this stream, mention may be made of Shambhu Dayal Saksena and Vimla Rama both of whom have turned out to be surprisingly refreshing in their outlook and delightfully spontaneous in their technique. There is more action in their plays than in those of some of the better known playwrights. अब तो नाटक और एकांकीकार के रूप में सक्सेना जी का बहुत ऊंचा स्थान है। इनके अब तक लगभग सौ एकांकी और अनेक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने पिछले वर्ष कालिदास के 'मेघदूत' काव्य का नाट्य रूपान्तर प्रस्तुत करके नया प्रयोग किया है जो काफी सफल रहा है। 'बापू ने कहा था' महात्मा गांधी के अन्तिम वर्षों का ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करता है। इनके नवीनतम नाटक 'आग की

*Indian Drama Page 31

शंभुदयाल ने लाला लाजपतराय जी से पत्र व्यवहार प्रारंभ किया। लाला जी ने बड़ी प्रसन्नता और आत्मीयता से छात्रवृत्ति देकर उन्हें लाहौर आने की स्वीकृति दे दी परन्तु बड़े भाई साहिब ने फर्रुखाबाद में रहकर ही अध्ययन करने की सलाह दी। उन्होंने कहा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षा क्यों नहीं दे लेते ? अतः युवक शंभुदयाल उस ओर लग गये और क्रमशः विशारद, संपादन कला विशारद व साहित्यरत्न परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। साहित्यरत्न परीक्षा में बैठने से पूर्व उस समय एक वृहत् निबन्ध (थीसिस) देना पड़ता था। 'रामचरितमानस और रामचंद्रिका' शीर्षक ढाई सौ पृष्ठ का तुलनात्मक अध्ययन थीसिस के रूप में प्रस्तुत करने पर उन्हें साहित्यरत्न परीक्षा देने योग्य समझा गया। शायद साहित्यरत्न परीक्षा के निमित्त स्वीकृत वह दूसरा निबंध था।

इसके बाद उनकी रुचि साहित्यिक कार्यों की ओर विशेष रूप से हो गई। उन्होंने प्रयाग जाकर 'चांद' के संपादक श्री रामरखसिंह सहगल से भेंट की और कुछ दिन 'चांद' में काम भी किया। फिर भाई भगवतीप्रसाद जी ने इन्हें फर्रुखाबाद बुला लिया और तभी भेजा जब सम्मेलन के प्रचार मंत्री श्री रामनारायण चतुर्वेदी की ओर से इन्हें सम्मेलन में काम करने के लिए नियुक्त कर दिया गया। परन्तु सम्मेलन में कुछ महीने ही उन्होंने काम किया। इसके बाद इंडियन प्रेस में स्थान मिल गया और वहां चले गये। प्रयाग में इनकी घनिष्ठता श्री विजय वर्मा श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी श्री पदुमलाल बख्शी श्री गिरिजादत्त शुक्ल, श्री जानकीप्रसाद श्रीवास्तव आदि से हुई। उस काल के और भी अनेक लेखकों से इनका परिचय हुआ। यहीं इन्होंने श्री विजय वर्मा और भगवती प्रसाद वाजपेयी के साथ मिलकर 'मीठी चुटकी' नामक उपन्यास लिखा। इसी काल में इनकी अनेक कविताएं और कहानियां उस समय की प्रसिद्ध पत्रिकाओं 'माधुरी' 'सरस्वती' और 'विशाल भारत' आदि में छपीं। इन्हीं दिनों भारती पब्लिशर्स पटना ने इनका कहानी संग्रह 'चित्रपट' छापा और साहित्य निकेतन दारागंज प्रयाग ने 'बहूरानी' उपन्यास। परन्तु उस समय पुस्तकों से आर्थिक लाभ नाम मात्र को ही होता था अतः न चाहते हुए भी इन्होंने प्रो० दयाशंकर जी दुबे की प्रेरणा से पाठ्य-पुस्तकों की एक सीरीज लिखी। उस ग्राम्य पाठशाला को इंडियन प्रेस ने छापा और वह कई साल तक पाठ्यक्रम में रही।

प्रयाग में रहते समय इनका परिचय उस समय के सभी प्रमुख साहित्यकारों से हुआ। कविवर प्रसाद इनकी प्रतिभा को कथा-शिल्प की प्रेरणा यहीं से मिली। आगे

प्रकाश होनेवाली कई पुस्तकों की रूपरेखा इसी काल में बनी। यह पहला मोड़ था जहां आकर उन्हें यह सोचना पड़ा कि कविता या कहानी किस माध्यम से वे अपने भावको ठीक तरह अभिव्यक्त कर सकते हैं। उस समय इसका निर्णय नहीं हो पाया। और दोनों प्रकार की रचनाओं का प्रणयन जारी रहा। साथ ही बाल साहित्य की सृष्टि भी करते रहे। इस समय के इनके समस्त साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रति मोह की प्रबलता के साथ साथ घरेलू जीवन का स्पंदन ही अधिक मिलता है। १९११ में अचानक परिवर्तन आया। ये प्रयाग छोड़कर बीकानेर आ पहुंचे और साहित्यिक क्षेत्र से निकलकर अध्यापक बन गये। यह परिवर्तन इन्होंने आचार्य चंद्रशेखर शास्त्री के परामर्श और सलाह के अनुसार स्वीकार किया। वे कहा करते थे कि कोरी साहित्य सेवा से जीवन निर्वाह अभी तक संभव नहीं है। शायद कोई युग आये जब हो।

जीवनयापन के लिए अध्यापन स्वीकार करके ये प्रयाग से बीकानेर आये और सेठिया संस्थाओं व सेठिया नाइट कालेज में अध्यापक के रूप में सोलह वर्ष तक कार्य किया। साहित्य साधना बराबर चलती रही। उपन्यास कहानी संग्रह कविता संग्रह खंडकाव्य, आलोचनात्मक निबंधों व बाल साहित्य की इनकी अनेक पुस्तकें निकलीं। इस काल में इनकी प्रतिभा में नाटक और एकांकी रचना का और योग हुआ। जो आगे चल कर इनकी कला का एक प्रमुख प्रकार बन गया। इनकी नाट्य-रचना के कौशल का उल्लेख Indian Drama नामक पुस्तक में Hindi Drama and Theatre अध्याय के अन्तर्गत इन शब्दों में हुआ है, Of the more recent playwrights in this stream, mention may be made of Shambhu Dayal Saksena and Vimla Rama both of whom have turned out to be surprisingly refreshing in their outlook and delightfully spontaneous in their technique There is more action in their plays than in those of some of the better known playwrights.* आज तो नाटक और एकांकीकार के रूप में सक्सेना जी का बहुत ऊंचा स्थान है। इनके अब तक लगभग सौ एकांकी और अनेक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने पिछले वर्ष कालिदास के मेघदूत काव्य का नाट्य रूपान्तर प्रस्तुत करके नया प्रयोग किया है जो काफी सफल रहा है। 'बापू ने कहा था' महात्मा गांधी के अन्तिम क्षणों का ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करता है। इनके नवीनतम नाटक 'प्राण की

---

*Indian Drama Page 31

जिसमें और 'ग़द्दारों की मौत' क्रान्तिकारी शहीदों के जीवन पर लिखे गए हैं, जो मुद्रण में हैं। 'नेहरू के बाद तथा अन्य एकांकी' एकांकी संकलन अभी अभी प्रकाशित हुआ है इसमें पच्चकोटि के ग्यारह एकांकी हैं और जीवन के भिन्न भिन्न पहलुओं पर मार्मिक व्यंग्य प्रस्तुत करते हैं। उनकी लेखनी को नाट्य रचना का मर्म पकड़ में आ गया है।

नाटकों की ओर प्रवृत्ति

सन् १६६२ ई० में श्री सक्सेना जी लाहौर किसी कार्यवश गए थे। वहाँ हिन्दी भवन के संचालक श्री वेदव्रत भारत ने अनुरोध किया कि हमें बच्चों के लिए आज ही एक नाटक लिखकर दीजिए। यह एक अजीब मांग थी। वे उसे किसी पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित करना चाहते थे। सक्सेना जी के लिए यह नया प्रयोग था। उनकी मांग को वे अवहेलना न कर सके और रामायण के कथानक से एक घटना लेकर 'भ्रातृ प्रेम' नामक एक पौराणिक बालोपयोगी एकांकी लिख दिया। यह एक सफल रचना थी। बाद में यह एकांकी "पंचवटी" नामक संग्रह में छपा। उनकी इस सफलता ने विकास की एक नई दिशा मिली। एक नई तरह उनकी सृजनात्मक शक्ति जगने लगी। बच्चों के मस्तिष्क को एक नई विकास दिशा देने के लिए उन्होंने एक एक करके सात एकांकी लिखे जो 'गंगाजली' में छपे। इनमें एकांकी की टैकनीक का कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। केवल बच्चों की संवाद के रूप में कोई आदर्शवादी चीज रोचक बना कर दी गई है। इन एकांकियों में नाटकीय शिल्प-विधान या कालविभाजन या दृश्य विधान आदि की ओर नाटककार की दृष्टि नहीं गई है। "गंगाजली" के प्रकाशन के बाद स्कूलों में इसका प्रचार बढ़ा। बच्चों के लिये एकांकी थे नहीं। स्कूलों में जहां तहां इनका अभिनय भी हुआ, पढ़ने में बच्चों को रुचि हुई। इस सफलता से इनके बालोपयोगी एकांकियों की मांग निरंतर बढ़ती रही। अतः इन्होंने चार और एकांकी लिखे जो "वल्कल" नामक संग्रह के नाम से प्रकाशित हुए। "गंगाजली" को श्री रमणीक चिमनलाल मेहता, नामक एक गुजराती लेखक ने विशेष पसंद किया और दोनों संग्रहों का अनुवाद गुजराती में छापा। उन्होंने यह भी मांग की कि रामायण के अन्य मर्मस्पर्शी स्थलों को भी एकांकियों के रूप में प्रस्तुत किया जाय। इस पर सक्सेना जी ने "पंचवटी" नामक पांच और एकांकी लिखे। ये पहिले की अपेक्षा परिष्कृत हैं। इनमें नाटकीय शिल्प विधान, पात्र सृष्टि और अभिनय का ध्यान

भी रखा गया है। इनके अनुरोध बराबर चलते रहे। फलतः 'पर्णकुटी' संग्रह में पांच और पौराणिक आदर्शवादी नाटक लिखे गए। इस प्रकार रामायण माला के चार एकांकी संग्रह तैयार हुए। इनमें प्राचीन भारतीय संस्कृति आदर्शों और पौराणिक जीवन की भव्य झाँकियाँ हैं। कथाएं कुछ तो रामायण से सीधे ही ज्यों की त्यों थोड़े बहुत अंतर से ली गई हैं कुछ मौलिक हैं जैसे 'पंचवटी' 'तापसी' आदि। "पर्णकुटी" संग्रह के सब एकांकी अधिकतर मौलिक हैं। कथा की पृष्ठभूमि रामायण की है, शेष सब काम नाटककार की मौलिक प्रतिभा की देन है। कथोपकथन में सरलता पर ध्यान है। दार्शनिकता से दूर रहने का प्रयत्न है। वे बहुत छोटे रहें जिससे बच्चे आसानी से उन्हें हृदयंगम कर सकें यह विशेष ध्यान रखा गया है। इस रामायण-माला के रचनाकाल में साथ साथ बच्चों के कई अन्य नाटक भी लिखे गए। कुछ नाटक जिनमें "साधनापथ' आता है प्रौढ़ों के लिए लिखे गए।

इसके अनन्तर "सगाई" नामक एक बड़ा सामाजिक समस्या-एकांकी लिखा गया। दहेज प्रथा को वे बहुत बुरा समझते रहे हैं। इसी प्रकार की अन्य सामाजिक विद्रूपताएं जीवन को कितना कटु बना सकती हैं इसका परिचय हमें इस नाटक में मिलता है। इस नाटक की प्रशंसा में 'आलोचना' जिसके अंक ६ (इतिहास दीपांक जनवरी १९५३ में 'हिन्दी रंगमंच और नाट्यरचना का विकास' शीर्षक लेख में श्री जगदीशचन्द्र माथुर लिखते हैं— 'हाल ही में बीकानेर से शंभू दयाल सक्सेना की 'सगाई' पढ़कर आभास हुआ मानों हिन्दी नाटक माला में एक नया मोती गुथा हो। इस नाटिका में समस्या का उद्घाटन होता है वक्ताओं के द्वारा नहीं बल्कि पात्रों के आचरण के द्वारा।

"विद्यापीठ' सन् १९४१ में लिखा गया था। इसमें सुविचारित कथा है। भारतीय युवक के त्याग और संयम के आदर्श को अंकित करने की सफल चेष्टा है। इस एकांकी की विरोधी समालोचनाएं भी हुई। कुछ प्रगतिशील आलोचकों ने इसकी आदर्शवादिता को पसंद नहीं किया। लेखक का उद्देश्य उस आदर्श की रक्षा करना ही रहा है। यह आदर्शवाद उनके नाटकों में सर्वत्र व्याप्त है। "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय" यही उनकी नीति रही है।

"मन्दरानी" एकांकी संग्रह १९५० में प्रकाशित हुआ। इसमें 'साग का घर" और मन्दरानी" पौराणिक पृष्ठभूमि पर लिखे हुए मौलिक एकांकी हैं। दोनों में

प्रतिसीम विचार बिन्दुओं को लेकर रचना की गई है। "लाख का घर" में लेखक ने दिखाया है कि जितने भी राज्य या धर्म के और धर्म के प्रयोजन होते हैं, वे असली निरीहों और गरीबों के श्रम रक्त, और अर्जित धन पर होते हैं। इन गरीबों का कहीं उल्लेख तक नहीं होता। 'गन्धराली' में यशोदा के हृदय की विशालता, माता के हृदय की भावना को अभिव्यक्त किया है। माता ही सबसे अमर है। यशोदा का मातृत्व ही सर्वोच्च अंकित किया गया है।

'चीवरधारिणी' संग्रह के एकांकियों में गति लिया कुछ परिवर्तन के साथ आई है। इसमें वे बौद्धकालीन इतिहास से विशेष प्रभावित हैं। उनमें बुद्ध द्वारा जीवन के हटाये हुए आडम्बर, तथा हिन्दू धर्म के बनावटीपन को दूर करने के प्रयत्न से विशेष प्रेरणा मिली है। बुद्ध एक युगान्तरकारी नेता थे जिन्होंने अपने विचार और वाणी से हिन्दू विचारविधि और दार्शनिक पद्धति को बिलकुल नया रूप प्रदान किया था। और उससे विद्वान से लेकर साधारण जन तक बच्चे बूढ़, स्त्री, पुरुष, धनवान, गरीब, कुटियों से लेकर महलों तक के व्यक्ति प्रभावित हुए। बुद्ध के इस प्रभाव को हटाने के लिए सनातनी हिन्दुओं को बड़ा संघर्ष करना पड़ा था। यदि मुसलमानों का प्रवाह न आता तो शायद हिन्दू बौद्धों का संघर्ष बहुत दिनों तक और बहुत व्यापक रूप से चलता रहता। हिन्दुओं के कार्य को इस्लाम की तलवार ने पूरा किया था। बौद्ध विचारधारा का यहां से समग्र लोप ही गया। उन्हीं बुद्ध के जीवन की कुछ भव्य स्मृतियों को इन एकांकियों में सन्निविष्ट किया गया है। पात्र प्रायः बौद्ध धार्मिक कथाओं से लिए गए हैं। उनको केवल प्रभावशाली बनाने के लिए कुछ कल्पना का स्पर्श कराया गया है। इसलिए वे अपनी दृष्टि से मौलिक हैं। इन एकांकियों में बौद्ध दर्शन की मान्यताएं अभिव्यक्त की गई हैं जिन्हें साधारण जन भी सरल के रूप ग्रहण कर सके। उनमें सत्य का आभास है। जहां तक युक्तियों का प्रश्न है जो स्वाभाविक रूप से दैनिक सामाजिक जीवन में सत्य हैं वे लेखक की अपनी मान्यताएं हैं। उदाहरण के लिए "कुटवाली" एकांकी में बुद्ध कहते हैं "मेरा आदेश है आनन्द ! कि इस श्मशान में जलाई हुई कन्याओं को उपस्थित करो कि वे अपनी कन्या को पहचान लें।"

महिषी और आनन्द बुद्ध की ओर देखते हैं, जिनसे प्रकाश चारों ओर बिकीर्ण हो रहा है।)

बुद्ध— "ममतामयी माता की चौरासी हजार कन्याएं इसी श्मशान में जलाई

जा चुकी हैं, कमली कोमल और कुम सी पवित्र। ये रहीं वे। महिषी देखो बोलो, तुम इनमें से किस कन्या के लिए विलाप कर रही हो? तुम माता हो, ममतामयी हो और ये सब पुत्रियां। तुम इनमें से किस एक के लिए व्याकुल हो?

—बुद्धवाणी

इसमें तत्त्वाभास तो केवल इतना ही है कि इस प्रकार की घटना साधारण जीवन में संभव नहीं है, किन्तु इसके द्वारा लेखक ने यह बहुत बड़ा सत्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है कि मां तभी तक मोहाच्छन्न रहती है जब तक वह विशेष व्यक्तित्व की कल्पना समझती है। जब यह तथ्य उसके समक्ष आ जाता है कि उसकी कन्या की तरह ही सारी सन्ततियां भी हैं वे भी उसी प्रकार काल-कवलित होती रहती हैं, तो उसका मोह और अज्ञानतिमिर दूर हो जाता है और जीवन के महान् से महान् दुःख सहने की उसमें क्षमता हो जाती है। इस सहज ज्ञान की उपलब्धि जिसको हो जाती है उसे संसार में कुछ पाने की लालसा नहीं रहती, तथा मां की वाणी उसी के मुंह से इस प्रकार निकलती है—

'अचिरावती नदी के तट पर, इस शान्त संध्या में आज मेरा नया जन्म हुआ है। मैं सर्वज्ञ बुद्ध, उनके धर्म और संघ की शरण जाती हूं।

इसी प्रकार बौद्ध दर्शन के संबंध में निम्नलिखित विचार भी स्वयं लेखक को मान्य हैं :—

यवनी— "मेरा चित्त आज पूरी तरह निर्मल है देव! मैं समझ रही हूं कि संसार दुःखपूर्ण है। शरीर के पीछे जरा और मृत्यु लगी हुई हैं। उनसे राजा रंक किसी का निस्तार नहीं है। निर्मल रागहीन मन से उन्हें जीता जा सकता है। मैंने अपने अन्तर की व्यथा पर विजय पा ली है।"

—बुद्धवाणी

सकसेना जी की सामाजिक विचारधारा तथा प्रभाव

धार्मिक क्षेत्र में धर्म के मूल तत्वों पर आस्था रखते हुए और जीवन में पूर्णरूप से चरितार्थ करते हुए भी उसके बाह्याडम्बर तथा बनावटीपन से सकसेना जी को बचपन से ही घृणा रही है। इस बाह्याडम्बर पर उन्होंने सदा व्यंग्य किया है चाहे वह धार्मिक जीवन में हो अथवा सामाजिक जीवन में। उसका फल यह हुआ कि जीवन की यथार्थता से जब साक्षात्कार हुआ, तब तथाकथित दिखावटी धर्म पर से उनका विश्वास

उठ गया ।

सक्सेना जी के बड़े भाई श्री भगवतीप्रसाद जी सक्सेना पूर्ण आस्तिक थे। पूजा पाठ, नियम, धर्म आदि का वे पूरी तरह पालन करते थे और उनका प्रभाव पूरी तरह सक्सेना जी के ऊपर भी पड़ा था। वे सभी हिन्दू पद्धतियों का सारा आचरण करने लगे थे, लेकिन उनको स्वतः इन सबके पीछे व्याप्त खोखलापन बनावटीपन और ढोंग मालूम हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि या तो भावुक जनता अज्ञानवश धर्म और सदाचार, कर्मकांड आदि में लिप्त रहती है या उसके द्वारा अपना स्वार्थ साधन करती है। इसलिए धर्म और धर्माचरण के सारे प्रयत्न निष्फल हैं। उनका पालन न करके मनुष्य शुद्धाचरण और सचाई द्वारा अपने कर्तव्यों का पालन कर सकता है। यह विचार धारा उनके सामाजिक एकांकियों में विशेष रूप से पाई जाती है। एक ओर जहाँ उनके मन में बनावटीपन और ढोंगपूर्ण प्रवंचना तथा धर्म के प्रति घृणा और ग्लानि उत्पन्न होती गई वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति के प्रति प्रेम भाव बढ़ता गया। बुरा से बुरा व्यक्ति भी क्यों न हो, उसे वे एकान्त बुरा नहीं मानते हैं। कई बार उनके जीवन में ऐसे दुर्बल चरित्र व्यक्ति आये हैं, लेकिन उन्होंने व्यक्ति से घृणा न कर उन्हें अपना प्रेम ही दिया है। अनेक बार इसमें धोखा भी हुआ है। परन्तु कई बार धोखा देने वाले व्यक्तियों में हृदय परिवर्तन भी देखने को मिला है इस अनुभव को वे व्यक्ति के प्रति साक्षात्कार होने के लिए पर्याप्त समझते हैं।

एक बार की बात है कि उनके किसी विश्वस्त मित्र ने उनके यहाँ एक नौकर रखा दिया था। उसकी विश्वसनीयता की प्रशंसा भी की थी। लेकिन यथार्थ में उस नौकर में चोरी और जुआ खेलने की आदत थी। वह विश्वसनीय न था। मित्र की सिफारिश के कारण सक्सेना जी को कभी उस पर सन्देह नहीं हुआ। वे सन्देह करने का कोई कारण ही न समझते थे। जब परिवार के व्यक्ति तक उसे बुरा बुरा कहते रहे और उसे हटाने की मांग पेश करते रहे स्वयं सक्सेना जी उसे निभाये गए। एक बार उन्होंने उसे ४०) देकर किसी कार्यवश भेजा वह दो तीन घन्टे पश्चात् लौटकर आया और रोनी सी सूरत बनाकर कहने लगा कि रुपये तो किसी ने जेब में से निकाल लिए हैं। इस पर सबने कहा कि इसने जरूर उन पैसों को किसी काम में लगा लिया है। लेकिन सक्सेना जी ने कहा कि दोनों बातें सम्भव हैं। इस प्रकार रुपये चुराये भी जा सकते हैं। फिर कोई १२-२० दिन बाद किसी कार्य के लिए उसे

१५०) रुपये दिये। वह लेकर गया और शाम तक नहीं लौटा। जब देर होगई तो माथा ठनका। आखिर कहाँ गया ? पूछताछ की जा रही थी कि उसी नौकर का संदेशा पुलिस स्टेशन से आया कि पुलिस ने जुआरियों पर छापा मारा था और अन्य जुआरियों के साथ उसे भी पकड़ ले गई थी। सक्सेना जी को अब विश्वास हुआ कि वास्तव में वह जुआरी ही था और जरूर उसने पहले भी जुआ खेला होगा। दो दिन बाद जब वह पुलिस से छूट कर सक्सेना जी के पास आया तो बहुत भूखा और प्यासा था। उसने अपने सारे जुर्म को स्वीकार कर लिया। अब क्या किया जाय ? सक्सेना जी ने कहा "अब तुम्हें हम नौकर नहीं रखेंगे।" वह बोला अब हम कहाँ जायें ? भूखे हैं। कौन हमें नौकर रखेगा ?' सक्सेना जी का मामला डरा और कहने लगा, "यह व्यक्ति खतरनाक है। इसे निकाल दीजिए। रात्रि में न जाने क्या कर गुजरे। वह उसे ठहराने के पक्ष में न था। सक्सेना जी ने कहा अच्छा, ठहर जाओ।" इस प्रकार वह दो तीन दिन और रहा। और जाते समय एक दुकानदार से सक्सेना जी के नाम से एक मन चीनी ले गया। वह तो उसे बेच कर रवाना ही गया। दुकानदार आया और उसने चीनी के दाम मांगे। वे चकित हो गये। इतनी क्या इतना धोखा। यह दो दोनों पर चलने वाला जानवर कैसा धोखाबाज हो सकता है। उन्होंने दुकानदार को आश्वासन दिया और उस व्यक्ति की तलाश प्रारंभ की। एक दिन यकायक वही नौकर आया और मेज पर २००) रु० रख कर कहा, "यह लीजिए आपके रुपये। पहले और बाद के, दस रुपय ब्याज के।' सब चकित थे। हैरान थे। सक्सेना जी बोले, "तुम्हारे ब्याज के रुपये हम नहीं लेते। लेकिन पहले यह बताओ कि ये सब रुपये तुम कहाँ से लाये हो ? उसने कहा "हम घर से जाकर रुपये लाये हैं। हमने आपका विश्वास खो दिया था। उसी का मूल्य दे रहे हैं। आपके यहाँ ही नौकरी करना चाहते हैं। उन्होंने कहा, "तुम हमारे नाम से उधार चीनी ले गए ?" उसने दुकानदार के रुपये भी चुकाये। इसके बाद भी वह निरन्तर नौकरी का प्रयत्न करता रहा। जब उसके घर से लाए हुए सारे रुपये समाप्त हो गए, तो फिर एक दिन आया और नौकर रखने के लिए आग्रह किया। न रखने पर चुपचाप सक्सेना जी के कमरे से उनकी घड़ी उठा ले गया। इस समय यह व्यक्ति जेल में है। लेकिन कभी उन्होंने उससे घृणा न की। वे मनुष्यों की सद्वृत्तियों पर विश्वास करते हैं। पतित से पतित व्यक्ति में भी ईश्वरत्व है। उसकी सद्भावनाओं पर उनका पूर्ण विश्वास रहता है।

उनके सामाजिक एकांकियों में प्रायः दो प्रकार के पात्र आये हैं (१) बाहर से आदर्श और सभ्य पर अन्दर से खोखले रहने वाले दंभी बोलेबाज (२) बाहर के खराब दूषित परित्यक्त पर अन्दर से सच्चाइयां धारण करनेवाले समाज के व्यक्ति, जो परिस्थितियों की चोट से गलत पथ का अनुसरण कर रहे हैं। इसमें उनका दोष नहीं दोष उस समाज तथा उन परिस्थितियों का है, जो उनकी अच्छाइयों को पनपने और विकसित होने का अवसर नहीं देते। उन्होंने अपने पात्रों के अन्तःस्थल को छूने और सबके सामने उजागर करने का प्रयत्न किया है। इनमें उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी पाया जाता है।

'विजया और वारुणी' संग्रह के ग्यारह सामाजिक एकांकियों में ऐसे पात्रों का चित्रण है, जो समाज में ऊंचा और मान्य स्थान पाये हुए हैं, किन्तु जो वस्तुतः समाज के लिए अभिशाप हैं। 'मलेरिया संचालक' एकांकी के भार्गव ने यह चेहरा लगा रखा है कि वे अच्छे कार्यकर्ता हैं। वैसे जनता की सेवा ही करते हैं पर वस्तुतः वे स्वार्थ साधन ही करते हैं। मलेरिया पीड़ितों से उन्हें कोई सहानुभूति नहीं है। उनके नाम पर वे खूब रुपया लूटते हैं उनके लिए आई हुई दवायें हड़प कर जाते हैं उनके लिए आई हुई सहायता अपने निजी काम में लगा लेते हैं। इसी प्रकार 'एक हजार का संवाद' एकांकी में एक पत्रकार अस्थाना है। वे संवाद इकट्ठ करते हैं और यह देखते हैं कि इन संवादों की कैसे कीमत उठाई जा सकती है। सुराणा नामक एक सेठ उनको रेलगाड़ी में मिलते हैं जो आढ़त का काम करते हैं। नफा, नुकसान लेनी देनी बिक्री बाजार, तेज मन्दी यही उनका संसार है। सेठ सुराणा ने अड़तालीस वर्ष की आयु में एक अल्पवयस्का कन्या से विवाह किया है। तीन वर्ष पूर्व उनकी पत्नी का देहान्त हो गया था। जब उन्हें यह युवती मिली तो उन्होंने उससे विवाह कर डाला। दम्पत्ति का एक फोटो भी खिंचवाया। रेल में सफर करते करते यह सब कुछ सेठ सुराणा पत्रकार अस्थाना से कह डालते हैं। सुराणा अपनी नई पत्नी के साथ खिंचा हुआ फोटो दिखलाते हैं। अस्थाना उस लड़की को पहचान लेते हैं। वह किशना मेहतर की लड़की थी जो तीन वर्ष से गुम थी। सेठ सुराणा ने महिला आश्रम में शादी की थी। इस बदनामी को बचाने के लिए पत्रकार अस्थाना उनसे २५) रु चाहते हैं। इसी बीच राधा चलती गाड़ी से झटककर कूद पड़ती है। गाड़ी रुक जाती है। डिब्बों में हल्ला होता है। "कोई कट गया रे, कोई मर गया रे।" गाड़ी ठहर कर आगे बढ़ती है। अब

प्रस्थाना बदनामी को बचाने के लिए ढाई सौ से कम नहीं लेना चाहते। मुरारण कर जाता है। गाड़ी ठहर जाती है और चोर और बढ़ जाता है। हत्या के जुर्म से डरा कर प्रस्थाना सेठ तुरमल से एक हजार रुपये वसूल कर लेते हैं।

हमारे सामाजिक जीवन में इस प्रकार का घृणित व्यापार करनेवाले दिखावटी चेहरों की कमी नहीं है। समाज में भ्रष्टाचार, मिथ्याचार धोखेबाजी करने वाले ऐसे व्यक्ति बहुत मिलते हैं। नाटककार श्री संमुदयाल सकसेना ने ऐसी मानवीय दुर्बलताओं सामाजिक विद्रूपताओं और धोखेबाजियों का अच्छा भंडाफोड़ किया है। कहीं कहीं ऐसे भी व्यक्ति मिलते हैं जो अपने गरीब मातहतों क्लर्कों, चपरासियों या कलवारों तक का रुपया न चुका कर उन्हें धोखा देकर या मनगढ़न्त बातें बनाकर ठगते हैं। सकसेना जी ने "विजया और वारुणी' में 'लोक सेवक' पत्र के सम्पादक शर्मा जी के रूप में एक ऐसे ही शिक्षित धोखेबाज का व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें पत्रकार जगत् में पाई जाने वाली अनेक निर्बलताओं का व्यंग्यपूर्ण चित्र खींचा गया है।

इस प्रकार सभ्यता और शिक्षा का ऊपरी जामा पहिने हुए हमारे समाज में जो शिष्ट व्यक्ति अपनी बाहरी शान बनाये फिरते हैं, उनकी वास्तविकता सकसेना जी ने प्रकट की है। उनके एकांकियों में आज की बाहरी और सभ्य जिन्दगी की सच्चाई पाई जाती है। सामाजिक जीवन के बाह्याडम्बर सम्यधर्म के वैवाहिक जीवन आर्थिक और सार्वजनिक समस्याओं इच्छाओं, आकांक्षाओं कुण्ठाओं विडम्बनाओं और विकृतियों को उन्होंने सबके सामने प्रकट कर दिया है कि हम इस दमघोटीपन से मुक्त हों और जीवन को सार्थक धारण करें। जिन्हें हम भूल से सामाजिक जीवन का देवता समझ बैठे हैं उनकी असलियत समझें और परखें या जिन्हें हम घृणा करते हैं उनके देवत्व को पहिचानें। कौन शैतान है कौन देवता है कौन ठग है कौन सज्जन है, यह जानें। हमारे सामाजिक जीवन में कहां त्रुटियां आ गई हैं समाज की मशीनरी में कौनसा पुर्जा घिसकर खराब हो गया है जिसको बदल डालना चाहिए, यह सकसेना जी ने अपने नाटकों में दिखा दिया है।

सकसेना जी के सामाजिक आदर्श

प्रश्न उठता है श्री संमुदयाल सकसेना के सामाजिक आदर्श क्या हैं? ऊपर जिन

उदाहरणों को लिया गया है वे नकारात्मक (Negative) हैं अर्थात् वे उन व्यक्तियों के विरुद्ध हैं जिन्हें वे नापसन्द करते हैं। वह कौन से व्यक्ति हैं या कौन से आदर्श हैं जो उन्हें प्रिय हैं।

प्रथम बात तो यह है कि सामाजिक जीवन में शोषण उन्हें सबसे अधिक नापसन्द है। यह शोषण चाहे किसी भी रूप में और चाहे किस व्यक्ति द्वारा किया जाय, उन्हें सह्य नहीं है। शोषित वर्ग के प्रति सच्ची सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति रोष सब तरह उन्होंने प्रकट किया है। यह स्वर सक्सेना जी की १९४० के आसपास की अनेक कविताओं में भी मुखरित हुआ है। "सर्वहारा" शीर्षक एक कविता की निम्न पंक्तियों में हमें उनके सामाजिक नवनिर्माण सम्बन्धी विचार और दृष्टिकोण मिलता है —

"उठो, उठो सर्वहारा अशेष
आगी मनुज का है विहान
है अभी मदोद्धत अकाल ;
आओ, गाओ सब क्रान्ति-गान।

ढह गईं, कहाँ भित्तियाँ शेष ;
रह गया एक मानव समाज।
बन्धुत्व-सूत्र में गुंथे देश
सब एक साथ गा रहे आज।

हम एक हमारा एक कर्म—
पीड़ित मानवता का विकास।
हम एक, हमारा एक धर्म—
अत्याचारी का विनाश।

लो उठो सर्वहारा अशेष
हाथों में ले लो सब कुदाल।
भारत माता भी उठे कि न
पूँजी-शोषण का फिर विनाश।
लो मिलो सर्वहारा अशेष

हम एक कोष, हम एक जाति ।
नर कौन, कौन नारी अजान
धनिकों-कृषकों की एक पाँति ।
हम स्वदेश-स्वदेश मिल एक राष्ट्र,
दह गई जर्जर प्राचीर आज ।
है पृथक कुलीनों का न वर्ग,
अस्पृश्य न पतितों का समाज ।
मिट्टी से निर्मित रूस चीन
अमरीका इटली ग्रीस फ्रांस ।
बिखरा पग पग पर पग समान
है मानवता का हाड़ मांस ।
लो, मिलो सबहारा अशेष
बांहों में बांहें डाल डाल ।
अब बढ़ो बढ़ो पूछो कौन
धनपशु-दैत्य अब हत कराल ।"

शोषण का चाहे कोई भी रूप क्यों न हो वे उससे घृणा करते हैं। अतः उन्होंने आधुनिक सामाजिक जीवन में जहां भी किसी प्रकार का शोषण देखा जाना तथा कुछ और आन्तरिक सद्भाव पाई, उसे निर्भीकता से उजागर कर दिया। उनके उपन्यास कहानियों और नाटकों में अनेक पात्र हमारे सामने से गुजरते हैं, कुछ सशक्त कुछ दुर्बल। सशक्त किस तरह से दुर्बल का शोषण करते हैं यह कई स्थानों में उन्होंने प्रकट किया है।

भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा

अतीत भारतीय संस्कृति में सक्सेना जी की अटूट श्रद्धा है। वे मानते हैं कि इस संस्कृति का निर्माण पूर्व ऐतिहासिक काल से लेकर अब तक के जिन जिन व्यक्तियों ने किया है वे सभी हमारे लिए आदर्श हैं और अनुकरणीय भी हैं। सम्राटों के पतोत्थान का जो इतिहास है वह वास्तव में डाकुओं की अविजीत गाथा का इतिहास है जिसमें उनकी विजय के गीत और उनकी हिंसा का व्यापार वर्णित है। उसमें न अन्य

के पुनीत आंसुओं का इतिहास है, न जनपदों की ममत्वमय झांकियों का उल्लेख है। इस विघातक इतिहास ने घर घर में दीवारें उठा दी हैं आदमी को आदमी से जाति को जाति से, वंश को वंश से, राष्ट्र को राष्ट्र से, हृदय को हृदय से पृथक कर दिया है। इसकी अपेक्षा उन्हें जनता और गरीब श्रमिकों से पूरी सहानुभूति है। वह खून और पसीने से जनता के संघर्ष का इतिहास लिखना पसन्द करते हैं। इतिहास ऐसा हो जिसमें जनता के जीवन संघर्ष तथा उसकी निजी दैनिक समस्याओं कार्य व्यापार अभिलाषाओं का चित्रण हो। "इतिहास नामक कविता की निम्न पंक्तियों में उनकी यह विचारधारा इस प्रकार स्पष्ट हुई है:—

'फाड़ फेंको इतिहास !
हमें तुमसे, तुमको हमसे करता जो दूर
दे रहा वर्गवाद को जन्म,
घृणा के साथ,
न जिसके पास मिलन सन्देश
न जिसके साथ प्रेम सद्भाव
झूठ ही जिसका मोहन मन्त्र
विभाजन माया !
यह राष्ट्र-जाति उत्थान
आज किसका कर्तृत्व !
क्या लगे नहीं इसमें अश्रु व कर प्राण !
मिट नहीं गये क्या कीटों से पिसकर
बिखर कर मानव-समूह अनजान !
आह भी जिनके मुख से कढ़ी नहीं
किन्तु कहाँ वे आज, कहाँ उनके स्मारक !
ये ताज कुतुब ये दुर्ग, महल, आलोक
कहो किनके आंसू से निर्मित !
कहाँ है वह इतिहास !
युग युग के लोक जीवन का मधुहास
चित्रित करदे यथार्थ ।

श्रेणी-वर्ग हो न जहाँ
वर्ण-राष्ट्र हो न जहाँ
जनता जनार्दन हो,
कृषक, श्रमिक, सेठ कारीगर हों समस्त ।'

प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी श्रद्धा तथा भावों के प्रति प्रेम स्थान स्थान पर प्रकट हुए हैं। उनका आधे से अधिक नाटक-साहित्य इसी विषय पर है। 'मन्वंतर' शीर्षक इस कविता की कुछ पंक्तियों में उनका भारतीय संस्कृति प्रेम स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। कुछ पंक्तियों को उद्धृत करने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते —

"अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया।
ऋक्, साम मधुर की वाणी से
स्मृति ध्यान वीणापाणि इ से
गौरी सोमा कल्याणी से
देवाधिदेव के चरणों में ले पहला अर्घ्य प्रदान किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति का प्राण दिया।
त्रिष्टुप गायत्री गाथाएं
नव नव छन्दों की भाषाएं,
संहिता और ये शाखाएं,
रचकर मधुर अर्चना का मधुपर्क्य नया निर्माण।
अपन मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति का प्राण किया

प्राचीन संस्कृति के प्रति इतनी अधिक आस्था होते हुए भी हरएक पुरानी वस्तु के प्रति उनमें अन्ध विश्वास या अन्ध-श्रद्धा नहीं है। प्राचीन के मोह में अर्वाचीन का, अथवा पुरातन की धुन में नूतन का अकारण तिरस्कार करना सक्सेना जी ने नहीं सीखा है। कीर्तिमान विगत के साथ-ही-साथ वर्धमान आगत का भी नमन करने में उन्होंने सदा सुख का अनुभव किया है। पुरानी प्रशस्त परम्पराओं को अक्षुण्ण रखते हुए भी उन्होंने समय समय पर नवीन प्रवृत्तियों और विचारधाराओं का स्वागत किया है। "पुराकाल" शीर्षक कविता में आपने यह दिखाया है कि जिस प्राचीन काल के प्रति हमारा बहुत मोह है उसमें भी सब कुछ अच्छा ही अच्छा न था। उसमें भी अनेक

बुराइयाँ भी जो समान रूप से निरीहों को सताती रही हैं। इस कविता में अतीत काल की विद्रूपताओं के अनेक चित्र हैं। देखिए—

"कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि देख रहा वह व्याकुल
अपनी भीषणता से सकाम
जो हत हुआ था वह मूक
वह युगकाल का क्रूर काल
से होतागया वे रक्तलिप्सु
आ गया उन्हें ही भयाकुल
हो गये ग्रास वे मोद इप्सु ।
लपलप होती थी लाल लाल
से जिह्वा जैसे महाकाल
साक्षी भी उनको नहीं प्राप्त
प्रभुता-महत्त्व का क्या सवाल !
कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
कवि उस निरीह पशु के समीप
आँखों से ले दो चार बिन्दु
है जगा रहा कुछ स्नेह दीप ।

क्योंकि विरोधाभासों से निर्मित है। संस्कारों से निर्मित मानव का जीवन भी उसके विश्वासों पर ही अर्पित होता है। मनुष्य रूढ़ियों को भी मानता है उनका भी विरोध भी करता है और शान्ति क्रान्ति के सामने भी अपना सिर झुकाता है। उसे आदर्शों से भी प्रेम है वह हाथों से प्रतिमा को बनाता है और फिर उसी के सामने अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाता है। जीवन में ऐसे विरोधाभास (Contradictions) चलते ही रहते हैं। ऐसे अनेक भावों का चित्रण उनके एकांकियों में पाया जाता है।

सक्सेना जी की राजनैतिक मान्यताएं

आजकल के राजनैतिक जीवन के विषय में उनकी धारणाएं अच्छी नहीं हैं। जो ध्वंस कार्य जो जन संहार जो विवाद या कूटनीति आजकल काम में ली जा रही है, वे

उसे मानव के लिए बड़ी हानिकर समझते हैं। राष्ट्र संघ का न्याय और कानून की बारीकियां केवल दिखाने मात्रा के लिए ही हैं उनमें तत्व कुछ भी नहीं है। "जहां न व्यापै राजरि माया" नामक एकांकी में माकिया लोहारों के पुरखा भीखो जी के मुंह से जो वाक्य अनायास ही निकले हैं, वे नाट्यकार के मन्तव्य को प्रगट करते हैं :—

"भीखो जी : छिः छिः आज की राजनीति ! छिः छिः आज की कूटनीतिक माया। क्या सचमुच सभ्य युग में ये सारी विडंबनाएं चल रही हैं" — आप अपने लोगों के इस अत्याचार का समर्थन करते हैं।"

जो सबल है उसका अत्याचार भी हमें कर्तव्य के रूप में गले के नीचे उतारने के लिए कहा जाता है। विश्व की राजनीति में आज पग पग पर यह सत्य प्रत्येक व्यक्ति को अनुभव होता है। यह निर्णय करना ही साधारण आदमी के लिए कठिन हो गया है कि किसका विश्वास किया जाय। एक ही समय में हंगरी का विद्रोह दबाये जाने के लिए दो तरह की बोलियां सुन पड़ती हैं और दोनों ही अपने को उस देश और जनता का उद्धारकर्ता बतलाती हैं। इस प्रकार प्रत्येक घटना पर विश्व में दो दल अपने आप बन जाते हैं, जो एक दूसरे के विरोधी हैं और विरोध से ही समस्याओं का निर्णय करना चाहते हैं। "जहां न व्यापै राजरि माया" नामक एकांकी का निम्न अंश विचारणीय है :—

'भीखो जी : तो हंगरी का जन संहार रोका नहीं जा सकेगा ? राष्ट्र-संघ कुछ नहीं कर सकेगा ?

शाह जी : जब तक राष्ट्र संघ न्याय और कानून की बारीकियों पर विचार करता रहेगा, तब तक रूस देश-भक्तों को कुचल डालेगा।

अकबर : उसने नागी सरकार के सदस्यों को बन्दी बना लिया है। साम्यवादी कदार को जो पिछले दिनों पदच्युत कर दिया था पदारूढ़ कर दिया है। उसी के नाम पर ध्वंस-कार्य चल रहा है।

शाह जी : तभी ऐलान किया जा रहा है कि रूसी हंगरी की जनता के बुलाने पर ही आये हैं। प्रतिक्रियावादी गद्दारों से मुक्त कराते ही उनका काम समाप्त हो जायगा।

अकबर : हां हां यही तो यही तो।

राणा जी : मतलब यह है कि कदार ही हंगरी की जनता है कदार ही हंगरी की—

सरकार है ? क्या बेचारा तो निमन्त्रित अतिथि है ?

भीखो जी : छि. छि. आज की राजनीति । छिः छिः आज की कूटनीतिक भाषा । क्या सचमुच सभ्य-युग में ये सारी विडम्बनाएं चल रही हैं ?

(कक्ष के बाहर हल्ला गुल्ला होता है । राजमार्ग पर स्त्री बच्चों, बूढ़ों और जवानों की भीड़ भागती दिखाई देती है ।)

रतना जी : है यह क्या ?

शाह जी : कुछ नहीं, कुछ नहीं । रूसियों ने इन गद्दारों से हंगरी की जनता को मुक्त किया है ।

भीखो जी : अरे, ये कोमल स्त्रियां और सुकुमार बच्चे भी गद्दार हैं, देश-द्रोही हैं । इनके मुंह से दूध भी अभी नहीं छूटा है ।

अफसर : ऐसा मत कहिये ऐसा मत कहिए । नहीं तो कभी यहां भी आ जायेंगे । हम विदेशों के लोक में भी कामरेड स्टालिन अपनी तानाशाही शुरू कर देंगे ।

कांग्रेस की विचारधारा और कार्य पद्धति पर सक्सेना जी को पूर्ण आस्था है । वे स्वयं कांग्रेस के मेम्बर रहे हैं । १९२० से वे कांग्रेस आन्दोलन में सक्रिय कार्य कर रहे हैं । सन् १९२४-२५ से इलाहाबाद में कांग्रेस की कार्य पद्धति के अनुकूल कार्य कर रहे हैं । सन् १९५० में राजस्थान में बीकानेर आकर भी आपने कांग्रेस विचारधारा को बनाये रखा । अपने साप्ताहिक पत्र 'सेनानी' में कांग्रेस की विचारधारा का प्रायः समर्थन ही किया है लेकिन कम्यूनिज्म और सोशलिज्म के मूल सिद्धान्तों पर भी उनकी आस्था है ।

कांग्रेस ने जब तक समाजवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया था, तब भी उनका विचार यह था कि कांग्रेस का श्रेय इसी में है कि वह समाजवादी विचारधारा को अपना ले और देश में उसे कार्यान्वित करे किन्तु कम्यूनिस्ट कार्य-प्रणाली और उनकी भाषा, तौर तरीका से आरंभ से ही विरोध रहा है । कांग्रेसियों में प्रविष्ट बुराइयों का सक्सेना जी ने कभी समर्थन नहीं किया है ।

उदाहरण के लिए उनका "यमराज भारती' नामक एकांकी लीजिए । इसमें उन्होंने 'यमदूत" के सम्पादक "भारती जी' और जिला कांग्रेस अध्यक्ष "त्रिवेदी जी" के चरित्रों पर व्यंगात्मक प्रकाश डाला है । भारती जी तथा त्रिवेदी जी की भिन्न

बातचीत देखिए कितनी व्यंग्यपूर्ण है तथा वर्तमान राजनैतिक पार्टियों की कैसी पोलखोलकर करती है —

"भारती जी साम्यवादियों से साठ-गांठ की बात इसी बल-बूते पर कर रहे थे ? मुफ्तखोर धूर्त, बेईमान। इन सफेदपोश बेईमानों ने फँसकर कांग्रेस को गदला तालाब बना दिया है।

कुमुद जी (चौंक कर) किसपे नाराज हो रहे हो भारती जी ?

भारती जी यहीं जो "समबूत खरीदने आये थे।

कुमुद जी : पूरा दाम नहीं दे रहे हैं ?

भारती जी : कैसे पूरा देंगे। विधान सभा की कुर्सी का मोह छोटा प्रलोभन नहीं है। फिर कार्यकर्ताओं में असंतोष बढ़ रहा है। ग्रामीणों में आग सुलग रही है।

कुमुद जी : भला क्यों ?

भारती जी ग्राम विकास की बड़ी बड़ी रकमें ऊपर ही ऊपर हड़प गये हैं। काम का नामोनिशान नहीं। बाँट कर खाना नहीं जानते। सब अकेले ही पेट में ठूंसे जा रहे हैं।

कुमुद जी तो समबूत को देते क्यों नहीं ?

भारती जी समय आने पर देंगे।

कुमुद जी : समय कब आयेगा ?

भारती जी : समय आने से पहले ही काबू में आजायेंगे।

कुमुद जी : और काबू में आये कि सात खून माफ !

भारती जी : हर नेता आज अपने पीछे एक अखबार लेकर चलना चाहता है, और समझता है कि उसकी आड़ में उसका कारबार चलता रहेगा। पते यह पता नहीं "हिज मास्टर्स वायस" वाले पत्र की जनता में कोई पूछ नहीं होती। उनमें छपे तथ्यों को लोग झूठा प्रचार समझते हैं... ...... समस्त साधन-स्रोतों पर जिन लोगों ने कब्जा कर लिया है वे निष्पक्ष पत्रों को भूखों मरने पर विवश कर देते हैं। जनता में न जागृति है न पत्रों की भूख।

कुमुद जी : हां, बात तो ठीक है। शिक्षालय इन लोगों के हाथ में, पैसा इनके

कस्बे में नेतृत्व इनके अधिकार में कैसे कोई इनसे पेश आये ?

भारती जी सत्ता की कुर्सियों पर भी ये धीरे धीरे जमे जा रहे हैं।

कुमुद जी : इस खतरे को लोग अनुभव नहीं करते ?

भारती जी लोगों को असलियत का पता ही नहीं चलता। खद्दर पहन पहनकर ये देश भक्तों में शामिल हो गए हैं। सरकारी अनुदान और सहायता की बड़ी बड़ी राशियां इनके ही हाथों से खर्च होती हैं। इनके ही गुट सब जगह छाये हैं। इनके अखबारों में धुआंधार प्रचार छपता है। इन्होंने अनेक प्रकार से अपना जाल फैला रखा है। धर्म संस्कृति, कला, साहित्य और समाज के नाम पर इनके कारबार की इमारत खड़ी है। ऐसा कौन है जो इनसे धोखा नहीं खाता ? इनकी शक्ति को सहसा हम भी नहीं भंग कर सकते।'

★

दूसरा खण्ड

सकसेना जी की नाटय-कला

कथावस्तु तथा उसका निर्माण

श्री शंभुदयाल जी सक्सेना के अधिकांश एकांकी विचार प्रधान हैं किसी मूल विचार, समस्या या घटना विशेष को आधार बना कर उसे स्पष्ट करने अथवा समस्या का हल प्रस्तुत करने के लिए ही वे अपने नाटकों के कथानकों का निर्माण करते हैं। मूल विचार या समस्या ही पहले उनके मन में उदित होती है। यह विचार तथा समस्याएं या तो व्यावहारिक जीवन से प्राप्त होती हैं, अथवा साहित्य से प्रेरित होती हैं। कभी कभी मौलिक उद्भावनाएं भी होती हैं। जैसे "लाज का घर" एकांकी में महाभारत में वर्णित पाण्डवों की विजय के उपरांत पाण्डव-माता कुन्ती का यह सोचना कि उसके यशस्वी पुत्रों ने धर्म का उद्धार किया है। आसमुद्र पृथ्वी के स्वामियों की माता को आज किसी भी बात की कमी नहीं है? उसके इशारे पर आज उसके पराक्रमी बेटे धरती से स्वर्ग तक स्वर्ण पथ तैयार करा सकते हैं। वह सदेह स्वर्ग जाना चाहती है। वह चाहती है कि उसके पुत्र युधिष्ठिर धर्म का एक ऐसा सेतु तैयार करें जिससे उसका मार्ग सुकर हो। यह विचार मनमें आते ही सहसा उसके सामने सत्या ब्राह्मणी की छाया आ जाती है और वह उसे याद दिलाती है कि वह भ्रमित न हो क्योंकि उस जैसे गरीब व्यक्तियों के रक्त पर ही उसके साम्राज्य की नींव पड़ी है। यह विचार सर्वथा नए और अभूतपूर्व हैं।

"नन्दरानी" एकांकी में सर्वत्र विचार तथा स्पष्टीकरण की नवीनता है। नन्दरानी यशोदा अपने घर में बैठी हुई है। कृष्ण के चले जाने से गोकुल ग्राम सर्वत्र व्यापी शून्यता में डूब गया है। विचारों में खोई नन्दरानी की कल्पना में सारे जीवन का दृश्य सजीव हो उठता है और वह याद करती है कि किस प्रकार यमुना के तट पर देवकी कभी उसे मिली थी और अपने पुत्र की कथा उसके आगे सुनाई थी। कथोपकथन में यह सारी बात प्रकट हो जाती है। उसे स्मरण हो उठता है कि उसने बड़ी सहानुभूति

पूर्वक यह वचन दिया था कि वह अपनी संतान को संकट में डालकर उसके बच्चे की रक्षा करेगी जो अभी किसी माँ ने नहीं किया है। इस प्रकार एक नए रूप में कथानक का निर्माण किया गया है।

"वरग्रहण" एकांकी के कथानक के सूत्रों में नवीनता है। यह सर्वथा मौलिक है। गोपा (यशोधरा) बुद्धदेव के संन्यास ग्रहण कर लेने के पश्चात् किस प्रकार जीवन व्यतीत करती है, और किस प्रकार उन्हीं की स्मृति में खोई रहती है, यह प्रकरण लेकर एकांकी प्रारम्भ होता है। एक दासी सूने कक्ष में दीपक जलाती है। फिर भी गोपा का ध्यान भग नहीं होता। वह अन्धकार की ओर देखती रहती है। उसको देखकर दासी कहती है कि भगवान् कब स्वामिनी की तपस्या पूर्ण करेंगे। राहुल आकर माँ की वरग्रहणें स्नान के लिए रोहिणी तट पर चलने को जो पूर्व आयोजित था कहता है, परन्तु गोपा के जीवन की मनोवृत्ति जो पूरी तरह छिन्न भिन्न हो चुकी है, उसे इस स्थिति में नहीं रखती कि वह किसी बात को याद रख सके। वह अब कुछ भूल जाती है। उसे तो केवल एक बात याद रहती है कि उसके जीवन में जो वरग्रहण लगा है, वह शायद जीवन में कभी छूटेगा नहीं। परन्तु उसे यह भी विश्वास है कि उसकी तपस्या कभी पूर्ण होगी। उसके जीवन का वरग्रहण कभी हटेगा और बुद्धदेव जो उसे त्याग कर सत्य की खोज में निकल गए हैं, कभी उसके यहाँ आयेंगे। राहुल के यह पूछने पर कि आखिर उसके पास ऐसी कौनसी वस्तु है जिसके लिए उन्हें आना होगा तो गोपा कहती है कि तू, मेरा पुत्र, ही ऐसा धन है जिसके लिए उन्हें यहाँ आना ही पड़ेगा। इसमें गोपा के मनःसंघर्ष तथा अन्तर्द्वन्द्व की नवीनता है। इसी को स्पष्ट करने के लिए इस एकांकी की रचना हुई है।

पुराने रामायण काल के कथानकों में नवीन भावों या विचारों अथवा अन्तर्द्वन्द्वों की नवीनता पाई जाती है। "पंचवटी" में राम के मन का अन्तर्द्वन्द्व ही प्रारम्भ से अन्त तक एक नए रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम यज्ञ करने से पूर्व तीर्थयात्रा के लिए निकलते हैं और वे पंचवटी में आते हैं। तब राम कहते हैं, "यही तो वह स्थान है, मेरे जीवन का तीर्थ। यज्ञ की दीक्षा लेने से पूर्व तीर्थ स्नान का कुल वशिष्ठ का आदेश है। मैं समस्त तीर्थों का स्नान कर आया तो भी अन्तर की ज्वाला तो वैसी ही धधक रही है। रोम रोम फुंका जा रहा है। अपने इस पावन तीर्थ में स्नान किये बिना उससे क्या कभी निस्तार हो सकता है। (इधर उधर टहल कर) आह, यहाँ का वातावरण कैसा

शीतल है। लगता है जैसे कोई कपूर और चन्दन छिड़क रहा हो।"

उनके मन की ये भावनाएं, यह पुष्प प्रसाद यह प्राज तक किसी नाटककार ने नहीं देखा है न इस नए रूप में चित्रित करने का ही प्रयत्न किया है। सक्सेना जी ने राम के चरित्र के एक सर्वथा नवीन पहलू पर प्रकाश डाला है। उनके चरित्र की उज्वलता, पावन पवित्र प्रेम सीता जी के प्रति अगाढ़ अनुराग अपने विम्ब रूप में एक नए ढंग से स्पष्ट हो गया है।

संसार यही समझता है कि राम ने सीता को त्याग दिया, जब कि सचाई यह है कि राम ने अपने जीवन के सुख को वनवास दे दिया। इसमें राम के दो रूप व्यक्त किए गए हैं और उन्होंने अपने वंश की मर्यादा के लिए सीता का परित्याग किया, परन्तु प्रेमी के रूप में राम सीता को एक क्षण के लिए भी भूल नहीं सके हैं और इसीलिए समस्त तीर्थों में घूम कर भी जब तक वे पंचवटी की यात्रा नहीं कर लेते तब तक वे अपने को अशान्त पाते हैं। उनका रोम रोम फुंका जाता है। तात्पर्य यह है कि इसमें राम के कर्त्तव्य पर प्रेम की विजय चित्रित की गई है।

"सोने की मूर्ति नामक एकांकी में राम के चरित्र के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का चित्रण करते हुए यह प्रदर्शित किया है कि प्रन्त में वे अपने उस रूप को खंडित कर देते हैं। प्रेम की महिमा को ही प्रधान मानते हैं। जब वशिष्ठ जी राम से यज्ञ की पूर्ति के लिए दुबारा विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो वे कहते हैं कि "यज्ञ में उनकी अर्द्धांगिनी सीता के सिवा वह स्थान कोई नहीं ग्रहण कर सकता। सीता के स्थान पर सीता की सोने की मूर्ति ही रखी जायगी। इसके लिए यदि धारम भी बदलना पड़े तो राम उसके लिए प्रस्तुत हैं।

सक्सेना जी की कथावस्तु विविध विषयक है किन्तु फिर भी हम उन्हें चार भागों में विभाजित कर सकते हैं:—

१— पौराणिक कथानक:— जैसे रामायण और महाभारत की पृष्ठभूमि पर एकांकियों की रचना। इसमें पंचवटी, सोने की मूर्ति, सत्य की खोज छिन्न तन्तु तपोवन पाखेयुरी, वल्कल भागृभम, स्वयंवर-सभा, सीताहरण पंपा पथ शिला का उद्धार, शक्तिबाण, प्रहरी, आतिथ्य हठ विदा, वनपथ तापसी, भावेश साक का घर नगरश्री विद्यापीठ।

२— ऐतिहासिक कथानक — ये प्राय बौद्धकालीन भारत से लिए गए हैं। इस वर्ग

में उनके दुखवाली अभिलाषा मुग्धा की आँखें मार्गमार्ग, जनप्रहरी, चीरहारिणी जय-सम्पदा राजमणी साथमायम ।

३— सामाजिक कथानक — इनमें समाज के सभी वर्गों का चित्रण है। बच्चों से लेकर युवकों तथा प्रौढ़ों तक की विभिन्न सामाजिक स्तरों का चित्रण है। इनमें देशप्रेम, सदाचार, मिथ्या दंभ दहेज आदि कुप्रथाएं, कुछ विशेषाधिकारों का दुरुपयोग, चोरबाजारी कालाबाजारीपन आदि पर व्यंग्यात्मक रूप से प्रकाश डाला गया है। इस वर्ग में सक्सेना जी के रानी सगाई विजया और चास्ती, आज का कवि सुवास दुर्घटना मलेरिया सम्पादक एक हजार का सम्मान, शर्मा जी का अभ्यर्थन आदि सामाजिक विद्रूप के कथानक रखे जा सकते हैं। नए एकांकियों में मातृ की हार मां और मुक्ति का दर्शन आदि भी अनेक सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित हैं।

४— राजनैतिक कथानक — इस वर्ग में व्यंग्यमयी शैली में आजकल की राजनीति पर मीठी चुटकियाँ ली गई हैं। जनमतपेक्षा नेता और जानवर जहाँ न पहुंचें रवि माया अमरत्व भारती बापू ने कहा था अंगारों की मौत आदि।

एक मूल भाव लेकर उसे स्पष्ट करने के लिए परिस्थितियों का निर्माण करते हैं उसी के अनुकूल पात्रों का निर्माण करते हैं। आगे बढ़कर उन पात्रों का भी स्वतन्त्र व्यक्तित्व बन जाता है। इनकी चारित्रिक विशेषताएं भी पृथक पृथक मिल जाती हैं। कथावस्तु को मनोरंजक बनाने के लिए कुछ कल्पना का पुट भी दे देते हैं। कुछ घटनाएं तो सत्य हैं; कुछ सत्य के आधार पर कल्पित हैं। सत्य और कल्पना के सम्मिश्रण से रोचकता उत्पन्न करने का प्रयास है।

५— बालोपयोगी कथानक :— इस वर्ग के एकांकियों में बालकों के चरित्रों का उत्थान और नैतिकता वीरता मैत्रीभाव देशभक्ति, आदि का विकास करनेवाले कथानक रखे जा सकते हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। कुछ कल्पित घटनाओं पर भी हैं। इस वर्ग में सक्सेना जी के "रत्नांकुरा राजकुमार"; "रानी "कृष्ण सुदामा" 'आधा सामा' 'मुकुट"; 'विजय" आदि रखे जा सकते हैं। इनका कथा भाग सरल और उसकी गति स्पष्ट है। उसमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं है। सक्सेना जी बालकों के मन से परिचित हैं। अतः वे ऐसे कथानक चुनते हैं जो बालक सहज ही में पकड़ लेते हैं तथा जिनके द्वारा

उनका व्यावहारिक आदर्शवाद उनके चरित्र का एक अंग बन जाता है। उनका उद्देश्य बच्चों का नैतिक और चारित्रिक उत्थान है।

पात्र — सक्सेना जी की पात्र-सृष्टि बहुरूपिणी है। पौराणिक पात्र अधिकांशतः व्यक्तियों (Individuals) का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ तो ऐसे पात्र हैं जिनकी कल्पना पुराणों में जहाँ से ये लिए गए हैं, उसी प्रकार वर्णित जैसा उन्हें सक्सेना जी ने नाटकों में चित्रित किया है; परन्तु अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिनके नाम तो पुराणों में हैं, परन्तु नाटकों में उनके चरित्र की उद्भावना मौलिक रूप से की गई है। जैसे "विद्या पीठ" में कच और देवयानी 'सत्य की खोज' में विश्वामित्र सत्यकाम "साख का घर" में आया पात्र सत्या व कुन्ती। तात्पर्य यह है कि इन एकांकियों में इन पात्रों का जिस रूप में चित्रण है, वह सर्वथा नवीन और मौलिक है। उन्हें लेखक ने अपने ढंग से चित्रित किया है। 'नन्दरानी' में यशोदा का जीवन के सम्बन्ध में इस दृष्टिकोण से देखना कहीं भी चित्रित नहीं है। नन्दरानी के निम्न वाक्य तथा उक्तियाँ सर्वथा मौलिक हैं इस रूप में कृष्ण को किसी भी विचारक ने नहीं देखा है —

नन्दरानी— "ऊधो, मेरे बेटे ने मुझे कर्तव्य करने की सलाह दी है। मेरी मोह से अंधी आँखों में उसने ज्ञान की ज्योति जगाई है। जिसके ऊपर दुनियाँ के सुख दुख का भार है उसे मैं अपनी गोद में छिपा रखना चाहती थी। यह मेरा अन्याय था बहुत। मेरे कन्हैया के दोनों ही रूप सत्य हैं। प्रेम के क्षेत्र में वह नन्दनन्दन है बाबुरानन्दन है, राधिकारमण है। कर्त्तव्य के क्षेत्र में भगवान् वासुदेव। मेरी ओर से देवकी से कहना कि वह अपने वचन का पालन करे। प्रेम का प्रतीक मेरा जो कन्हैया है उस पर अपना अधिकार न जताये। राजराजेश्वर कृष्ण को मैंने उसके लिए छोड़ दिया है।"

"पंचवटी" में केवल दो पात्र हैं, वासन्ती और राम। वासन्ती का नाम "उत्तर रामचरित" में सीता की सखी के रूप में आया है। बस इतना ही आधार "पंचवटी" को लिया गया है। शेष राम और वासन्ती का चरित्र चित्रण स्वयं लेखक की कल्पना से निर्मित है। राम के प्रेम और कर्त्तव्य का द्वन्द्व इसमें सर्वथा नवीन है। पंचवटी को वासन्ती की उपस्थिति ने बहुत अधिक मार्मिक बना दिया है।

पौराणिक पात्रों को हम कई वर्गों में विभाजित कर सकते हैं —

आर्य संस्कृति के प्रतिष्ठापक महर्षियों व ऋषि पत्नियों का चित्रण, जैसे "सत्य की खोज" में विश्वामित्र, और 'तपोवन" में अत्रि और अनुसूया व अन्य महर्षि;

''विद्यापीठ'' में कुमारजीव, "सोने की मूर्ति" व 'छिन्न तन्तु' एकांकियों में वशिष्ठ मुनि। ये ज्ञानवान गंभीर, चिन्तन प्रधान विचारों को अभिव्यक्त करने वाले हैं। ये विचारक तत्कालीन समस्याओं के विश्लेषण के द्वारा आजकल की समस्याओं पर भी प्रकाश डालते हुए से प्रतीत होते हैं। जैसे 'सत्य की खोज" में विश्वामित्र के निम्न विचार आधुनिक सांस्कृतिक संघर्ष पर प्रकाश डालते हैं और आजकल की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हैं। देखिए—

विश्वामित्र : महर्षियो धर्मों और संस्कृतियों के नाम पर जो महान् संघर्ष चल रहा है मानव-रक्त से निरंतर धरती सींची जा रही है उसके लिए कौन दोषी है? यही आज सबसे अधिक विचारणीय है।

सत्यकाम : महात्मने, आपने जो प्रश्न रखा है उसका उत्तर देने का साहस इस महर्षि मण्डल में शायद ही कोई करे। धर्म और संस्कृति की सीमा जहाँ आर्य जाति तक ही सीमित मानी जाती है वहाँ इसका क्या उत्तर हो सकता है? हमारा जातिवाद, हमारा वर्णवाद हमारा धर्मवाद हमारा कुलीनतावाद इसका उत्तर देने से हमें रोकते हैं।

विश्वामित्र सत्यकाम तुम्हारे हृदय की आग को मैं जानता हूँ। इस छोटी सी वय में तुमने जिस सत्य का दर्शन कर पाया है वह सिर के पका देने पर भी नहीं होता। तुम धन्य हो।

वृद्ध महर्षि : वेदमन्त्रों के द्रष्टा महर्षि विश्वामित्र के सामने इस वृद्ध को जिसने असत्य को सत्य मानने में ही केश पकाये हैं कौन जानेगा? इस सभा के सच्चे वक्ता अज्ञातकुलीन तपस्वी सत्यकाम जैसे तत्वदर्शी ही हो सकते हैं। मैं अधिक क्या कहूँ।

विश्वामित्र आप सर्वाधिक पूज्य हैं। आप ही वह मार्ग बताइये जिससे रक्तपात रुके, विषाक्त वातावरण दूर हो मानव जाति पर मंडरानेवाले काले मेघ छंट जायें। सबको रहने के लिए घर, खाने को रोटी, शरीर ढकने को वस्त्र और सोचने की स्वच्छ वातावरण की सुविधा हो। आर्यों की विजय और अनार्यों की दासता से उत्पन्न समस्या का समाधान आप हमें दीजिये। आप अखिल मानव जाति के उद्धार का सहज उपाय सुझाइये।

वृद्ध महर्षि : धर्म और वर्ण न कभी मिटे हैं, न कभी मिटेंगे। उसके लिए प्रयत्न, करने वाले स्वयं मिट जायेंगे। तुम्हारे शास्त्रों की आयु से मेरे मुँह के ये शब्द अधिक दीर्घजीवी हैं। विश्वास रखो।

नायक और नायिकाएं — नायक प्रायः धीरोदात्त और सौम्य हैं। समस्यायों और परिस्थितियों पर पर्याप्त विचार करते हैं। नायकों में राजपुत्र, सत्ताशील व्यक्ति, निर्वासित भाग्यवान पुरुष हैं। सत्य और न्याय में विश्वास करने वाले हैं। परिस्थितियों से उत्पन्न विडम्बनाओं को सहन करते हैं और डगमगाते नहीं। सौम्य प्रकृति के नायकों में राम, लक्ष्मण गौतम प्रद्योत दशरथ युधिष्ठिर अर्जुन भीम। नारी पात्र कोमल, त्रस्त त्यागशील पीड़ित परित्यक्त तपस्विनी अनुभूतिमयी कर्तव्यनिष्ठा (जैसे कैकेयी) प्रेम का अनुनय करने वाली भी हैं। कुछ रूपगर्विता भी हैं जैसे "धुआ की आँखें" सुमा और 'अभिशप्त' में अम्बा (शाक्य वंशी कुमारी रूपगर्विता भिक्षुणी है।) वारविलासिनियां भी हैं जैसे 'उपसम्पदा" एकांकी की तिष्या। शान्ति-पथ की पथिकाएं भिक्षुणियां भी हैं जैसे अमपा पटाचारा। गौतमी कुछ में दासी भी प्रधान पात्री बन गई हैं। जैसे "आर्यमार्ग' एकांकी की पूर्णा। यह दासी का कार्य करती है, किन्तु वही कार्य करते करते उसे सत्य मार्ग का दर्शन हो जाता है। कुछ शिक्षित हैं, जैसे अनसूया कुछ अशिक्षित हैं जैसे पूर्णा। ये व्यक्तियां भी हैं जो शाश्वत सुखी हैं और सुख की कामना करती हैं। वे सदा एक रस रहनेवाले मुक्त जीवन को पसन्द करती हैं। ये अपनी मानवीय दुर्बलतायों से भी परिचित हैं। तीसरे प्रकार के पात्र सामान्य पात्र हैं जिनमें दास दासियों या व्यक्तियां सम्मिलित हैं। कुछ पात्र ऐसे हैं जो आधुनिक विचारधारा के प्रतीक बन कर सामने आते हैं और आधुनिक समस्यायों को एक नए ढंग से सुलझाते हैं जैसे "आर्यमार्ग" एकांकी में निम्न कथोपकथन। इसमें दासत्व और सेवकों की समस्यायों पर प्रकाश डाला गया है और शिष्य और सेवक दोनों को समाज की व्यवस्था के लिए आवश्यक बताया गया है परन्तु बुद्ध की तर्क रश्मियों ने उस अंधकार को छिन्न भिन्न कर दिया है —

बुद्धदेव : (पूर्णा को उठाते हुए) कल्याणी उठो। भिक्षुणी तुम तुम्हारे प्रदीप्त व्यक्तित्व से गौरवान्वित हो।

पूर्णा : मैं बुद्ध की शरण हूँ। मैं संघ की शरण हूँ।

अनार्ईस : भगवान् मुझे स्वीकार कीजिए।

बुद्धदेव : धर्ममार्ग के अनुगामी, तुम्हारा कल्याण हो। ब्रह्मासन प्रशस्त हो।

मोक्षिपत्नी : प्रभो हमारा पानी कौन भरेगा ? कठिन शीत में जल-स्पर्श बन्हीं का काम है जो उसे करते आये हैं।

बुद्धदेव : मां आत्म-निर्भर बनो। मनुष्यों को मनुष्य की दासता से मुक्त होने दो।

मोक्षिपत्नी : किन्तु सेव्य सेवक की परम्परा तो अनादि से है भगवन्। उसे भंगकर देने से व्यवस्था बिगड़ जायगी। व्यवस्था का भंग क्या धर्मानुमोदित होगा ?

बुद्धदेव : यह व्यवस्था भंग नहीं है देवी। बन्धन कभी व्यवस्था नहीं हो सकते। स्वेच्छा से व्यक्ति का निर्माण होने देने में ही कल्याण है।

मोक्षिपत्नी : स्वेच्छा, कल्याण — कुछ समझ में नहीं आता। अपने हाथों से पानी भरने का काम तो मैंने कभी नहीं किया है देव !

बुद्धदेव : इस नई व्यवस्था के प्रयोग में स्वस्थ मानवता का विकास होगा। सेवक दासत्व के भार से हलके होकर पनपें और सेव्य आत्मनिर्भरता की दीक्षा ग्रहण कर सजीव हों। पूर्णिका को मुक्त करके तुम बंधती हो इस दृष्टिकोण से सोचना बन्द कर दो। तुम्हारा कल्याण होगा। अपने पति की सहज अनुगामिनी बनो पुत्रि।

मोक्षिपत्नी : मैं दुर्बल नारी यह मानने में असमर्थ हूँ देव। मेरे कल्याण का बहुत बड़ा अंश पूर्णिकाओं की निरंतर परिचर्या पर ही अवलम्बित है, पर मैं आपका अनुरोध कैसे अमान्य करूं ? मैं पूर्णिका को मुक्त करती हूँ।

इस प्रकार सामान्य पात्रों में भी अवसर पर बौद्धिक चेतना का उद्बुद्ध होना चित्रित किया गया है। उनमें भी मानव जीवन के चरम उत्कर्ष की उपलब्धि दिखाई गई है। साधारण पात्र में भी महानता उच्चविचार दूरदर्शिता और सज्जनता निहित हो सकती है वह भी अपने अनुभव और सद्बुद्धि के बल पर गंभीर बात सोच और कह सकती है। यह बौद्धिक चेतना सक्सेना जी के साधारण पात्र पात्रियों में पाई जाती है।

सामाजिक एकांकियों के पात्र हमारे दैनिक जीवन और समाज के ये जाने पहचाने व्यक्ति हैं जो एक रूप में कुछ ही नीति अपनाये हुए हैं। समाज उन्हें बाहरी दृष्टि से

प्रतिष्ठा लिये हुए हैं। वे शिष्ट शिक्षित हैं — कुछ सम्पादक, वैद्य लेखक, प्रभावशाली कांग्रेस के मन्त्री, टाइप फौंडरी के मालिक, अनुवादक, बैंक मैनेजर, पत्र के मालिक, नगर के नेता लोग, सम्मेलन के कार्यकर्ता आदि हैं। राजनीति में इनका हाथ है, समाज में इनकी आवाज है। लोग इन्हें अच्छा मानते हैं और बाहर से पर्याप्त आदर और सामाजिक प्रतिष्ठा भी देते हैं।

किन्तु नाटककार सक्सेना जी ने इन पात्रों की सामाजिक प्रतिष्ठा का झूठा चेहरा हटा कर इनके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। उनके अधिकांश सामाजिक एकांकी (जैसे मलेरिया सम्पादक, एक हजार का सम्मान, विजया और शास्त्री, दुर्बलता, बरसातीपेशा, वेश्या और भागवत, सर्पों जी का प्रथम दिन, कहाँ न आये राष्ट्रपति, यमराज शास्त्री, मुकाम ग्राम का कवि) आज सामाजिक विद्रूप के एकांकी हैं। आज के सार्वजनिक जीवन में हम जिन व्यक्तियों को समाज की नाक मानते हैं वे इन एकांकियों के पात्रों में अपना प्रतिबिम्ब देख पायेंगे और देखेंगे कि नाटककार ने कितनी गहराई से उनके चरित्रों के गुप्त पहलुओं को उजागर कर दिया है।

सक्सेना जी स्वयं पत्रकार सम्पादक और प्रेस के मालिक हैं। इस व्यापार में लगे हुए अनेक व्यक्तियों से आपका निकट परिचय है। इस क्षेत्र में होनेवाली विद्रूपताओं को आपने अपने कई एकांकियों में स्पष्ट किया है। धूर्त और धोखेबाज जो व्यक्ति दिखावटी चेहरे लगाये हुए उन्हें मिले हैं उन्हें उघाड़ (Expose) किया है।

उदाहरण के लिए "नवयुग" के सम्पादक भार्गव को जिनका व्यंग्य चित्र "मलेरिया सम्पादक" नामक नाटक में खींचा गया है ही ले लीजिए।

भार्गव मलेरिया पीड़ितों के लिए दवाएं और रुपया एकत्रित कर रहे हैं। लेकिन दवाओं की अपेक्षा रुपया उन्हें अधिक चाहिए। दवाओं को तो गुपचुप बेचने में कठिनता आती है पर रुपया तो किसी न किसी प्रकार अपने काम में लगाया जा सकता है। वह अपने क्लर्क बाहुदा को नौकरी से हटा देना चाहता है लेकिन उसका हिसाब साफ नहीं करना चाहता। चार महीने से उसका वेतन रुका पड़ा है। बाहुदा बेचारा चुपचाप एक दिन का वेटिंग वसूल कर लेता है। भूखा क्या करे? जैसे बेईमान मालिक हैं वैसा ही नौकर को बनना पड़ता है। वह रुपया लाकर रख जाता है हिसाब नहीं देता मनीआर्डर वसूल कर लेता है और रजिस्टर में जमा नहीं करता। वह उधार उधार जमा जाता है।

बिलों का पैसेज से आता है। झूठी खबरें छाप कर पैसे बना लेता है। नाहटा प्रवेश करता है, तो भार्गव उसे धमकाता है। इस पर नाहटा उसकी कलई खोलते हुए कह देता है :— "यहाँ जमा करने के बाद फिर कुछ निकल नहीं सकता। तनख्वाह आप देना नहीं जानते, फिर हम खायें किसे ?"

कथोपकथन (Dialogues) —

सक्सेना जी ने अपने नाट्यकौशल को सुन्दर और मर्मस्पर्शी संवादों द्वारा प्रकट किया है। ये दो प्रकार के हैं १— विचार प्रधान २— भाव प्रधान। दोनों में सरलता है और स्पष्टता का भी ध्यान रखा गया है। विचारप्रधान संवाद अपेक्षाकृत कम हैं और भाव प्रधान अधिक हैं। विचार प्रधान संवाद प्रायः तर्कसंगत हैं। स्वाभाविक हैं। यह मालूम नहीं होता कि बरबस ठूँस ठाँसकर रख दिये गए हैं। इनमें नाटककार सक्सेना जी का बुद्धिकौशल और तर्क-सम्मतता प्रकट होती है। उदाहरण के लिए वर्णक्रमी से इस शैली का एक कथोपकथन लीजिए —

वृद्ध महर्षि — वेद मंत्रों के रचयिता महर्षि विश्वामित्र के सामने इस सत्य को जिसने असत्य को सत्य मानने में ही केश पकाये हैं, कौन जानेगा ? इस सभा के सच्चे वक्ता अज्ञात कुलशील तपस्वी सत्यकाम जैसे तत्ववेत्ता ही हो सकते हैं। अधिक मैं क्या कहूँ।

विश्वामित्र — महात्मन आप वासिष्ठी परम्परा के जनक हो। आप सर्वाधिक पूज्य हो। आपको कौन नहीं जानता ? आप ही वह मार्ग बताइये जिससे रक्तपात करके विपाक्त वातावरण दूर हो मानव जाति पर मंडरानेवाले काले मेघ छँट जांय, सबको रहने को घर खाने को रोटी, शरीर ढकने को वस्त्र और सोचने की स्वच्छ वातावरण की सुविधा हो। आर्यों की विजय और अनार्यों की दासता से उत्पन्न समस्या का समाधान आप हमें दीजिए। आप अखिल मानव जाति के उद्धार का सहज उपाय सुझाइये, महामुने !

वृद्ध महर्षि — जो सृष्टा को भी अभिप्रेत नहीं वह तुम मुझसे कराना चाहते हो ? वर्ण और वर्ग न कभी मिटे हैं न मिटेंगे। उसके लिए प्रयत्न करनेवाले स्वयं मिट जायेंगे। तुम्हारे शास्त्रों की आयु से मेरे मुह के ये शब्द

अधिक दीर्घजीवी हैं विश्वास रखो। महर्षियों और मनीषियों की इस सभा में अब मेरा कोई काम नहीं है।

(लाठी टेकते हुए शीघ्रता से प्रस्थान। वृद्ध महर्षि के पीछे और भी कितने ही ऋषि महर्षि उठ कर चले जाते हैं।)

भाव-प्रधान कथोपकथनों में पात्रों का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व चित्रित किया गया है। यह हमारे अन्तरतम को छूते हैं। नन्दरानी कन्याग्रहण और पंचवटी तीनों एकांकी भाव प्रधान हैं। माता का हृदय वात्सल्य वियोग शृंगार तथा मर्मस्पर्शी वेदना की मार्मिक झांकियाँ मिलती हैं। पढ़ने में गद्य काव्य जैसा आनन्द आता है। लेखक ने नारी और पुरुष दोनों के ही हृदयों का अन्तर्द्वन्द्व दिखलाया है। पंचवटी में पुरुष तथा नन्दरानी में नारी के वात्सल्य-स्नेह का मर्मस्पर्शी विकास है।

सक्सेना जी मूलतः एक भावुक कवि हैं। नाटककार से भी पूर्व उनका कवि का रूप प्रकट हुआ था। वीर करुण वियोग शृंगार आदि रसों से ओतप्रोत अनेक सुन्दर कविताएं आपने हिन्दी साहित्य को प्रदान की हैं। अतः उनके नाटकों का साहित्यिक सौन्दर्य भाव प्रधान कथोपकथनों में विशेष रूप से पाया जाता है। शृंगार रस से ओत प्रोत एक कथोपकथन लीजिए कितना भावपूर्ण है —

सुमा : मेरे पथ को अवरुद्ध कर रखने में कोई लाभ नहीं है युवक! किसी तरह के प्रलोभन मुझे मेरे मार्ग से विचलित नहीं कर सकते। इस शरीर के प्रत्येक अंग से मैंने आसक्ति हटा ली है। मेरे लिए वे ठीकरे के समान हैं।

देवदत्त हो नहीं सकता। गोरी गोरी कमलनाल सी ये बाहें किसी विदग्ध के गले का हार बनने को आतुर न हों? हो नहीं सकता ये कर्णालम्बी रसभरे नयन एकान्त चांदनी रातों में किसी के लिए बेचैन न हो उठते हों। हे ब्रह्मचारिणी, तुम काषाय वस्त्रों में अपने को कितना ही आवेष्टित करो परन्तु मन के भीतर सहज हिलोरें लेनेवाले मनसिज को तुम शमन नहीं कर सकती। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम वही करो जो सदा से अप्सराएं करती आ रही हैं। ये तुम्हारे स्वर्ण-कलश रेशम की कंचुकी में रहने लायक हैं। ये

तुम्हारे उन्नत नितम्ब फूलशय्या पर विश्राम पाने योग्य हैं। ये कोमल कलाइयाँ मणि जड़ित स्वर्ण-कंकणों की झंकार से कानों में रस बरसाने के लिए हैं। ये कोमल से सुकुमार तुम्हारे पांव देवदत्त की नित्य वंदना के अधिकारी हैं। सुश्रोणि बोलो क्या इसमें रत्ती भर भी झूठ है ? लो चमेली के फूलों की यह माला धारण करो सुनयने और इस सहकार में लिपटी हुई माधवीलता की तरह तुम मेरे शरीर से लिपट जाओ। वियोग की ज्वाला में अब और अधिक न जलो सुकेशिनि! मेरी शकुन्तले डरो नहीं। देवदत्त दुष्यन्त जैसा प्रेमी नहीं है। वह तुम्हें आंखों में ध्यान करके रखेगा।

सुमा   वाणी से समझने योग्य क्या नहीं है तेरी!

वीर रस का एक उदाहरण 'साधना-पथ' में से दिया जा सकता है। साधना-पथ एक भावपूर्ण ऐतिहासिक नाटक है। इसमें मीरा की भक्ति का उन्माद तो मुख्य रूप से है, लेकिन गौण रूप से वीर रस भी आया है। पानीपत का युद्ध होने से पूर्व राणा सांगा, उस युद्ध की कल्पना मन में करते हैं और इस प्रकार उसे अपने मानस-नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष देखते हैं जैसे सब कुछ सामने हो। वह युद्ध के मोर्चों की जैसी कल्पना करते हैं, वह कुछ दिन उपरान्त उसी रूप में घटित होता है। लोदी हारता है बाबर विजयी होता है :—

'राणा   मुझे दीख रहा है निकट भविष्य का वह उज्ज्वल आलोक! उसमें प्रतिबिम्बित है दिल्ली और काबुल का संघर्ष। कितना स्पष्ट है मेरा सोचा हुआ परिणाम। इतिहास जिसे कल लिखेगा उसे मैं आज देख रहा हूं। ... अब मुलतान सिन्धु के मार्गों की रक्षा करता, परन्तु वह क्यों करता? भाग्य के लेख तो लिखे जा चुके हैं। कितने उज्ज्वल हैं ये लेख।"

"आदेश" और "छिन्न तन्तु" एकांकी करुण रस से ओतप्रोत हैं। "आदेश" के कथानक का निर्माण राजा दशरथ के उस आदेश पर हुआ है जो देकर उन्होंने सुमन्त्र को राम के साथ भेजा है कि इनको तुम वन की सैर करा कर वापस ले आना। और शायद राम जैसा कि उनका दृढ़ निश्चयी स्वभाव है अपने वचन से न फिरें तो उनसे कहना कि सीता को तो लौटा ही दें। इसमें निम्न स्थल आये हैं जो मर्मस्थल को छू देते हैं —

"सीता — (राम से साथ रखने की हठ पर) मेरा आपके साथ रहना हठ है? चांदनी का चांद के साथ रहना हठ है? छाया का शरीर के साथ रहना हठ है? सौरभ का फूल के साथ रहना हठ है? यह मैं क्या सुन रही हूँ आपके मुँह से? संकट में चांदनी क्या चांद का साथ छोड़ देती है? छाया क्या दुर्दिन में शरीर से विलग हो जाती है? सुरभि क्या तूफान में फूल का परित्याग कर उड़ जाती है?

सीता — (सुमन्त के प्रति) आर्य, आप जैसे बड़ों के सामने मुझे बोलना पड़ रहा है। यह अनुचित है, पर क्या किया जाय। इस समय चुप रहने से काम नहीं चलता। आप मेरे सास-ससुर के चरणों में मेरा बारम्बार प्रणिपात निवेदन करके इतना कहियेगा कि उन्होंने जो शिक्षा मुझे दी थी उसे मैं भूली नहीं हूँ। स्वामी की सेवा में जीवन का सर्वस्व अर्पित कर देने से बढ़ कर मेरे लिए इस संसार में कोई प्रलोभन नहीं है। कोई भय, कोई संकट कोई बाधा कोई अभाव मुझे इनके चरणों से अलग नहीं कर सकता। मुझे विश्वास है मेरे सास ससुर मेरे इस उत्तर में किसी प्रकार की अविनय नहीं पायेंगे। और आप भी किसी तरह का विस्मय न मानेंगे।"

सुमन्त निरुत्तर हो जाते हैं। वे खाली रथ लेकर वापस जाते हैं। राम की आंखों से आंसू झरते हैं। सीता अंचल में मुँह छिपा लेती है। लक्ष्मण शून्य में ताकने लगते हैं। आंखें पोंछते हुए श्रीराम सुमन्त को सहारा देकर रथ के समीप ले जाते हैं और रथ पर चढ़ाते हैं, रासें हाथ में दे देते हैं। घोड़े व्यथा से हिनहिनाते हैं और रथ घरघरा कर चल पड़ता है। सम्पूर्ण प्रकृति भी जैसे करुण हो रो देती है। हवा के झोंके के साथ पत्ते और धूलि कण रथ के पहियों से लिपटते चले जाते हैं।"

"प्रिय वस्तु" एकांकी में वह भीषण दृश्य भी अंकित हो जाता है जो लेकर अब तक दशरथ जीवित थे और राजमहलों में थोड़ी बहुत आशा थी। निम्न उद्धरण कैकयी के चरित्र को तो ऊँचा उठाता ही है साथ ही करुण रस का स्रोत प्रवाहित करता है। जो कैकयी राम के वनवास के समय भी दृढ़ और निष्ठुर बनी रही थी वह आज द्रवित होकर मूर्छित हो जाती है।

महाराज रोते हैं। कैकेयी आती है मलिन वसन, रुक्ष आनन बिखरे केश, निष्प्रभ ज्योति शिखा की तरह मुंह लटकाए सबके सामने खड़ी हो जाती है। कैकेयी कहती है :—

"सुमन्त, सचिव ! रघुवंश के महामंत्री ! मैं निर्बुद्धि नारी भ्रम या मोहवश अनर्थ कर सकती हूँ किन्तु आपके हाथों में तो राजवंश का हित सुरक्षित माना जाता है। आप हमारे राजकुमारों और पुत्रवधू को वन में कैसे छोड़ आये ? क्या आपको इसी लिए भेजा गया था कि खाली रथ लेकर लौट आए ? यह काम तो राजमहल का एक तुच्छ सेवक ही कर सकता था ! बचपन के सखा होकर आपने अपने प्रिय मित्र के प्रति कर्तव्य का पालन नहीं किया है। कैकेयी के दुर्भाग्य की गाथा विधाता के हाथों प्रारम्भ हुई थी। वृद्ध सुमन्त के हाथों आज वह पूरी हो गई ! फिर अभिशप्त भरत की माता के अनुताप को दुनिया में कौन समझेगा ? उसका कौन अपना है आह !"

(अपने दोनों हाथ माथे पर मारती और मूर्छित होकर गिरती है। कौशल्या, सुमित्रा और परिचारिकाएं दौड़ती हैं।)

कथोपकथन भिन्न भिन्न लम्बाई के हैं पर अधिकतर छोटे और स्वाभाविक ही हैं। कुछ एकांकी दो पात्रों की प्रारम्भिक वार्ता से प्रारम्भ होते हैं। यह बातचीत एक एक शब्द या वाक्य को लेकर धीरे धीरे बढ़ती जाती है। बातचीत में पात्रों की वय, शिक्षा सामाजिक स्तर बुद्धि विकास, परिस्थिति इत्यादि के अनुसार स्वाभाविकता और तर्क संगति का विशेष ध्यान रखा जाता है। कुछ ऐसे संवाद भी हुए हैं, जिनमें एक पात्र का कथन अगली बातचीत का प्रेरक बनता जाता है और इस प्रकार कथानक को स्वाभाविक गति प्रदान करता है। प्रवाह स्वतः खुलता है। घटनाएं आती जाती हैं। "भम्मू की हार" एकांकी का अंतिम भाग देखिए, किस प्रकार चरम-सीमा (climax) पर लाकर समाप्त किया गया है। भम्मू नाम अध्यापक को विद्यार्थियों द्वारा दिया हुआ नाम है, जो बच्चों को डंडे के जोर से सुधारने के लिए विख्यात है, परन्तु प्रस्तुत एकांकी का चरित्र नायक बालक बम्मू अपनी दृढ़ता से उसके मन पर उलटा ही प्रभाव डाल देता है और उसे यह स्वीकार करने के लिए बाध्य कर देता है। बालकों को ही प्रधान पात्र बना कर उन्हीं की बस्ती में और उन्हीं के जीवन के दृश्यों को अंकित करने वाले एकांकियों की रचना का यह एक उदाहरण है —

"बापू : (बम्मू से) जानते हो ये कौन हैं ? (भम्मू की ओर संकेत करता है।)

म्मू : जानता हूँ (अकड़ कर खड़ा रहता है और एक कड़ी दृष्टि मामू पर फेंकता है ।)

ापू क्या जानते हो ? तुम्हारे कारनामों से सारा घर परेशान है ।

म्मू : मुझे इनके साथ जाना होगा, यही न ?

ापू : हाँ ।

म्मू : किसलिए ?

ापू इनके डंडे में जादू है । शैतान लड़कों को यह पालतू बना देता है । तुम तीन महीने इनके घर रहोगे ।

म्मू : (दृढ़ता के साथ) ये तीन घण्टे भी मुझे रखना पसंद नहीं करेंगे ।

मामू (हवा में कोड़ा फटकारता है ।)

बम्मू : कोड़ा मेरा क्या कर सकता है ?

बापू यह खाल खींच लेता है ।

बम्मू : मनको तो नहीं खींच सकता । बेकार है ऐसा कोड़ा । मैं उससे नहीं डरता ।

मामू : तुम्हें इस कोड़े से डर नहीं लगता ? (पुनः कोड़ा फटकारता है ।)

बम्मू : नहीं बिल्कुल नहीं (पहले सा ही जम कर खड़ा रहता है)

मामू लड़के इसके नाम से काँपते हैं । (पैंतरा बदलता है ।)

बम्मू : मुझे तो ये खिलौना सा लगता है । लाओ, देखूँ तो सही । (हाथ बढ़ाता है ।)

मामू : लो, देखो । थोड़ी देर में इससे तुम्हारा वास्ता पड़ना है ।

(कोड़ा हाथ में दे देता है ।)

बम्मू : (कोड़ा हाथ में लेकर बोलता है) बिल्कुल हल्का है (दूसरे द्वार की ओर ताककर) लीला, नीला, दीदी आओ दौड़ो, देखो कैसा हल्का है । इसे कोड़ा कहते हैं । हा हा हा ! कोड़ा, इसे हमने इस तरह मरोड़ा ।

(मरोड़ता है, भय और अचरज से चीखती भागी हुई लीला, नीला का प्रवेश)

लीला : मेरे भोले भय्या !

नीला : मेरे श्याम कन्हैया !

बनिया — मेरे छोटे—

(दादी तूफान की तरह झपटती हुई मंच पर आती है।)

दादी — क्या हंगामा मचा रखा है ! छोड़ो मेरे बच्चे को। मेरे लाल को। मैं इसे ले जाती हूँ। खबरदार, जो इसे किसी ने हाथ लगाया। कोड़ा मैं चूल्हे में झोंकती हूँ तुम्हारा। (बम्मू के हाथ से कोड़ा छीन लेती है।)

भाम्नु — कोड़ा मुझे दीजिए। वह मेरा है।

दादी — तुम्हारा है, तो यह लो (तोड़ मरोड़ कर उसके ऊपर फेंक देती है।)

बापू — मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। अब तुम सब इसको बिगाड़ने पर ही तुली हो।

[निराश हो जाते हैं]

भाम्नु — (अतीत में खो जाता है) ऐसा लड़का तो मैं भी होना चाहता हूँ। सबका लाड़ला सबका प्यारा ! ओह ! मनमौजी, उत्पाती पर स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाला !

मौसा — देखो भाम्नु कितना बदल गया है।

मौसा : देखो भाम्नु कितना सुन्दर हो गया है।

बनियां — और उसका कोड़ा कितना सुहावना लगता है।

बम्मू : (दादी की ओर से)

नहीं पढ़ेंगे नहीं पढ़ेंगे।
वेद-शास्त्र हम नहीं पढ़ेंगे।
हम बालक हैं, हम बन्दर हैं।
बाहर हैं, जितने अन्दर हैं।

विद्यार्थी को सुधारने के स्थान पर स्वयं अध्यापक सुधर जाता है। उसे अपनी पुरानी बड़ प्रयोग वाली अध्यापन पद्धति के प्रति घृणा हो जाती है और वह बच्चों को शारीरिक दंड देना छोड़ देता है।

नाटकीय कौशल —

सक्सेना जी के एकांकियों में नाटकीय स्थल का चुनाव बड़े कौशल से किया जाता है। इसके लिए पृष्ठभूमि के रूप में वातावरण का निर्माण करके नाटक की

कथावस्तु को धीरे धीरे कलात्मक रूप से बढ़ाया जाता है। जब वह नाटकीय स्थल का चरम बिन्दु (climax) प्राप्त हो जाता है तो घटना क्रम स्वभावतः दूसरी ओर मुड़ता है और उक्त नाटकीय स्थल पर्वत शिखर की तरह पृथक दिखाई देता है। पाठक या दर्शक चित्रलिखित सा उसे पढ़ता या देखता है। पाठक या दर्शक के हृदय को अधिक से अधिक स्पर्श करने वाली घटना का समावेश करने के बाद कथानक को चरम बिन्दु के लिए मोड़ देते हैं। नाटक को जितना छोटा रूप दिया है, उसमें उतना ही नाटकीय कौशल दिखाया है। "पर्णकुटी' भी पृष्ठों का छोटा सा एकांकी है, जिसमें कथानक बहुत थोड़ा है। इसमें राम और सीता से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना है। इसमें राम सीता के वनवास के जीवन की एक झांकी मात्र है। श्रीराम पुष्पहार बनाकर सीता का शृंगार कर ही रहे हैं कि इतने में सीता जी के पावों में कोई चीज आकर लगती है जिससे सीता कुछ चौंकती सी है। राम की आंखें जल उठती हैं। यह जयन्त द्वारा फेंका हुआ बाण है। यहीं से एकांकी का घटना चक्र घूमता है। जयन्त वृक्ष की ओट से भागता है। राम प्रत्यंचा चढ़ाकर पीछे दौड़ते हैं। सीता राम को लौटाती हैं। राम फिर भी उसके पीछे चले जाते हैं। सीता कहती है 'रानी होना ही पाप है जिसके लिए संसार में भाई से अधिक युद्ध लड़े जाते हैं। राम के बाणों से घायल जयन्त फिर उसी स्थल पर आता है कि सीता से क्षमा मांगे। सीता वहां से राम के पीछे पीछे चली गई है। राम फिर आकर जयन्त को पकड़ कर दण्ड देना चाहते हैं। सीता आ जाती है। जयन्त सीता जी के चरणों पर गिरना चाहता है। सीता जी के अनुनय पर राम जयन्त को छोड़ देते हैं। लक्ष्मण घायल जयन्त को कुटी में ले जाते हैं और सीता उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। इस छोटी सी घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि अन्त तक रुचि बनी रहती है।

कुछ एकांकी ऐसे हैं जिनमें समस्याओं पर कुछ विचार व्यक्त किए गए हैं और कोई सन्देश दिया गया है। इनमें नाटकीय स्थल का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है और यह ध्यान रखा गया है कि कहीं नाटक शुष्क या घटना शून्य न हो जाय या घटना क्रम में जड़ता न आ जाय। उदाहरण के लिए 'सत्य की खोज" एक संक्षिप्त एकांकी है जिसमें सीता स्वयंवर की घटना का एक दृश्य दिखाया गया है। सीता स्वयंवर से केवल इतना ही सम्बन्ध है कि सीता-स्वयंवर देखने के लिए राजा और राजकुमारों के समूह के साथ ऋषि मुनियों का समुदाय भी इकट्ठा हुआ है। ऋषि

बनिया मेरे छोरे---

(दादी तुफान की तरह झपटती हुई मंच पर आती है।)

दादी क्या हुगामा मचा रखा है! छोड़ो मेरे बच्चे को। मेरे लाल को। मैं उसे ले जाती हूँ। खबरदार, जो इसे किसी ने हाथ लगाया। कोड़ा मैं चूल्हे में झोंकती हूँ तुम्हारा। (बम्मू के हाथ से कोड़ा छीन लेती है।)

बाबू कोड़ा मुझे दीजिए। वह मेरा है।

दादी तुम्हारा है, तो यह लो (तोड़ मरोड़ कर उसके ऊपर फेंक देती है।)

बाबू मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। जब तुम सब इसको बिगाड़ने पर ही तुली हो।

[निराश हो जाते हैं]

बाबू (अतीत में खो जाता है) ऐसा लड़का तो मैं भी होना चाहता हूँ। सबका लाड़ला सबका प्यारा! ओह! मनमौजी, उत्पाती पर स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाला!

लीला : देखो बाबू कितना बदल गया है।

नीला : देखो बाबू कितना सुन्दर हो गया है।

बनिया : और उसका कोड़ा कितना सुहावना लगता है।

बम्मू : (दादी की गोद से)

नहीं पढ़ेंगे नहीं पढ़ेंगे।
वेद-शास्त्र हम नहीं पढ़ेंगे।
हम बालक हैं, हम बन्दर हैं।
बाहर हैं, जितने अन्दर हैं।

विद्यार्थी को सुधारने के स्थान पर स्वयं अध्यापक सुधर जाता है। उसे अपनी पुरानी दंड प्रयोग वाली अध्यापन पद्धति के प्रति घृणा हो जाती है और वह बच्चों को शारीरिक दंड देना छोड़ देता है।

नाटकीय कौशल —

सक्सेना जी के एकांकियों में नाटकीय स्थल का चुनाव बड़े कौशल से किया जाता है। इसके लिए पृष्ठभूमि के रूप में वातावरण का निर्माण करके नाटक की

कथावस्तु को धीरे धीरे कलात्मक रूप से उठाया जाता है। जब उस नाटकीय स्थल का चरम बिन्दु (climax) प्राप्त हो जाता है तो घटना क्रम स्वभावत दूसरी ओर मुड़ता है और उक्त नाटकीय स्थल पर्वत शिखर की तरह पृथक दिखाई देता है। पाठक या दर्शक विकसितचित सा उसे पढ़ता या देखता है। पाठक या दर्शक के हृदय को अधिक से अधिक स्पर्श करने वाली घटना का समावेश करने के बाद कथानक को चरम बिन्दु के लिए मोड़ देते हैं। नाटक को जितना छोटा रूप दिया है, उसमें उतना ही नाटकीय कौशल दिखाया है। "पर्णकुटी" नौ पृष्ठों का छोटा सा एकांकी है जिसमें कथानक बहुत छोटा है। इसमें राम और सीता से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना है। इसमें राम सीता के वनवास के जीवन की एक झांकी मात्र है। श्रीराम पुष्पहार बनाकर सीता का शृंगार कर ही रहे हैं कि इतने में सीता जी के पांवों में कोई चीज आकर लगती है जिससे सीता कुछ चौंकती सी है। राम की आंखें बाण पकड़ती हैं। यह जयन्त द्वारा फेंका हुआ बाण है। यहां से एकांकी का घटना चक्र घूमता है। जयन्त वृक्ष की ओट से भागता है। राम प्रत्यंचा चढ़ाकर पीछे दौड़ते हैं। सीता राम को लौटाती हैं। राम फिर भी उसके पीछे चले जाते हैं। सीता कहती है 'स्त्री होना ही पाप है जिसके लिए संसार में आपे से अधिक युद्ध लड़े जाते हैं। राम के बाणों से घायल जयंत फिर उसी स्थल पर आता है कि सीता से क्षमा मांगे। सीता वहां से राम के पीछे पीछे चली गई है। राम फिर आकर जयन्त को पकड़ कर दण्ड देना चाहते हैं। सीता आ जाती है। जयन्त सीता जी के चरणों पर गिरना चाहता है। सीता जी के अनुनय पर राम जयन्त को छोड़ देते हैं। सरदार घायल जयन्त को कुटी में ले जाते हैं और सीता उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। इस छोटी सी घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि अन्त तक रुचि बनी रहती है।

कुछ एकांकी ऐसे हैं जिनमें समस्याओं पर कुछ विचार व्यक्त किए गए हैं और कोई सन्देश दिया गया है। इनमें नाटकीय स्थल का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है और यह ध्यान रखा गया है कि कहीं नाटक शुष्क या घटना शून्य न हो जाय या घटना क्रम में जड़ता न आ जाय। उदाहरण के लिए 'सत्य की जाँच' एक संक्षिप्त एकांकी है जिसमें सीता स्वयंवर की घटना का एक दृश्य दिखाया गया है। सीता स्वयंवर से केवल इतना ही सम्बन्ध है कि सीता-स्वयंवर देखने के लिए राजा और राजकुमारों के समूह के साथ ऋषि मुनियों का समुदाय भी इकट्ठा हुआ है। ऋषि

धनिया मेरे छोटे

(दादी तूफान की तरह झपटती हुई मंच पर आती है।)

दादी क्या हंगामा मचा रखा है। छोड़ो मेरे बच्चे को। मेरे लाल को। मैं इसे ले जाती हूं। खबरदार, जो इसे किसी ने हाथ लगाया। कोड़ा मैं चूल्हे में झोंकती हूं तुम्हारा। (पप्पू के हाथ से कोड़ा छीन लेती है।)

भानु कोड़ा मुझे दीजिए। यह मेरा है।

दादी तुम्हारा है, तो यह लो (तोड़ मरोड़ कर उसके ऊपर फेंक देती है।)

बापू मैं अकेला क्या कर सकता हूं। अब तुम सब इसको बिगाड़ने पर ही तुली हो।

[निराश हो जाते हैं]

भानु (अतीत में खो जाता है) ऐसा लड़का तो मैं भी होना चाहता हूं। सबका लाड़ला, सबका प्यारा। ओह! मनमौजी, उत्पाती पर स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाला।

सीता : देखो, भानु कितना बदल गया है।

नीता देखो भानु कितना सुन्दर हो गया है।

धनिया और इसका कोड़ा कितना खूबसूरत लगता है।

पप्पू : (दादी की गोद से)

नहीं पढ़ेंगे नहीं पढ़ेंगे।
वेद-शास्त्र हम नहीं पढ़ेंगे।
हम बालक हैं, हम बन्दर हैं।
बाहर हैं जितने अन्दर हैं।

विद्यार्थी को सुधारने के स्थान पर स्वयं अध्यापक सुधर जाता है। उसे अपनी पुरानी दंड प्रयोग वाली अध्यापन पद्धति के प्रति घृणा हो जाती है और वह बच्चों को शारीरिक दंड देना छोड़ देता है।

नाटकीय कौशल —

सक्सेना जी के एकांकियों में नाटकीय स्थल का चुनाव बड़े कौशल से किया जाता है। इसके लिए पृष्ठभूमि के रूप में वातावरण का निर्माण करके नायक की

कथावस्तु को धीरे धीरे कलात्मक रूप से बढ़ाया जाता है। जब उस नाटकीय स्थल का चरम बिन्दु (climax) प्राप्त हो जाता है तो घटना क्रम स्वभावतः दूसरी ओर मुड़ता है और उक्त नाटकीय स्थल पर्वत शिखर की तरह पृथक दिखाई देता है। पाठक या दर्शक निर्निमिष सा उसे पढ़ता या देखता है। पाठक या दर्शक के हृदय को अधिक से अधिक स्पर्श करने वाली घटना का समावेश करने के बाद कथानक को चरम बिन्दु के लिए मोड़ देते हैं। नाटक को जितना छोटा रूप दिया है उसमें उतना ही नाटकीय कौशल दिखाया है। 'पर्णकुटी' भी पृष्ठों का छोटा सा एकांकी है जिसमें कथानक बहुत थोड़ा है। इसमें राम और सीता से सम्बन्धित एक छोटी सी घटना है। इसमें राम सीता के वनवास के जीवन की एक झांकी मात्र है। श्रीराम पुष्पहार बनाकर सीता का शृंगार कर ही रहे हैं कि इतने में सीता जी के पावों में कोई चीज आकर लगती है जिससे सीता कुछ चीखती सी है। राम की आंखें जल उठती हैं। यह जयन्त द्वारा फेंका हुआ अस्त्र है। यहां से एकांकी का घटना चक्र घूमता है। जयन्त वृक्ष की ओट से भागता है। राम प्रत्यंचा चढ़ाकर पीछे दौड़ते हैं। सीता राम को लौटाती है। राम फिर भी उसके पीछे चले जाते हैं। सीता कहती है स्त्री होना ही पाप है जिसके लिए संसार में आगे से अधिक युद्ध लड़े जाते हैं।" राम के बाणों से घायल जयन्त फिर उसी स्थल पर आता है कि सीता से क्षमा मांगे। सीता वहां से राम के पीछे पीछे चली गई है। राम फिर आकर जयन्त को पकड़ कर दण्ड देना चाहते हैं। सीता आ जाती है। जयन्त सीता जी के चरणों पर गिरना चाहता है। सीता जी के अनुनय पर राम जयन्त को छोड़ देते हैं। लक्ष्मण घायल जयन्त को कुटी में ले जाते हैं और सीता उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। इस छोटी सी घटना को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि अन्त तक रुचि बनी रहती है।

कुछ एकांकी ऐसे हैं जिनमें समस्याओं पर कुछ विचार व्यक्त किए गए हैं और कोई सन्देश दिया गया है। इनमें नाटकीय स्थल का समावेश बड़ी कुशलता से किया गया है और यह ध्यान रखा गया है कि कहीं नाटक शुष्क या घटना शून्य न हो जाय या घटना क्रम में जड़ता न आ जाय। उदाहरण के लिए "सत्य की खोज" एक संक्षिप्त एकांकी है जिसमें सीता स्वयंवर की घटना का एक दृश्य दिखाया गया है। सीता स्वयंवर से केवल इतना ही सम्बन्ध है कि सीता-स्वयंवर देखने के लिए राजा और राजकुमारों के समूह के साथ ऋषि मुनियों का समुदाय भी इकट्ठा हुआ है। ऋषि

मुनियों की सभा में महर्षि विश्वामित्र कुलीनतावाद के विरुद्ध में भाषण देते हैं, मानव मात्र के लिए समान सुविधाओं की वकालत करते हैं। यह सुनकर सत्यकाम कहता है कि महर्षि आप जो कह रहे हैं यह सत्य है। लेकिन यहां कौन आपकी बात सुनेगा। इस पर वाशिष्ठी परम्पराओं के एक वृद्ध महर्षि खड़े होकर उत्तर देते हैं कि वर्ण और धर्म सदा रहे हैं और सदा रहेंगे, और इनका जो विरोध करेंगे उन्हें नष्ट हो जाना पड़ेगा। इस उक्ति पर कुलीनतावादी सत्यकाम को आहत करते हैं और आहत सत्यकाम जब विश्वामित्र के समक्ष आता है तो वह उससे विश्राम करने के लिए कहते हैं परन्तु वह यह कह कर चला जाता है कि "मेरा काम अभी पूर्ण नहीं हुआ है। तो विश्वामित्र कहते हैं "निर्भय युवक जाओ तुम्हारे बलिदान से दुनिया को सत्य दृष्टि मिले।" लक्ष्मण और राम उसकी रक्षा का अनुरोध करते हैं। इस पर विश्वामित्र कहते हैं कि जब सत्यकाम जैसे निर्दोष और सदाचारी युवक कुलीनता की वेदी पर बलिदान हो जाते हैं, तभी दुनिया की सचाई का भान होगा। यहीं एकांकी समाप्त होता है।

सक्सेना जी के नाटकीय कौशल की विशेषता यह है कि वे इस बात का ध्यान रखते हैं कि दो विरोधों के बीच से कथा का अंकुर प्रस्फुटित हो और वह उत्तरोत्तर विकसित होता चला जाय। कभी कभी विरोधी पात्रों की सृष्टि से यह विरोध प्रदर्शित किया जाता है। कभी विरोधी परिस्थितियों के माध्यम से इसका निर्माण किया जाता है। कभी घटना चक्र के आगे पीछे घूमने से यह बनता है। कभी पात्रों के मन के भीतर के विरोधों अन्तर्द्वन्द्वों या मानसिक संस्कारों या जीवन के प्रति विरोधी मान्यताओं के आधार पर उसकी सृष्टि होती है। इसके बिना कथानक में गति नहीं आती; घटनाओं में सजीवता नहीं होती और नाट्य कौशल सुस्त (गतिविहीन) होकर व्यर्थ सा प्रतीत होने लगता है।

उदाहरण के लिए 'लाख का घर' एकांकी में कुन्ती के मन में यह गर्व उद्बुद्ध होता है कि वह दुनिया में आज सबसे अच्छी है। और वह चाहे तो सदेह स्वर्ग जा सकती है, जो कभी जीवन में किसी दूसरे को प्राप्त नहीं हुआ। उसके पुत्र आज इतने सामर्थ्यवान हैं कि वे सोने की सीढ़ी खड़ी कर सकते हैं। तभी उसके हृदय में उसके गर्व को खर्व करने वाला विचार-अंकुर उदित होता है और घटना चक्र को आगे ले चलता है।

इसी प्रकार "विजया और वासन्ती" संग्रह के "सुचाल" एकांकी में विरोधी

विचारों वाले पात्रों की सृष्टि करके कथानक को गति प्रदान की गई है। इसमें पुरुविदी, सतीजा, शीलवन्ती, चम्पादेवी, विद्याधरी आदि सभी नारी पात्र एक दूसरे के विपरीत विचार वाले हैं। इसी प्रकार पुरुष पात्रों में रावत शर्मा, सिंह आदि भी पृथक पृथक मान्यता रखनेवाले व्यक्ति हैं। इन्हीं की विरोधी मान्यताओं पर इस एकांकी का भवन निर्मित किया गया है जो एकांकी को पूर्ण उत्कर्ष प्रदान करता है।

शीलवन्ती और पुरुविदी का संवाद देखिए, जिसमें वेश्या शीलवन्ती आजकल के सभ्य परिवारों द्वारा सजधज और नृत्य गीत के फैशन को अपना लेने के विषय में कहती है—

शीलवन्ती		हमारा पेशा छिन गया है। आज घर घर में फैशन की तड़क भड़क नृत्य गीत फैल गया है, जिसके लिए लोग हमारे पास आते थे।
पुरुविदी		तुम हमारे गरेलू जीवन पर कुदृष्टि डाल रही हो।
शीलवन्ती	:	मैं तथ्य बता रही हूँ। समाज ने ही हमें बनाया है। वही हमें बिगाड़ रहा है। यही फरियाद लेकर मैं आपके पास आई हूँ।
पुरुविदी	:	मैं तुम्हारे पेशे में मदद हूँ। क्यों?
शीलवन्ती		नहीं?
पुरुविदी	:	तो आखिर तुम चाहती क्या हो?
शीलवन्ती	:	मैं कहती हूँ या तो हमें मार डालो या जीवित रहने दो।
पुरुविदी		अर्थात्?
शीलवन्ती	:	यदि यह काम बुरा है तो घर की बहू बेटियों को उससे बचाओ। उन्हें फैशन की पुतलियाँ बनने से रोको नृत्य गीत को मादक बाजारी सिखा कर उन्हें प्रचलित न करो। वेश्या के नाच को तो उठा दिया गया है पर घर घर की बहू बेटी को नचाने लगे इसी से हम मर रही हैं।
पुरुविदी	:	हूँ। (विचारमग्न हो जाती है)
शीलवन्ती	:	अभी थोड़ी देर पहले जो बहिन आपके पास से गई हैं उनकी सजधज क्या मुझसे अधिक उन्मादक नहीं है? मैं वेश्या हूँ और वे गृहिणी हैं, यह जो न जानता हो वह क्या भूल नहीं कर बैठेगा?

इसके आगे पुरुविदी की पुत्री विद्याधरी आग की लपट की तरह आती है। वह ठीक वैसी है जैसा कि वेश्या शीलवन्ती ने कहा है। आधुनिक ढंग की फैशनेबुल

वेश भूषा, पीठ पर दो वेणियां होठों पर कृत्रिम लाली गालों पर पाउडर हाथों के नाखून रंगे हुए। भौहों को काजल की सींक से तीखा किया हुआ। कमर पेटी को इस ढंग से कसा है कि ऊपर और नीचे के भाग उभर आये हैं। पैरों में कीमती सैंडल। गले में महिला सदन के चन्दे से खरीदा हुआ मोतियों का हार। हाथ की उंगलियों में दो हीरों की अंगूठियां गोरी गोरी कलाइयों में सोने के जड़ाऊ कंगन। फिर सियावरी की बात-चीत भी उसी विषय पर होती है। बहू मां को रिहर्सल में जाने की सूचना देने आई है और यह दिखाने आई है कि वह उसके उपयुक्त वेश भूषा में है अथवा नहीं। मां रोकती है पर रोक नहीं सकती। इस पर शीलवती उन्हें इस स्थिति से उबारते हुए कहती है —

शीलवती — 'बचपन भी कैसा बेफिक्री का आलम है। प्यारी सी बच्चा! देखकर आंखें शीतल होती हैं।

पूर्णदेवी — (होश में आकर) मैं इसे कतई पसन्द नहीं करती हूं, पर क्या करूं जमाने की रफ्तार देखेंगी है। तुमने मेरी आंखों पर क्या चश्मा चढ़ा दिया है ।

पूर्णदेवी का निम्न वक्तव्य हमारे आजकल के सभ्य जीवन की कटु आलोचना है। देखिए—

इधर हमारे घरेलू जीवन में नाच गान अनावश्यक रूप से बढ़ गया है। आज कोई भी आयोजन बहू-बेटियों को नचाये बिना सम्पन्न नहीं होता। अतिथि आये तो नाच अधिकारी आये तो नाच नेता आये तो नाच। हमारी संस्कृति जैसे नाच, गान की ही संस्कृति हो। बालिकाएं नाचती हैं किशोरियां नाचती हैं बालाएं नाचती हैं। शालाओं आश्रमों और संस्थाओं में सभी जगह तबला सारंगी खड़क उठे हैं। नृत्य-संगीत की कक्षाएं जगह-जगह खुल रही हैं। नगर नगर में सिनेमाघर हो गए हैं। यह भयानक महामारी है। यह संक्रामक रोग है। हमारे युवकों की प्रतिष्ठा इसी बात में होती है कि वे लड़कियों को कितना छेड़ते हैं।

शीलवती — और लड़कियां भी नित नई सजधज से क्या उन्हें इसके लिए न्योता नहीं देतीं?

पूर्णदेवी : वे उन्हें भड़काने का पूरा सरंजाम करती हैं।

दूसरी ओर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया गया है। पदवर्धन

सूचना देता है—

पटवर्धन सरकारी हिसाब निरीक्षक अचानक आ पहुँचे हैं।

पुलरिबी : फिर ?

पटवर्धन — आप सब केन्द्रों के कर्मचारियों को अच्छी तरह समझा दीजिए कि जितनी रकम के सामने हस्ताक्षर करते हैं उतना ही वेतन बतायें।

× × ×

चम्पादेवी यह रही हूं बहिन जी कि उस मक्टी चमेली ने सब भंडाफोड़ कर दिया है। कह दिया है कि हमें पचीस रुपया देते हैं और साठ पर हस्ताक्षर करवाते हैं। सामान कोई आया नहीं है और खर्च लिखा जाता है। इसी तरह न जाने क्या क्या कहा है।

इस नाटक में फैशन परस्त समाज की स्त्रियों का चित्रण है दूसरी ओर सादा जीवन व्यतीत करने वाली वेश्याओं के रहन सहन का निर्देश है जो दोनों की स्थितियों से मेल नहीं खाता किन्तु सामाजिक विडम्बना है कि उनको ऐसे जीवन में रहना पड़ता है जो उनके उपयुक्त नहीं है।

यह विरोधी वातावरण विरोधी घटनाओं विरोधी परिस्थितियों का निर्माण और चित्रण प्रायः नाटकों में देखने को मिलता है और उनके सौन्दर्य व सफलता का एक मुख्य कारण है।

अभिनयशीलता —

श्री प्रभुदयाल जी सक्सेना के अधिकांश नाटक अभिनेय हैं। उनके कुछ नाटक ऐसे भी हैं जो कठिनाई से अभिनय करने योग्य हैं। जिनमें बहुत कम पात्र हैं और भावुकता अधिक है व्यक्त लम्बे हैं वे अभिनय योग्य नहीं हैं जैसे 'पत्थरी'। कुछ आरम्भिक रचनाएं अभिनय की दृष्टि में रख कर लिखी गई नहीं प्रतीत होतीं। जैसे 'पयाजली' के कुछ एकांकी। इन्हें खेलने के लिए आवश्यक है कि समयानुसार कुछ परिवर्तन कर लिया जाय यद्यपि ये नाटक हो स्कूलों में प्राय खेले जाते हैं। "राखी नाटक भी कई स्कूलों में विद्यार्थियों द्वारा सफलतापूर्वक अभिनय किया जा चुका है। 'विजया और वारुणी', 'पर्णकुटी' आदि संग्रहों के सब एकांकी अभिनय के योग्य हैं। रंगमंचीय

तात्पर्य यह है कि थोड़े होते हुए भी सक्सेना जी के रंगमंच निर्देश अपने आप में पूर्ण होते हैं। इनमें पात्रों के रूप, वय और चरित्र की भी संक्षिप्त झाँकी मिल जाती है। इस प्रकार के संकेतों से पाठक अपने मन में पात्रों के चरित्र की कल्पना कर लेता है। जैसे—

दिव्या — अनिंद्य सुन्दर षोडसी वारविलासिनी।
अभया — एक प्रगल्भवयस्का विदुषी।
मोहिया — देश-सेवक के रूप में एक धूर्त।

इन संकेतों के कारण एकांकियों को कथा-रूप में पढ़नेवाले कल्पनाशील और भावुक पाठक भी पूरा आनन्द उठा लेते हैं। उन्हें पात्रों की अनुभूतिशीलता और तादात्म्य प्राप्त हो जाता है। सक्सेना जी के ये रंगमंच निर्देश कथावस्तु को सजीवता और रोचकता प्रदान करते हैं। यही कारण है कि रंगमंच की अपेक्षा पढ़ने के शौकीन अध्ययनशील पाठकों में ये नाटक विशेष लोकप्रिय हुए हैं।

नाटकों के गीत —

श्री संतुदयाल सक्सेना ने अपने कुछ एकांकियों तथा नाटकों में मार्मिक गीतों का भी प्रयोग किया है। विद्यापीठ, सवाई लाखनारायण, तपस्वी बत्सराज आदि में गीतों का प्रयोग हुआ है। ये संक्षिप्त हैं और एकांकी के मूल भाव तथा घटना के साथ सम्बद्ध हैं। परिस्थिति या पात्र की जैसी मनोदशा है वह इनमें बह निकली है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता इनकी सरलता सरसता और सहजता है। शब्दों की कहीं ठूँसठाँस नहीं है। जैसे पात्र के मनोभाव स्वतः वेदना की अभिव्यक्ति से बह निकले हों। वह कोई विशेष प्रयत्न (Effort) करता हुआ नहीं दीखता प्रत्युत सहज भाव से अपने मन का हाहाकार शब्दों में उँडेल देता है। इनमें जीवन की तरलता और माधुर्य है।

विद्यापीठ में सुलता गीत है—

"कैसे मन की बात कहूँ ?
सखि, मैं जलती सदा रहूँ ।

पानी में भी मीन पिपासी
ता भी डर विश्वासी,
क्यो मरे मुस्कराती !

सखि मैं जलती सदा रहूँ !
कैसे जी का भाव कहूँ।

देवयानी के हृदय में कच के प्रति जो प्रेम उमड़ उठा है उसी को इस गीत में अभिव्यक्त किया गया है। नदी के किनारे खड़ी हुई लहरों में काव्य की कल्पना करती हुई देवयानी कहती है कि रात्रि के स्वप्न सुन्दर होते हैं, पर सत्य नहीं। दिन के स्वप्न सत्य भी होते हैं और सुन्दर भी। उसके इस कथन को उसकी सखियाँ सत्यकामा और पूर्णा आकर सुन लेती हैं और आगे को उनका संवाद चलता है उससे देवयानी का भावुक प्रेम और भी अधिक उमड़ पड़ता है जो इस गीत में व्यक्त हुआ है। यह गीत देवयानी की मनोदशा को मार्मिकता से व्यक्त करता है। परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल है।

स्वयं उच्च कोटि के कवि होने के कारण श्री प्रभुदयाल सक्सेना ने प्रत्येक पात्र के मनोभावों का अच्छा विश्लेषण प्रस्तुत किया है। विद्यापीठ का दूसरा गीत पांचवें दृश्य के आरम्भ में देवयानी के मुँह से गाया जाता है जो नीचे उद्धृत किया जाता है —

"मेरे भाग सुहाग भरे हैं, यह मैं कैसे मानूँ ?
घर बैठे आ गये देवता, क्या इतना बस जानूँ ?

पर पूजा शृंगार कहाँ है ?
पल पल उठता ज्वार यहाँ है !

प्रिय को पाश न बने ढगे यह प्यार हार क्यों मानूँ ?
मेरे भाग सुहाग भरे हैं यह मैं कैसे मानूँ ?

सुलग रही अन्तर में ज्वाला
झुलसा रोम रोम हो हाला।

तमकिरण की जाली बनते जो विमान मैं तानूँ।
मेरे भाग सुहाग भरे हैं, यह मैं कैसे मानूँ ?

दर्शन-सुधा पिलाओ तुम
मर कर भी यह प्यारा बिछुड़ा।

बन बन भटक भटक पथ की रज मैं अगिन हो छानूँ।
मेरे भाग सुहाग भरे हैं यह मैं कैसे मानूँ ?'

यह गीत कुछ अधिक लम्बा है। देवयानी के हृदय में कच का प्रेम दीर्घकाल से पीड़ित हो रहा है परन्तु उसे कच की ओर से किसी प्रकार का प्रत्युत्तर नहीं मिलता। कच जैसे प्रेम की पाठशाला का क ख ग भी नहीं जानता इस प्रकार का आचरण करता है। उसे देवयानी के मन की दशा का रंच मात्र भी ज्ञान नहीं है। इसी मनोदशा में देवयानी उक्त गीत में अपनी व्यथा को व्यक्त करती है। वह कहती है कि मैं इस पर कैसे विश्वास करूं कि मेरा भाग्य सौभाग्य से पूर्ण होगा। क्या इसी को मैं अपना सौभाग्य मान लूं कि मेरे देवता मुझे घर बैठे आकर मिल गए हैं। मेरा प्यार जब तक उन्हें बांध नहीं पाता तब तक मैं उसे कैसे प्रेम का हार समझूं ? मेरे हृदय में एक अग्नि जल रही है। रोम रोम में ज्वाले उठ आये हैं। मैं भावों के जितने भी जाल तानती हूं वे सब मेरे लिए जलाने वाले हो जाते हैं। उन्हें देखने से हृदय जलता है और मेरा हृदय-कलश खाली का खाली रह जाता है। ये भाव बड़े ही कोमल हैं तथा एक नवयुवती के मन का सच्चा परिचय प्रदान करते हैं। शब्दों में कहीं भी क्लिष्टता या भावों की दुरूहता नहीं है। सहज भाव से जैसे यह गीत उसके हृदय से बह निकला है।

अन्तिम गीत दसवें दृश्य के आरम्भ में आया है जब संजीवनी विद्या प्राप्त करके कच देवलोक को जाने का निश्चय कर चुका है और यह तथ्य देवयानी को ज्ञात हो चुका है। उसका चिर-पोषित प्रेम का स्वप्न टूट चुका है। इसी को वह अपनी सखियों के समक्ष निम्न लिखित गीत में व्यक्त करती है। आज उसके पास छिपाने के लिए कुछ भी नहीं है। लज्जा और संकोच सब कुछ त्याग कर वह पूर्ण और सत्यकामा के समक्ष उस भय को प्रदर्शित करती है जो भावी जीवन की घड़ियां लाने वाली हैं —

सखि, वे सचमुच जायंगे !

प्राण वियोगी इस पिंजर में
तड़प तड़प रह जायंगे !
क्या दो बूंद स्वाति जल भी
ये लोचन-सीप न पायंगे !
यहीं लगाये हुए प्यार के
ये पौधे मुरझायंगे !
ओस-बूंद से चिर संचित
क्या सब अरमान बिलायंगे !
सखि, वे सचमुच जायंगे !

गीत का भावार्थ स्पष्ट है। देवयानी कहती है "क्या वे सचमुच चले जायेंगे और मेरे वियोगी प्राण इसी प्रकार अधीर बनो पिंजरे में तड़पते रहेंगे ? क्या इन लोचन चातकों को उनका दर्शन रूपी स्वातिजल का एक बूँद भी दुर्लभ हो जायगा ? क्या मेरे प्रेम का पौधा जो अभी दुनिया को भी नहीं देख पाया है, इसी प्रकार मुर्झा जायगा ? फूल पत्तियों पर पड़ी हुई ओस जैसे प्रभात की किरणों से विलुप्त हो जाती है क्या उसी प्रकार मेरे हृदय के चिर संचित अरमान विलुप्त हो जायेंगे ? हाय ! क्या वे सचमुच चले ही जायेंगे ?

उसके इस गीत के भाव को पुरुषी और सत्यकामा बिना बताये ही समझ लेती है। ऋषियों के आश्रम में भी प्रेम उसी प्रकार अपने नीड़ बनाता है जैसे गृहस्थों के घर में। यह स्वाभाविक मानवी व्यापार तपोवन के वातावरण को भेद कर मनुष्य की नैसर्गिक इच्छाओं को ही व्यक्त करता है। परन्तु यह देवलोक से आये हुए अन्तेवासी (कच) कच के हृदय पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता। वह जैसे इस सारे व्यापार को हृदयंगम ही नहीं कर पाता।

"साध्वी" नामक एकांकी में वियोगिनी उर्मिला अपने झरोखे में बैठी हुई धीमे कंठ से गा रही है। झरोखे के नीचे सरयू का जल कलकल करता हुआ बहता जा रहा है। ऊपर से उर्मिला की आँखें आँसुओं की झड़ी लगाये अपनी लम्बी वेणी को बाएँ कन्धे की ओर से हाथों में लिए हुए। वह सायंकाल की निस्तब्धता में सहज भाव से गुनगुनाने लगती है —

जिस वेणी को गूँथ गये थे,
उसको कैसे खोलूँ री !
रस मानस में घोल गये थे,
उसमें विष क्यों घोलूँ री !

वेणी को हाथ में लिए हुए वियोग-मुग्धा उर्मिला कहती है कि जिसे उन्होंने जाने से पूर्व अपने हाथों से गूँथा था उसे मैं कैसे खोलूँ ? जिस हृदय में वे रस घोल गए थे उसमें मैं विष कैसे घोलूँ ? यह मर्म वेदना चार पंक्तियों में ही जीवन की बहुत बड़ी कहानी कह देती है। वियोग के लम्बे चौदह वर्ष उस तपस्विनी ने बिना शृंगार किये

धों से संकट से व्यतीत किये हैं, इसका आभास इन पंक्तियों में ध्वनित होता है। इसी एकांकी में आगे चल कर गीत की छः पंक्तियां और हैं जो नीचे उद्धृत की जाती हैं —

'वे तपते मैं शीतल छाती।
वे वन में मैं घर में छोती।
वे प्रभु का चरणामृत पीते।
मेरे जीवन के दिन रीते।

मैं आंसू से पलकें धोती।
वे तपते मैं शीतल होती।

उर्मिला को वियोग व्यथा है, परन्तु वह उसे अपने प्रिय के भाग में उलाहना या बाधा के रूप में ग्रहण नहीं करती। वह उसे प्रसाद के रूप में अपने हृदय में संजोकर रखना चाहती है। वह कहती है कि उनके तप से मैं अपने आपको शीतल अनुभव करती हूँ। मेरी पलकों में जो आंसू उमड़ते हैं वे मेरे हृदय को ठंडा करते हैं। यद्यपि वे अपने प्रभु के समीप रहकर उनका चरणामृत पान करते हैं और यहां मेरे जीवन के दिन सूने हैं, फिर भी मुझे कोई शिकायत नहीं है।

'नम्बरानी'' में सूरदास का एक पद उपयुक्त स्थान पर उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार ''तामनारव'' में मीरा के पद यत्र तत्र मीरा के मुख से ही गवाये गए हैं। इसमें मीरा की वेदना तो व्यक्त ही हुई है साथ ही इस कथानक की वह पात्री होने के कारण किसी प्रकार की नहीं आने पाई ना प्रतीत होता है जैसे ये भी रचना का अंग

में अभी। सूरदास का पद गवाया गया है।

''सगाई'' पालतू बिल्ली के बच्चे

तरह ... गाकर पले

ओ बाबा

सक्सेना जी ने सैकड़ों लोरियां लिखी हैं। चार पांच पुस्तकें केवल लोरियों की ही छपी हैं। उनमें बालजीवन का चित्रण है और वे मां और बच्चे के हृदय को बहुत मार्मिकता से व्यक्त करती हैं। ऐसे स्थल पर उनमें से कोई भी लोरी उपयुक्त हो सकती थी। यह लोरी जो विशेष रूप से यहां दी गई है अत्यन्त कोमल और गेय है। इसमें मधुर लय तथा संगीत है। बीणा और ममता की लड़कियों के सम्पर्क से इसमें मुग्ध हास्य का भी समावेश हो गया है बालों के अपने बच्चे को ही सुला रही हों। मां का हृदय कैसे भर निकला है!

सक्सेना जी के गीतों में साहित्यिक सी वर्ष है। उच्च कोटि की कलात्मकता है। इनकी भावुकता सीधी पाठक के हृदय में प्रवेश करनेवाली है। नाटकों के गीतों में सक्सेना जी का कवि बहुत ही सरल स्निग्ध रूप में पाठकों को परिचित कराता है। कई एक गीतों की मार्मिकता नेयता और भावुकता तो हृदय को बींन्धी सी जाती है। "सगाई" का एक गीत लीजिए —

> 'मन-पंछी, तू मटक न श्रो रे!
> चन्द्र दूर है साजन प्यारे, साजन प्यारे
> मन-पंछी, तू मटक न श्रो रे!
> कठिन पंथ है, भूमि अनजानी, मायर क्यार चले रे।
> मन-पंछी, तू मटक न श्रो रे!
> चन्द्र दूर है, साजन प्यारे साजन प्यारे
> मन पंछी, तू मटक न श्रो रे!

गरीब मां बाप की भोली कन्या बीणा के लिए कोई वर नहीं तैयार होता। परन्तु उसने अपने हृदय में बचपन के साथी को अपना समझ रखा है। उसके हृदय में उसके प्रति अनजाने ही पूर्ण राग का मधुर जम गया है। मां के नाम उसका जो पत्र आया है जिसमें कोई प्रेम सन्देश नहीं है; न हृदय की कोई गूढ़ या प्रकट भावना है उसे ही लेकर बीणा सुख अनुभव कर रही है और मां तथा बहिन के पड़ोस के घर में जहां विवाह की धूमधाम है जाने जाने पर अकेलेपन का लाभ उठा कर बीणा उस पत्र को बार बार पढ़ती है और भावों में विभोर होकर ऊपर लिखा गीत गाती है जिसमें परिस्थिति का आभास भी है, और उसके हृदय की करुणा भी।

कैसे संकट में व्यतीत किये हैं, इसका आभास इन पंक्तियों में ध्वनित होता है। इसी एकांकी में आगे चल कर गीत की ये पंक्तियां और हैं जो नीचे उद्धृत की जाती हैं —

"वे तपते मैं शीतल होती।
वे बन में मैं घर में सोती।
वे प्रभु का चरणामृत पीते।
मेरे जीवन के दिन रीते।

मैं आंसू से पलकें धोती।
वे तपते मैं शीतल होती।

उर्मिला को वियोग जलाता है परन्तु वह उसे अपने प्रिय के मार्ग में उलझाता सा बाधा के रूप में ग्रहण नहीं करती। वह उसे प्रसाद के रूप में अपने हृदय में संजोकर रखना चाहती है। वह कहती है कि उनके तप से मैं अपने आपको शीतल अनुभव करती हूँ। मेरी पलकों में जो आंसू उमड़ते हैं वे मेरे हृदय को ठंडा करते हैं। यद्यपि वे अपने प्रभु के समीप रहकर उनका चरणामृत पान करते हैं और यहां मेरे जीवन के दिन सूने हैं, फिर भी मुझे कोई शिकायत नहीं है।

"नम्बरानी" में सूरदास का एक पद उपयुक्त स्थान पर उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार "तानसायन" में मीरां के पद यत्र तत्र मीरा के मुख से ही गवाये गए हैं। इसमें मीरा की वेदना तो व्यक्त हो हुई है साथ ही इस कथानक की वह पात्री होने के कारण किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं आने पाई है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे ही रचना का अंग हों। इसी प्रकार नम्बरानी में उन्हीं के मुख से वह सूरदास का पद गवाया गया है।

सामाजिक एकांकी "सगाई" में पृष्ठ २८ पर चौरा अपने पालतू बिल्ली के बच्चे को गोद में लेकर सुलाने का अभिनय करती है और बच्चों की तरह लोरी गाकर उसे सुलाती है। यह गीत ये पंक्तियाँ का है :—

अलस उनींदी अखियां तुम्हारी, सो जाओ मैयन सो जाओ लालन।
चांद गगन में फूल चरन में, सोवे हैं सुख से सो जाओ लालन॥
प्यार करो न बमार करो मत भया के मोहन, बहना के बीरन।
रतियां न जागो, अखियां उनींदी आ जाओ सगुन,सो जाओ लालन॥
ओस नहाई रात को लेने आयीं सपन के दूत सलोने।
सने से पात में छिनगा खेलता मधुमरे धागा फूल के दोने॥

सक्सेना जी ने सैकड़ों लोरियाँ लिखी हैं। चार पाँच पुस्तकें केवल लोरियों की ही छपी हैं। उनमें बालजीवन का चित्रण है और वे माँ और बच्चे के हृदय को बहुत मार्मिकता से व्यक्त करती हैं। ऐसे स्थल पर उनमें से कोई भी लोरी उपयुक्त हो सकती थी। यह लोरी जो विशेष रूप से यहाँ दी गई है, अत्यन्त कोमल और गेय है। इसमें मधुर लय तथा संगीत है। बीणा और मथना की लड़कियों के सम्पर्क से इसमें कुछ हास्य का भी समावेश हो गया है मानों वे अपने बच्चे को ही सुला रही हों। माँ का हृदय जैसे भर निकला है!

सक्सेना जी के गीतों में साहित्यिक लोकर्ष है। उच्च कोटि की कलात्मकता है। इनकी भावुकता सीधी पाठक के हृदय में प्रवेश करनेवाली है। नाटकों के गीतों में सक्सेना जी का कवि बहुत ही सरल-स्निग्ध रूप में पाठकों को प्रभावित करता है। कई एक गीतों की मार्मिकता गेयता और मधुरता तो हृदय को चीरती सी जाती है। "सगाई" का एक गीत लीजिए —

"मन-पंछी तू भटक न ओ रे!
चन्द्र दूर है साजन न्यारे, साजन न्यारे!
मन-पंछी, तू भटक न ओ रे!
कठिन पंथ है, भूमि ऊबड़खाबड़, गागर भार भरी रे!
मन-पंछी, तू भटक न ओ रे!
चन्द्र दूर है, साजन न्यारे, साजन न्यारे!
मन पंछी, तू भटक न ओ रे!

गरीब माँ बाप की भोली कन्या बीणा के लिए कोई वर नहीं तैयार होता। परन्तु उसने अपने हृदय में बचपन के साथी को अपना समझ रखा है। उसके हृदय में उसके प्रति अनजाने ही पूर्व राग का अंकुर जम गया है। माँ के नाम उसका जो पत्र आता है जिसमें कोई प्रेम सन्देश नहीं है, न हृदय की कोई गुप्त या प्रकट भावना है; उसे ही लेकर बीणा सुख अनुभव कर रही है और माँ तथा बहिन के पड़ोस के घर में, जहाँ विवाह की धूमधाम है चले जाने पर अकेलेपन का लाभ उठा कर बीणा उस पत्र को बार बार पढ़ती है और भावों में विभोर होकर ऊपर लिखा गीत गाती है जिसमें परिस्थिति का आभास भी है और उसके हृदय की वेदना भी।

और उसके हृदय में बसा हुआ प्रेम का अंकुर भी कैसे धीरे धीरे प्रस्फुटित हो रहा है। स्थल अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

बाल नाटकों; जैसे "रणबांकुरा राजकुमार"; "राखी" आदि में वीरता, शौर्य, साहस तथा जाति देश और संस्कृति-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत अनेक गीत हैं। वे मौलिक हैं, बालोपयोगी शिक्षापूर्ण और सरल भाषा में लिखे गए हैं। 'रणबांकुरा राजकुमार" में पांच वीर-रस पूर्ण गीत हैं। बच्चों को उत्साह प्रदान करने तथा उनके अन्दर वीरता और देश प्रेम के भाव जागृत करनेवाले हैं। उदाहरण के रूप में चौथे दृश्य के प्रारम्भ में दिया हुआ गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ चारण गा रहा है। यह उद्बोधन गीत है —

'हमने नर-नाहर उपजाये
हमने जौहर-व्रत रचाये।

जूझ रहे हैं वीर हमारे।
बढ़ते हैं रणधीर हमारे।
मातृभूमि पर सब कुछ वारे।
कौन शूर जो उन्हें पछारे!

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
शत्रु सदा जिनसे घबराये।

सबल मुगल के बैर जगाते।
रणचण्डी को नित्य नचाते
रक्त-नदी में खूब नहाते
रणबांके क्षत्रिय कहलाते।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
वसुधा जिनके यश से छाये।

दृश्य विधान और संकलन त्रय —

सफल नाटककार को दृश्य विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अभिनय कला की दृष्टि से एकांकी के नाना दृश्यों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन त्रय की रक्षा होते हुए दृश्यों का विधान होता रहे। एक दृश्य के उपरान्त ऐसे दृश्य आयें, जिनका अन्तर से निर्माण किया जा सके। जब पर्दा उठे, तो अन्दर दूसरे दृश्य का सामान तैयार रहे। समय कार्य और स्थान की इकाई (Unity) का पालन भी होता रहे। संकलन त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि वह जीवन की एक घटना एक स्थिति या एक पहलू की झांकी मात्र है। वह एक सीमित रचना है। कुछ एकांकीकार न दृश्य-विधान का ध्यान रखते हैं, न संकलन-त्रय को ही महत्व देते हैं। इन दोनों के अभाव में नाटक या एकांकी लिखा जा सकता है। रेडियो नाटकों में इसकी छूट दी गई है पर स्टेज पर उसमें स्वाभाविकता नहीं आती तथा एकांकी का जोर और प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता जाती रहती है। पढ़ने में भले और साहित्यिक दृष्टि से अच्छे होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं कहे जा सकते। एकांकी का जो इतना प्रचार और लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि बिना किसी बाह्याडम्बर या स्टेज की बड़ी झंझटों के उन्हें रंगमंच पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा ये समय समय पर पूर्ण मनोयोग से काम अभिनेताओं द्वारा खेले जाते हैं।

श्री शंभूदयाल सक्सेना के एकांकियों में दृश्य-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विषपान" ऐसे भी हैं, जिनमें दृश्यों की संख्या अधिक हो गई है। यह इसलिए हुआ है कि उन्होंने बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा ले ली है। आरम्भिक स्थिति तथा वातावरण तैयार करने में ही उन्हें कई दृश्य रखने पड़े हैं तब एकांकी में तेजी आई है। यह रोचकता धीरे धीरे आने लगी है। अन्त तक पहुंचते पहुंचते रहस्य ग्रन्थि खुली है। ये बड़े एकांकी अभिनय की अपेक्षा पठन-पाठन की ही वस्तु हैं। यों थोड़े बहुत परिवर्तन से और स्टेज की साधारण सजावट से इन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विविध दृश्य जैसे-जैसे चरम-सीमा की ओर बढ़ते हैं, वैसे वैसे रंगमंचीय प्रभाव प्रबल होता जाता है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी कुशलता से दिखाया गया है।

सक्सेना जी के "ममरती' एकांकी में संकलन त्रय का निर्वाह नहीं हो पाया है। एक घटना बाल्यकाल की है तो दूसरी युवावस्था की। पर यह एक स्वप्न नाटक है। अपनी दृष्टि से बिल्कुल नया है। नाट्य कौशल से इसकी कथावस्तु गढ़ी गई है। इसमें

और उसके हृदय में बसा हुआ प्रेम का अंकुर भी कैसे धीरे धीरे प्रस्फुटित हो रहा है। स्थल अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

बाल नाटकों; जैसे "रणबांकुरा राजकुमार"; "राखी" आदि में वीरता, शौर्य, साहस तथा जाति, देश और संस्कृति-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत अनेक गीत हैं। ये मौलिक हैं बालोपयोगी शिक्षापूर्ण और सरल भाषा में लिखे गए हैं। "रणबांकुरा राजकुमार" में पांच वीर-रस पूर्ण गीत हैं। बच्चों को उत्साह प्रदान करने तथा उनके अन्दर वीरता और देश प्रेम के भाव जागृत करनेवाले हैं। उदाहरण के रूप में नीचे दृश्य के आरम्भ में दिया हुआ गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ चारण गा रहा है। यह उद्बोधन गीत है —

'हमने नर-नाहर उपजाये
हमने जौहर-व्रत रचाये।

जूझ रहे हैं वीर हमारे।
बढ़ते हैं रणधीर हमारे।
मातृभूमि पर सब कुछ वारे।
कौन शूर जो उन्हें पछारे!

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
शत्रु सदा जिनसे घबराये।

रुण्ड मुण्ड के ढेर लगाते।
रणचण्डी को नित्य चढ़ाते
रक्त-नदी में खूब नहाते
रणबांके क्षत्रिय कहलाते।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
वसुधा जिनके डर से कांपे।

दृश्य विधान और संकलन त्रय —

सफल नाटककार को दृश्य विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अभिनय कला की दृष्टि से एकांकी के नाना दृश्यों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन-त्रय की रक्षा होते हुए दृश्यों का विभाग होता रहे। एक दृश्य के उपरान्त ऐसे दृश्य आयें जिनका अम्बर से निर्माण किया जा सके। जब पर्दा उठे, तो अम्बर दूसरे दृश्य का सामान तैयार रहे। समय कार्य, और स्थान की इकाई (Unity) का पालन भी होता रहे। संकलन-त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि वह जीवन की एक घटना एक स्थिति या एक पहलू की झांकी मात्र है। वह एक संक्षिप्त रचना है। कुछ एकांकीकार न दृश्य-विधान का ध्यान रखते हैं न संकलन-त्रय को ही महत्व देते हैं। इन दोनों के अभाव में नाटक या एकांकी लिखा जा सकता है। रेडियो नाटकों में इसकी छूटी छूट है पर स्टेज पर उसमें स्वाभाविकता नहीं आती तथा एकांकी का जोर और प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता जाती रहती है। पढ़ने में भले और साहित्यिक दृष्टि से अच्छे होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं कहे जा सकते। एकांकी का जो इतना प्रचार और लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि बिना किसी बाह्याडम्बर या स्टेज की बड़ी झंझटों के उन्हें रंगमंच पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा वे समय समय पर कुछ मनोयोग से बाल अभिनेताओं द्वारा खेले जाते हैं।

श्री रघुवरदयाल सक्सेना के एकांकियों में दृश्य-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विस्फोट" ऐसे भी हैं जिनमें दृश्यों की व्यवस्था अधिक हो गई है। यह इसलिए हुआ है कि उन्होंने बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा ले ली है। प्रारम्भिक स्थिति तथा वातावरण तैयार करने में ही उन्हें कई दृश्य रखने पड़े हैं तब एकांकी में तेजी आई है। यह रोचकता धीरे धीरे आगे बढ़ी है। अन्त तक पहुंचते पहुंचते रहस्य ग्रन्थि खुली है। ये बड़े एकांकी अभिनय की अपेक्षा पठन-पाठन की ही वस्तु हैं। यों थोड़े बहुत परिवर्तन से और स्टेज की साधारण सजावट से इन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विविध दृश्य जैसे-जैसे चरम-सीमा की ओर बढ़ते हैं, वैसे वैसे रंगमंचीय प्रभाव सबल होता जाता है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है।

सक्सेना जी के "बमरानी' एकांकी में संकलन त्रय का निर्वाह नहीं हो पाया है। एक घटना बाल्यकाल की है तो दूसरी युवावस्था की। पर यह एक स्वप्न नाटक है। अपनी दृष्टि से बिल्कुल नया है। नाट्य-कौशल से इसकी कथावस्तु गढ़ी गई है। इसमें

और उसके हृदय में जमा हुआ प्रेम का अंकुर भी कैसे धीरे धीरे प्रस्फुटित हो रहा है। स्थल अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

बाल नाटकों जैसे "रणबांकुरा राजकुमार"; "राखी" आदि में वीरता, शौर्य, साहस तथा जाति, देश और संस्कृति-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत अनेक गीत हैं। ये मौलिक हैं बालोपयोगी शिक्षापूर्ण और सरल भाषा में लिखे गए हैं। "रणबांकुरा राजकुमार" में पांच गीत रस पूर्ण गीत हैं। बच्चों को उत्साह प्रदान करने तथा उनके अन्दर वीरता और देश प्रेम के भाव जागृत करनेवाले हैं। उदाहरण के रूप में चौथे दृश्य के आरम्भ में दिया हुआ गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ चारण गा रहा है। यह उद्बोधन गीत है —

'हमने नर-नाहर उपजाये
हमने जौहर-व्रत रचाये।

जूझ रहे हैं वीर हमारे।
बढ़ते हैं रणधीर हमारे।
मातृभूमि पर सब कुछ वारे।
कौन शूर जो उन्हें पछारे।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
शत्रु सदा जिनसे थर्राये।

मस्तक मुण्ड के ढेर लगाते।
रणचण्डी को नित्य जगाते
रक्त-नदी में खूब नहाते
रणबांके क्षत्रिय कहलाते।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
मृत्यु जिनके मग से हारे।

दृश्य विधान और संकलन त्रय —

सफल नाटककार को दृश्य विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अभिनय कला की दृष्टि से एकांकी के नाना दृश्यों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन त्रय की रक्षा होते हुए दृश्यों का विधान होता रहे। एक दृश्य के उपरान्त ऐसे दृश्य आवें, जिनका अन्दर से निर्माण किया जा सके। जब पर्दा उठे, तो अन्दर दूसरे दृश्य का सामान तैयार रहे। समय काल और स्थान की इकाई (Unity) का पालन भी होता रहे। संकलन-त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि वह जीवन की एक घटना एक स्थिति, या एक पहलू की झांकी मात्र है। वह एक संक्षिप्त रचना है। कुछ एकांकीकार न दृश्य-विधान पर ध्यान रखते हैं न संकलन त्रय को ही महत्व देते हैं। इन दोनों के अभाव में नाटक या एकांकी लिखा जा सकता है। रेडियो नाटकों में इसकी छूट भी हुई है पर स्टेज पर उसमें स्वाभाविकता नहीं आती तथा एकांकी का जोर और प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता जाती रहती है। पढ़ने में अच्छे और साहित्यिक दृष्टि से अच्छे होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं कहे जा सकते। एकांकी का जो इतना प्रचार और लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि बिना किसी बाह्याडम्बर या स्टेज की बड़ी झंझटों के उन्हें रंगमंच पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा वे समय समय पर पूर्ण मनोयोग से बाल अभिनेताओं द्वारा खेले जाते हैं।

श्री भृगुदयाल सक्सेना के एकांकियों में दृश्य-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विद्यापीठ" ऐसे भी हैं, जिनमें दृश्यों की संख्या अधिक हो गई है। यह इसलिए हुआ है कि इन्होंने बड़ी पौराणिक या ऐतिहासिक कथा ले ली है। प्रारम्भिक स्थिति तथा वातावरण तैयार करने में ही उन्हें कई दृश्य रखने पड़े हैं, तब एकांकी में तेजी आई है। यह रोचकता धीरे धीरे आगे बढ़ी है। अन्त तक पहुंचते पहुंचते रहस्य ग्रन्थि खुलती है। ये बड़े एकांकी अभिनय की अपेक्षा पठन-पाठन की ही वस्तु हैं। यों थोड़े बहुत परिवर्तन से और स्टेज की साधारण बनावट से इन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विविध दृश्य जैसे-जैसे चरम-सीमा की ओर बढ़ते हैं वैसे वैसे रंगमंचीय प्रभाव प्रबल होता जाता है। पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है।

सक्सेना जी के "अमरानी" एकांकी में संकलन त्रय का निर्वाह नहीं हो पाया है। एक घटना बाल्यकाल की है तो दूसरी युवावस्था की। पर यह एक स्वप्न नाटक है। अपनी दृष्टि से बिल्कुल नया है। नाट्य-कौशल से इसकी कथावस्तु गढ़ी गई है। इसमें

और उसके हृदय में छमा हुआ प्रेम का अंकुर भी धीरे धीरे प्रस्फुटित हो रहा है। स्थल अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी है।

बाल नाटकों; जैसे "रत्नांकुरा राजकुमार" "राखी" आदि में वीरता, शौर्य साहस तथा जाति, देश और संस्कृति-प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत अनेक गीत हैं। ये मौलिक हैं बालोपयोगी शिक्षापूर्ण और सरल भाषा में लिखे गए हैं। "रत्नांकुरा राजकुमार" में पांच वीर रस पूर्ण गीत हैं। बच्चों को उत्साह प्रदान करने तथा उनके अन्दर वीरता और देश प्रेम के भाव जागृत करनेवाले हैं। उदाहरण के रूप में चौथे दृश्य के आरम्भ में दिया हुआ गीत देखिए। पहाड़ी के पत्थर पर बैठा हुआ चारण गा रहा है। यह उद्बोधन गीत है —

"हमने नर-नाहर उपजाये
हमने जौहर-व्रत रचाये।

जूझ रहे हैं वीर हमारे।
बढ़ते हैं रणधीर हमारे।
मातृभूमि पर सब कुछ वारे।
कौन शूर जो उन्हें प्रचारे!

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
शत्रु सदा जिनसे थर्राये।

खण्ड मुण्ड के ढेर लगावे।
रणचण्डी को भोग लगाते
रक्त-नदी में खूब नहाते
रणबांके क्षत्रिय कहलाते।

नर-नाहर ऐसे उपजाये।
शत्रु जिनके भय से भागे।

दृश्य विधान और संकलन त्रय —

सफल नाटककार को दृश्य विधान की कला से परिचित होना आवश्यक है।

अभिनय कला की दृष्टि से एकांकी के नाना दृश्यों का निर्माण इस प्रकार हो कि संकलन-त्रय की रक्षा होते हुए दृश्यों का विधान होता रहे। एक दृश्य के उपरान्त ऐसे दृश्य आवें, जिनका आम्बर से निर्माण किया जा सके। जब पर्दा उठे तो आम्बर दूसरे दृश्य का सामान तैयार रहे। समय कार्य और स्थान की इकाई (Unity) का पालन भी होता रहे। संकलन-त्रय की आवश्यकता एकांकी में विशेष स्थान रखती है क्योंकि यह जीवन की एक घटना एक स्थिति या एक पहलू की झांकी मात्र है। यह एक मौलिक रचना है। कुछ एकांकीकार न दृश्य-विधान का ध्यान रखते हैं न संकलन-त्रय को ही महत्व देते हैं। इन दोनों के अभाव में नाटक या एकांकी लिखा जा सकता है। रेडियो नाटकों में इसकी छूटी छूट है पर स्टेज पर उसमें स्वाभाविकता नहीं आती तथा एकांकी का जोर और प्रभाव कम हो जाता है। स्वाभाविकता जाती रहती है। पढ़ने में भले और साहित्यिक दृष्टि से अच्छे होते हुए भी ऐसे एकांकी सफल नहीं रह जा सकते। एकांकी का जो इतना प्रचार और लोकप्रियता बढ़ रही है उसका एक कारण यह है कि बिना किसी बाह्याडम्बर या स्टेज को बड़ी झंझटों के उन्हें रंगमंच पर उतारा जा सकता है। साहित्यिक और शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा वे समय समय पर पूर्ण मनोयोग से बाल अभिनेताओं द्वारा खेले जाते हैं।

श्री शंभुदयाल सक्सेना के एकांकियों में दृश्य-विधान का ध्यान रखा गया है। कुछ एकांकी, जैसे "विद्यापीठ" ऐसे भी हैं, जिनमें दृश्यों की संख्या अधिक हो गई है। यह इसलिए हुआ है कि उन्होंने कहीं पौराणिक या ऐतिहासिक कथा ले ली है। प्रारम्भिक स्थिति तथा वातावरण तैयार करने में ही वहाँ कई दृश्य रखने पड़े हैं, तब एकांकी में तेजी आई है। यह रोचकता धीरे धीरे आये बढ़ी है। अन्त तक पहुँचते पहुँचते रहस्य ग्रन्थि खुली है। ये सब एकांकी अभिनय की अपेक्षा पठन-पाठन की ही वस्तु हैं। यों थोड़े बहुत परिवर्तन से और स्टेज की साधारण सजावट से इन्हें अभिनीत किया जा सकता है। विभिन्न दृश्य जैसे-जैसे चरम-सीमा की ओर बढ़ते हैं, वैसे वैसे रंगमंचीय प्रभाव प्रबल होता जाता है। पात्रों का समावेश बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है।

सक्सेना जी के "सन्दरानी" एकांकी में संकलन-त्रय का निर्वाह नहीं हो पाया है। एक घटना बाल्यकाल की है तो दूसरी युवावस्था की। पर यह एक स्वप्न नाटक है। अपनी दृष्टि से बिलकुल नया है। नाट्य-कौशल से इसकी कथावस्तु भरी गई है। इसमें

भी यह ध्यान रखा गया है कि एक ही स्थान पर सारे जीवन की घटनायें इस प्रकार रंगमंच पर लाई जायें, मानों वे जीवन के बहुत थोड़े से समय में ही घटी हों।

पर्णकुटी, पंचवटी, विजया और वासवी और चीरधारिणी के सब एकांकियों में एक लम्बे दृश्य में ही सम्पूर्ण कथानक प्रस्तुत किया गया है। ये एक बार स्टेज बना कर सरलता से अभिनीत हो सकते हैं। राखी और वल्कल कई स्कूलों में बड़ी सफलता से खेले गए हैं। इनमें सारा कथानक एक दृश्य के भीतर आ जाता है। इनमें रंगमंच और दर्शकों का विशेष ध्यान रखा गया है। चाहे कोई घटना कितनी ही मार्मिक और प्रभावशालिनी क्यों न हो उसे अधिक लम्बायमान नहीं किया है। ऐसा होने से दर्शकों को अरुचिकर या नीरस न प्रतीत हो और वे अभिनेताओं को रंगमंच पर दिखाने में भी अधिक और अनावश्यक विलम्ब न करना पड़े। कभी कभी सक्सेना जी ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि जो दृश्य चल रहा है उसके उपरान्त आनेवाला अगला दृश्य ऐसा हो कि पहले दृश्य में कार्य करनेवाले अभिनेता को सजावट या तैयारी के लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाय। जैसे छोटे से 'तपोवन' एकांकी में अनेक पात्र हैं किन्तु उन्हें स्टेज पर कार्य करने के लिए पर्याप्त समय मिल गया है। केवल अवसर पर ही उन्हें रंगमंच पर आना पड़ा है। सक्सेना जी ने पुरानी कृत्रिम प्रणालियों जैसे स्वगत कथन, नेपथ्य, आकाशभाषित द्वारा प्रयोग नहीं किया है।

"वनवासी ; "वल्कल" तथा बाल एकांकी नाटकों में संकलन त्रय का विशेष ध्यान नहीं रखा गया है, क्योंकि उनकी रचना का उद्देश्य संवाद के रूप में ही कथावस्तु को हृदयंगम कराना था, परन्तु बाद के नाटकों जैसे नम्बरानी चीरधारिणी पर्णकुटी संग्रहों के नाटकों में संकलन त्रय का पूर्ण निर्वाह किया गया है। विजया और वासवी के नाटक इस दृष्टि से सर्वाधिक सफल रहे हैं। इनमें एक ही स्थल लिया है जहाँ सारे पात्र आ गए हैं और समय की परिधि में एक ही जगह वे सारी कथावस्तु को प्रदर्शित कर देते हैं। सक्सेना जी संकलन त्रय को बहुत आवश्यक समझते हैं।

शीर्षकों का सौन्दर्य तथा सकेतात्मकता —

सक्सेना जी के एकांकियों के शीर्षक कुछ तो विषयबोधक हैं जैसे सोने की मूर्ति, भ्रातृ-प्रेम रानी स्वयंवर तथा सीताहरण; कुछ घटना के निर्देशक हैं, जैसे चतुराई "शिक्षा का बाजार", "शक्तिबाण" कुछ ऐसे शीर्षक हैं जो संकेत के द्वारा कथावस्तु

के विषय को स्पष्ट करते हैं। इस वर्ग में विजया और बादली, वैसा और बालचर, जरायमपेशा दुर्बलता वज्रप्रहार, नाथ का घर, गुलाम आदि हैं। कुछ ऐसे हैं जो पात्रों के नाम पर हैं। इनमें प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण ही प्रधान है। जैसे मम्मरानी, अभिसारिका; आदि। कुछ का नामकरण एकांकी में अभिव्यक्त मूल भाव (Central idea) को लेकर किया गया है जैसे प्रादेश, छिन्नतन्तु, सत्य की खोज हुई। कुछ ऐसे हैं, जो स्थान विशेष के निर्देशक हैं। इन स्थानों पर जो बहुत दिनों से भारतीय साहित्य के परिचित स्थल हो गए हैं जो कुछ एकांकियों का नामकरण हुआ है, जैसे पंचवटी, तपोवन, और विद्यापीठ। एक संकलन "चीवरधारिणी" है। इसमें बौद्धजीवन तथा बौद्धधर्मसम्बन्धी पात्रों तथा घटनाओं का ही समावेश हुआ है। चीवर बौद्ध साधुओं का वस्त्र है। यह बौद्ध जीवन का संकेत करता है। इस वर्ग में बुद्धवाणी अभिसारिका, कुणाल की आंखें धर्ममार्ग वज्रप्रहार चीवरधारिणी और अपसम्पदा इत्यादि एकांकी आते हैं। इस प्रकार सक्सेना जी ने उपयुक्त नामों का प्रयोग किया है। ये निस्सन्देह सार्थक हैं। इनके भीतर सौन्दर्य और साहित्यिकता है। यदि ध्यान से इन शीर्षकों पर विचार किया जाय तो सम्पूर्ण उद्देश्य और कथानक धीरे धीरे स्पष्ट हो जाता है।

वातावरण (Atmosphere) —

सक्सेना जी ने वातावरण निर्माण की ओर ध्यान दिया है। जैसी कथावस्तु चुनी है, वैसा ही वातावरण बनाया है वैसे ही शब्द, सम्भाषण के रूप मे साज-सज्जा, पोशाक, और स्थान आदि का वर्णन किया है। उनके मध्यवर्गीय सामाजिक एकांकियों का वातावरण आधुनिक मध्यवर्ग के घरों तथा वहाँ की विभिन्न स्थितियों से मिलता जुलता है। पत्रकार, लेखक कवि नेता इत्यादि जो आज के समाज के कर्णधार हैं अपने अपने विभिन्न वातावरणों में ही प्रस्तुत किए गए हैं। "विजया और बादली" संग्रह के सभी एकांकी आज के सामाजिक शहरी जीवन से हमारा परिचय कराते हैं। बगुला भगत नेता किस स्तर तक पतित और पथभ्रष्ट हो चुके हैं, यह इन सामाजिक एकांकियों से प्रकट हो जाता है। प्रगतिशील और परम्परावादी, नये और पुराने, छोटे और बड़े सभी परिवारों का यथार्थ और सफल चित्रण इन नाटकों में देखने को मिलता है।

बौद्ध जीवन तथा बौद्ध संस्कृति पर लिखित एकांकियों में बौद्धकालीन वातावरण को स्पष्ट करते हुए घटनाक्रम को नियोजित किया गया है। जैसे "बुद्धवाणी" में

रंगमंचीय निर्देश ही में गंध कुटी का आभास इस प्रकार दिया गया है —

'गंध कुटी में भगवान् बुद्ध विराजमान हैं। संध्या समय खिलनेवाले पुष्पों की मधुर गंध वायु के झकोरों के साथ सब ओर फैल रही है। गंध कुटी के आसपास बौद्ध श्रमण अपनी दिनचर्या में संलग्न हैं। परन्तु गोधूलि बेला के शान्त साम्राज्य में किसी प्रकार का क्षोभ पैदा न हो इसके लिए संभवतः सभी सजग। उनकी प्रत्येक हलचल शास्ता बुद्ध की उपस्थिति की परिचायक है।

इसमें गंध कुटी के नाम की सार्थकता पुष्पों के खिलने और उनकी सुगन्ध का वायु के साथ फैलने का निर्देश है।

इस वर्ग के एकांकियों में उन्हीं शब्दों और सम्बोधनों तथा बौद्धकालीन परम्पराओं का पालन है। जैसे बुद्ध के लिए भगवान शास्ता भन्ते करुणानिधान अशरणशरण आदि सम्बोधनों का प्रयोग है। स्थान भी बौद्ध साहित्य में मिलनेवाले हैं जैसे 'जेतवन संघाराम', श्रावस्ती इत्यादि। मुख्य पात्रों के अतिरिक्त कल्पित नाम भी बौद्धकालीन तथा बौद्धसाहित्य में मिलने वाले हैं। जैसे कृशा गौतमी पटाचारा, आनन्द, श्रेष्ठि जनार्दन पूर्णा इत्यादि। बुद्ध की विचारधारा इन एकांकियों में सर्वत्र व्याप्त है और यह विषयानुकूल वातावरण निर्माण में सहायक है। बुद्ध मार्गानुगामिनी पूर्णा कहती है "स्नान शुद्धि से पापमुक्ति होती है, ब्राह्मण यह तुमसे किसने कहा? — यदि जल से पापों का शमन होता तो ये कछुए, मेंढक, मत्स्य सर्प आदि जलचर कभी के स्वर्ग पहुंच गये होते।"

कुछ विशेष शब्द बौद्धकालीन साहित्य में प्रचुरता से मिलते हैं। रामवेमा जी ने इनका भी प्रयोग किया है। जैसे उपसम्पदा उपशान्ति सम्यक, सम्बुद्ध, राजगृह, आर्यमार्ग भन्ते, तथागत शास्ता, संघम् शरणम् गच्छामि, बुद्धं शरणम् गच्छामि, भिक्षु, भिक्षुणी।"

इसी प्रकार रामायण कालीन एकांकियों का वातावरण भी उसी युग का है। इनमें रामायण कालीन भारत की संस्कृति के दर्शन होते हैं। ऋषियों के आश्रम, नदियों के तटों का वर्णन, वन पर्वों, वनवासियों दण्डकारण्य और उस समय की आदर्शवादिता का विशेष रूप से चित्रण है। उस समय के व्यक्तियों, जैसे शबरी के ऊपर एक स्वतन्त्र एकांकी है। "शबरी" और "साकेत एकांकियों में निषादराज का चित्रण है। "पंचवटी" एकांकी में पंचवटी का और ऋषिकन्या वाग्मती का सच्चा चित्र है। जो पौराणिक मान्यताएं हैं उन्हें इस प्रकार चित्रित किया गया है, कि वो स्वाभाविक

आधुनिक जीवन में तर्क के अनुसार भी संभव हो सके। जैसे "शिला का उद्धार" में गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या पति की ताड़ना और लोक तिरस्कृति के कारण ऐसा जीवन जी रही है मानों वह पत्थर बनी भावशून्य हो। 'पम्पा-पथ' में बाली और सुग्रीव तथा हनुमान को आधुनिक पात्रों के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। उस युग के ऋषि मुनियों का उल्लेख यत्र तत्र उस वातावरण के निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ है। जैसे वशिष्ठ, विश्वामित्र, सत्यकाम भारद्वाज अत्रि, पाराशर पुलस्त्य, वामदेव, ऋषिकेश विदेहराज जनक आदि।

निष्कर्ष यह कि चाहे सामाजिक हों या पौराणिक सक्सेना जी ने तदनुकूल यथार्थ वातावरण का निर्माण किया है। उन्होंने समाज के सभी प्रकार के जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से देखा और इन नाटकों के माध्यम से प्रकट किया है। उनका दृष्टिकोण समाज के दूषित वातावरण को यथातथ्य रूप में स्पष्ट कर देता है।

★

तीसरा खण्ड

सकसेना जी के पौराणिक और नैतिक एकांकी

सक्सेना जी के एकांकियों में पौराणिक नैतिक धारा विशेष महत्व रखती है। आपने रामायण और महाभारत काल के युग, चरित्रों और समस्याओं को सफलता से चित्रित किया है। रामायण काल के तो सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला है और भारतीय संस्कृति और आदर्शों का चित्रण किया है। विशेष उत्तेजना इन्हें पसन्द नहीं है सहज स्वाभाविकता से पुरानी प्रचलित कथाओं में रोचकता उत्पन्न करना इनकी सफलता है। समाप्त करते करते इनका एकांकी उच्चतम भावों की छाप दर्शक या पाठक के मन पर छोड़ता है।

रामायण-काल के एकांकियों मे निम्न रचनाएं उल्लेखनीय हैं :—

१— भ्रातृ स्नेह २— स्वयंवर सभा ३— विदाई ४— सीताहरण ५— पश्चाताप ६— शिला का उद्धार ७— शक्तिबाण। इनका रचना काल १९३४ है।

"वल्कल" एकांकी संग्रह १९३६-१९३७ के आसपास प्रकाशित हुआ जिसमें चार एकांकी हैं १— प्रहरी २— आतिथ्य ३— सोने की मूर्ति ४— वल्कल। १९३८ में 'पंचवटी" संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें १— हठ २— विदा ३— वनपथ ४— तापसी ५— पंचवटी इत्यादि पांच एकांकी संग्रहीत हैं। 'विद्यापीठ' १९४२ में प्रकाशित हुआ। १९४३-४४ में सगाई" एकांकी लिखा गया। १९४८ से १९४९ में कई अच्छे एकांकी लिखे गए जैसे "नमकरानी (१९४९) युद्धवाणी आर्यमार्ग, पुत्रा की मांके चीवरधारिणी (१९४९) चन्द्रग्रहण (१९४९) इत्यादि।

व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से आपका सर्वप्रथम एकांकी संग्रह १९३४ में निकला था। इसमें ७ रामायणकालीन एकांकी थे। ये विशेषतः बालोपयोगी रचनाएं थीं जो पात्र प्रधान थीं। इनमें मुख्य स्वर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा था। अपनी सहज स्वाभाविकता से इनमें उच्च गुणों की प्रतिष्ठा की गई थी।

'भ्रातृप्रेम' एकांकी में भरत का श्रीरामचन्द्र जी के पास से उनकी खड़ाऊं लाना और श्रीराम के प्रतिनिधि के रूप में राज्यसंचालन करना चित्रित किया गया है।

"स्वयंवर" में परशुराम को पराजय दिखाई गई है। 'उतराई' में वह स्थल है जहाँ श्रीराम ने गंगा पार की थी। इसमें निषादराज की अपूर्व भक्ति चित्रित की गई है। "सीताहरण' एकांकी में रावण द्वारा सीता जी का हराया जाना, 'पम्पा-पथ' में बालि वध और सुग्रीव की मित्रता, "शिला का उद्धार' एकांकी में गौतम पत्नी अहिल्या की मुक्ति, "शक्तिबाण' में मेघनाद द्वारा लक्ष्मण को अपने शक्तिबाण द्वारा मूर्छित करने के मार्मिक स्थल चित्रित किए हैं। इस संग्रह के एकांकियों की कथावस्तु प्रचलित रामायण कालीन लोककथाओं से ली गई है। उच्च आदर्शों प्रतीत भारतीय संस्कृति के मधुरतम पहलुओं का चित्रण और नैतिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा इन नाटकों में की गई है। इनमें की अधिकता है। भाषा सरल होते हुए भी प्रवाहमयी है। बालकों के अभिनय की दृष्टि से इन्हें सफल कहा जा सकता है।

"वल्कल" संग्रह के एकांकियों में नाट्यकार की प्रतिभा का विकास दृष्टिगोचर होता है। विचार की परिपक्वता है और टेक्नीक में प्रौढ़ता दिखाई देती है। पौराणिक कथानकों में कथा भाग तो ताड़ा मरोड़ा नहीं जा सकता, किन्तु लेखक ने उसके विचार पक्षों में नवीनता भरी है। ये समालोचक तत्वों से पूर्ण हैं

"वल्कल' एकांकी में राम वन गमन की कथा को लेकर नाट्यकार ने करुण रस का स्रोत बहाया है। इसमें भाव सौन्दर्य है। कई स्थानों में लेखक का कवि-हृदय बोला है। बौद्धिक आनन्द की अपेक्षा भावात्मक आनन्द अधिक मिलता है। "प्रहरी" में लक्ष्मण और शूर्पणखा की कथा है। 'आतिथ्य' में शबरी का पवित्र प्रेम श्रद्धा भक्ति तथा आतिथ्य सत्कार का दृश्य चित्रित है। "सोने की मूर्ति" में राम का प्रजा-रंजन के लिए यज्ञ करना, पर सीता के रिक्त स्थान पर सीता की सोने की मूर्ति रखने का निश्चय प्रकट करना चित्रित है।

इन सभी एकांकियों में चरित्र की उदात्तता और भावप्रवणता को महत्व प्रदान किया गया है। भावात्मक और पात्रों के अनुकूल सुन्दर कथोपकथनों की प्रचुरता है। चरित्रों में प्रायः सभी रूपरेखाएं और भाव परम्परागत संस्कारों से व्याप्त हैं।

एक आलोचक ने लिखा है "कहीं कहीं लेखक उस महानता को निभा नहीं सका जो पूर्व के कथाकारों ने प्रस्तुत की है। जैसे "वल्कल' में दशरथ का यह आदेश दे देना कि राम वन को जायें और भरत को राजगद्दी दे दी जाय दशरथ के चरित्र को दुर्बल बना देता है। न तो वह आदर्शवाद ही रह पाता है न यथार्थवाद ही। प्राचीन आदर्श

भग्न हो उठता है पर कोई नवीन प्रतिष्ठा नहीं हो पाती। पिता से पुत्र विशेष समझदार बन पड़ा है ... ..संभवतः सक्सेना जी ने मानव स्वभाव की यथार्थ अनुकूलता के लिए दशरथ में यह दुर्बलता दिखाई है। इसी प्रकार 'प्रहरी' में शूर्पणखा के सौत बनने के प्रस्ताव पर सीता का भयभीत होना और शूर्पणखा को हटाने मात्र के लिए धनु पर आघात करना भी सीता और राम के चरित्रों के अनुकूल नहीं बैठते। "सोने की मूर्ति' में दूसरे विवाह के परामर्श पर राम का मन विद्रोह कर बैठता है और वशिष्ठ को क्षोभ हो जाता है।"

उपर्युक्त आलोचना में कुछ सत्यता है हमारी राय है कि ये सब नवीनताएं लेखक ने आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल कथानकों को बैठाने के लिए की हैं। पुराने कथानकों में जो बातें तर्कहीन प्रतीत हुई उन्हें तर्कपूर्ण और विवेकसम्मत बनाने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए श्रीराम के हृदय में उनके दूसरे विवाह के प्रस्ताव पर मन में उठनेवाले मन-मन्थन को बड़े मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित किया गया है :—

"राम— क्षमा कीजिए गुरुदेव ! मैं कुछ न कहूंगा। राज्य में ढिंढोरा पिटवा दो। कह दो राम प्रजापालन के कर्त्तव्य से विमुख हो गया। स्वेच्छाचारी हो गया है। मुझे सिंहासन से उतार दो। मुझे नरक में भेज दो। मेरे सारे पुण्यों को पापों में बदल दो। मुझे कभी न शान्त होनेवाली पीड़ा का दंड दो परन्तु अपने इस आदेश को हटा लो। हटा लो भगवन् !"

(चरणों पर सिर रख देते हैं)

सर्वत्र आदर्शवाद की रक्षा का पूरा ध्यान नाट्यकार को रहा है। यथासंभव स्वाभाविकता और सरलता लाने का प्रयास है। काव्य का सुमधुर प्रवाह भी यत्र तत्र विद्यमान है। पुराने चित्रों को नये आधुनिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

पंचदशी' (संग्रह १९६८) का पहला एकांकी है 'हठ"। इसमें महारानी कैकेयी के हठ पर राम वनवास और सुकुमारी सीता का राम के साथ वन गमन चित्रित है। इसमें सीता का चरित्र प्रधान है। सीता भी श्रीराम के साथ वन जाने का हठ करती हैं। राम वन के कष्टों का बड़ा भयानक वर्णन करते हैं और जब वे नहीं मानतीं, तो विवश होकर वनवास में उनको साथ चलने की आज्ञा प्रदान कर देते हैं। कथावस्तु में कई मार्मिक स्थल आये हैं जैसे वनवास की खबर पाने से पहले ही सीता के मन में भय का संचार भावी कष्टों की आशंका, वनवास की सूचना देने के लिए राम का

अकेले ही अन्तःपुर में जाना, कौसल्या का वात्सल्य प्रदर्शन और वन गमन की सूचना पर कौशल्या का संज्ञाशून्य हो जाना इत्यादि । ये सर्वथा निजी और लेखक की मौलिकता के परिचायक हैं।

"हठ" एकांकी में आदर्शवाद की भव्य झांकी दिखाई गई है । नाट्यकार ने प्रसंग ही ऐसा बांधा है जिससे हिन्दू गार्हस्थ्य जीवन और भारतीय संस्कृति की झांकी दिखाई जा सके । उसका दृष्टिकोण प्राचीन आर्यमार्ग का स्पष्टीकरण है । एक आलोचक के अनुसार "भरत की स्त्री मांडवी का राज्याभिषेक में सोल्लास कार्य-व्यस्त रहना बड़ी सफलता से चित्रित किया गया है । यहां तक कि मातेश्वरी कैकयी का केवल उल्लेख भर हुआ है । वह भी घृणा की दृष्टि से नहीं पर अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण । यह उल्लेख भी राम द्वारा ही पाया है जिसमें आशीर्वाद का पुट है । जब ऐसे प्रसंग आते हैं कि मां कौशल्या विलाप करती हुई राजा की आज्ञा उल्लंघन करने के लिए वात्सल्य-मोहवश राम को कहती हैं तो शान्त-दान्त राम मातेश्वरी से कहते हैं—

"माता पिता की आज्ञा पालन करना कायरता नहीं हो सकती । फिर तुम्हारे लिए तो मेरा और मेरे भाई भरत दोनों का अभिषेक समान है । कहो क्या भरत तुम्हें मेरी तरह ही प्रिय नहीं है ?"

इस तरह मार्मिक स्थलों के लिए लेखक ने भव्य भूमि निर्मित की है । सारी कथा के अन्तर्गत करुण रस की धारा प्रवाहित है । करुण रस में जो हृदयस्पर्शिनी शक्ति एवं व्यंजना रहती है, वह अन्य रसों में कहां ? इसी करुण-रस में नाट्यकार अवगाहन करते हुए दिखाई देते हैं ।"

सम्पूर्ण एकांकी सजीव वातावरण से परिपूर्ण है । राज्याभिषेक की तैयारियों में सभी व्यस्त हैं । प्रकृति भी सुन्दरता और परिपूर्ण नए भावों से भरी है :—

सीता प्रकृति को देख कर कहती हैं, "सूर्य भगवान अपने वंश का यह महोत्सव देखने के लिए कैसे सुसज्जित होकर आ रहे हैं । बादलों की ऐसी शोभा तो मैं आज पहली बार देख रही हूं । उदयाचल के शिखर पर आज किसी ने वन्दनवारें बांधी हैं ।"

यह उल्लास मांडवी के शब्दों में भी व्यक्त हुआ है। देखिए,

"हां जीजी ऐसा ही है । धरती आकाश आज दोनों हर्ष और उत्साह से भर रहे हैं ।"

धीरे धीरे यह भाव-भूमि परिवर्तित होती है । हर्ष और उल्लास की एक

भावभूमि पर करुणा के काले बादल छा जाते हैं। फिर सलकस कर जैसे मधुधार बह निकलती है। करुण रस के प्रादुर्भाव में नाट्यकार ने अपने कौशल का परिचय दिया है।

पंचवटी —

यह एकांकी मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा गया है। राम के चरित्र में भावना से कर्तव्य ऊंचा है, वे कर्तव्य पालन में अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का ध्यान नहीं करते और बड़े से बड़ा त्याग कर देते हैं— यही उच्चादर्श लेखक ने इस एकांकी में मूर्तिमान किया है। इसमें लेखक ने राम के हृदय की समस्त वेदना उंडेल दी है और अन्तर्द्वन्द्वों को प्रकट कर दिया है।

महाराज राम गोदावरी के तट पर विमान से उतरते हैं और अपने परिचित स्थानों को देखते हैं। पहले ही स्वगत से उनके मन की हालत स्पष्ट होने लगती है :—

"राम— यही तो वह स्थान है। मेरे जीवन का सबसे बड़ा पुण्यतीर्थ। मन की दीक्षा लेने से पूर्व तीर्थ-स्नान का गुरु वशिष्ठ का आदेश है। मैं समस्त तीर्थों का स्नान कर आया तो भी अन्तर की ज्वाला वैसी ही जल रही है। रोम रोम फुंका जा रहा है। अपने इस पावन तीर्थ में स्नान किए बिना उससे क्या कभी निस्तार हो सकता है? आह यहां का वातावरण कैसा शीतल है! लगता है जैसे कोई कपूर या चन्दन छिड़क रहा हो।'

उन्हें वासन्ती दिखाई देती है, किन्तु अब राम वनवासी न होकर अयोध्या नरेश हैं। वे ही उसे परिचय देते हैं। वासन्ती उन्हें पहचान नहीं पाती। इस पर वे अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहते हैं, "मैंने तुम्हारा अपराध किया है। तुम्हारी साध्वी सखी को निकाल दिया है। संसार जिसका नाम लेकर पवित्र होता है मैंने उस देवी को कलंक लगाया है? वासन्ती तुम मुझे पहचान नहीं रही हो, तो ठीक ही कर रही हो। मैं पापी राम इसी योग्य हूं।"

सीता जी के प्रति रामचन्द्र जी का यह सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण देखकर वासन्ती विकल उठती है। वह पूछती है कि उन्हें निष्कलंकिनी मानते हुए भी आपने उन्हें घर से क्यों निष्कासित किया? इस पर श्रीराम कहते हैं कि उनके दो रूप हैं। एक रूप में वे महाराज हैं दूसरे रूप में रामचन्द्र हैं। पहले रूप में उन्होंने सीता को असती माना है।

कर्तव्य माना है। उसे त्याग दिया है। घनघोर वन में हिंस्र पशुओं का भोजन बनने को उसे छोड़ दिया है। दूसरे रूप में वे सीता की आराधना करते हैं। उसे चिरतपस्विनी मानते हैं। उसके लिए रातदिन रोते हैं। स्वप्न में उससे मिलने के लिए छटपटाते हैं। उसकी एक झलक पाने के लिए अपना सर्वस्व छोड़ सकते हैं। उसकी स्मृति ने उनके शरीर का खून सुखा दिया है। श्रीरामचन्द्र जी की यह व्यथा सुन कर वासन्ती उन्हें उन स्थलों की सैर कराती है जहां उन्होंने वनवास के अनेक सुख और आनन्द के दिन सीता के साथ व्यतीत किए थे। कण कण में उन्हें विगत स्मृतियां मिल जाती हैं। घूमते घूमते वे एक ऐसे स्थान पर आते हैं जहां वृक्ष के तने पर बड़े सुन्दर अक्षरों में राम नाम अंकित है जो समय आने से खूब स्पष्ट हो गया है। इन अक्षरों से सीता जी का प्रेम चू रहा है। अपने प्रति सीता जी का इतना सबल स्नेह देखकर राम प्रेम-विह्वल हो उठते हैं। अपने किये पर बहुत पछताते और कलपते हैं। उनका हृदय अन्तर्द्वन्द्व से भर जाता है। वासन्ती उनसे दो घड़ी विश्राम कर लेने को कहती है तो राम उत्तर देते हैं—

"वासन्ती राम को इस जन्म में विश्राम कहां? राम तो राजधर्म से बंधा है। यहां घूमते हुए भी पग पग पर उसे अश्वमेध यज्ञ का ध्यान आ रहा है। इस दुष्ट राजधर्म ने ही प्राणप्रिया को मुझसे विलग करवाया है। यही (राजधर्म) अब उसकी स्मृति के साथ अकेले में दो घड़ी हँसने और रोने भी नहीं देता।'

राम का हृदय वेदना और अन्तर्द्वन्द्व से इतना भर जाता है कि वे अपने आपको सम्हाल नहीं पाते। राम रोते रोते विमान पर चढ़ते हैं। वासन्ती पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण एकांकी करुण-रस से भीगा हुआ है। राम के चरित्र के गौरव की बड़ी कुशलता से रक्षा की गई है। एकांकीकार ने राम के जीवन के ही ऐसे मार्मिक स्थल चुने हैं जो गहरी वेदना से भरे हुए हैं। उनके मुख से निकले हुए उद्गारों से उनके व्यथित हृदय के हाहाकार का पता चल जाता है।

इस एकांकी की मनोवैज्ञानिक शैली का परिचय हमें प्रारम्भ में ही मिल जाता है। पात्र केवल दो ही हैं। उनमें भी मुख्य भाग श्रीराम का ही है। पूरा एकांकी उन्हीं की दुख कथाओं और अतीत की स्मृतियों से भरा हुआ है। ये स्मृतियां कहीं मधुर हैं, तो कहीं करुण। भावों का उत्थान और पतन बड़ी मार्मिकता से दिखाया गया है।

यह नाटक अन्तर्द्वन्द्व प्रधान है। यह संघर्ष दो व्यक्तियों में नहीं बल्कि राम के मन के दो स्वरूपों में पाया जाता है। एक तो राजा राम हैं जो राज नियम और कर्तव्य से

बँधे हैं, दूसरे भावुक और प्रेममय राम हैं जो अतीत की मधुर भावनाओं को नहीं सँभाल पाते हैं पर दुखी होते रहते हैं। इन दोनों रूपों में संघर्ष चलता है। लेखक ने कर्त्तव्याधीन राम के रूप को ही प्रधानता दी है। इसी को स्पष्ट करना उसका मूल ध्येय मालूम होता है।

राम के अन्तर्द्वन्द्व में पश्चात्ताप की प्रधानता है। उन्होंने सीता त्याग का जो काम किया है, वह केवल राजा की पद-मर्यादा और राजनियम के अनुसार ही किया है। वह उनकी विवशता थी। लोकेच्छा के सिवाय राजा की अपनी कोई सम्मति नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से वे इस कार्य के लिए अपने को पापी मानते हैं।

राम के चरित्र की रक्षा के लिए लेखक ने सीता के प्रति उनके अगाध प्रेम का चित्रण किया है। एक आलोचक के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "प्रेम की पावन धारा में कितनी पवित्रता है, कितनी शीतलता है, उसकी झलक लेखक ने राम की कथा में प्रदर्शित की है। राम के कर्त्तव्य-पथ पर प्रेम का ही सम्बल है। इसीलिए वे आशावादी पथिक की तरह राजमार्ग पर चलते हुए दिखाई देते हैं, अन्यथा वे कभी के निर्जीव बन जाते। इसीलिए वे अश्वमेध यज्ञ के पहले पंचवटी में व्याप्त प्रेम के शीतल कणों को प्राप्त करने के लिए विमान से उतरे थे।'

अभिनय की दृष्टि से यह एकांकी सफल है। केवल दो ही पात्र हैं। एक लम्बे दृश्य के कारण मंच पर दृश्यों को बार बार बदलने की कोई झंझट नहीं है। एक के बाद दूसरा जो प्रसंग आता है वह सरलता से दिखाया जा सकता है। जिस सामग्री की आवश्यकता है वह आसानी से मिल सकती है।

चरम सीमा (climax) का निर्वाह लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। घूमते घूमते और मधुर स्मृतियों में डूबे हुए जब रामचन्द्र सेतु के पुल के पास आते हैं, तो सीता द्वारा लिखा हुआ अपना नाम सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ देखते हैं। इसे देखकर तो उनका मन भर आता है। वे अपने हृदय को भरसक रोकते हैं पर वह रुक नहीं पाता। इसके उपरान्त [illegible] का चित्र देख कर तो रो ही उठते हैं। यह व्याकुलता आगे बढ़ती ही जाती है। इसका प्रभाव वासन्ती के मन पर भी पड़ता है। वह रामचन्द्र को विमान ... है लेकिन व्यथा-भार से दुखी होकर पृथ्वी पर पछाड़ खाकर

को अकर्मण्यता तथा समाप्त हो जाता है।

शोकाभीत हो जाते



श्री नैशनल आर. आर. डी. ड्रामाटिक कम्पनी का उद्घाटन करते हुए

बंधे हैं दूसरे भावुक और प्रेममय राम हैं जो अतीत की मधुर भावनाओं को नहीं सँभाल पाते हैं पर दुखी होते रहते हैं। इन दोनों रूपों में संघर्ष चलता है। लेखक ने कर्तव्यशील राम के रूप को ही प्रधानता दी है। उसी को स्पष्ट करना उसका मुख्य ध्येय मालूम होता है।

राम के अन्तर्द्वन्द्व में पश्चात्ताप की प्रधानता है। उन्होंने सीता त्याग का जो काम किया है, वह केवल राजा की पद-मर्यादा और राजनियम के अनुसार ही किया है। वह उनकी विवशता थी। लोकेच्छा के सिवाय राजा की अपनी कोई सम्मति नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से वे इस कार्य के लिए अपने को पापी मानते हैं।

राम के चरित्र की रक्षा के लिए लेखक ने सीता के प्रति उनके अगाध प्रेम का चित्रण किया है। एक आलोचक के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "प्रेम की चंचल धारा में कितनी पवित्रता है, कितनी शीतलता है उसकी झलक लेखक ने राम की कथा में प्रदर्शित की है। राम के कर्तव्य-पथ पर प्रेम का ही सम्बल है। इसीलिए वे आशावादी पथिक की तरह राजमार्ग पर चलते हुए दिखाई देते हैं, अन्यथा वे कभी के निर्जीव बन जाते। इसीलिए वे अश्वमेध यज्ञ के पहले पंचवटी में व्याप्त प्रेम के शीतल कणों को प्राप्त करने के लिए विमान से उतरे थे।"

अभिनय की दृष्टि से यह एकांकी सफल है। केवल दो ही पात्र हैं। एक लम्बे दृश्य के कारण मंच पर दृश्यों को बार बार बदलने की कोई झंझट नहीं है। एक के बाद दूसरा जो वर्णन आता है, वह सरलता से दिखाया जा सकता है। जिस सामग्री की आवश्यकता है वह आसानी से मिल सकती है।

चरम सीमा (climax) का निर्माण लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। घूमते घूमते और मधुर स्मृतियों में डूबे हुए जब रामचन्द्र सेतु के पुल के पास आते हैं, तो सीता द्वारा लिखा हुआ अपना नाम सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ देखते हैं। इसे देखकर तो उनका मन भर आता है। वे अपने हृदय को भरसक रोकते हैं पर वह रुक नहीं पाता। इसके उपरान्त धनुर्भंग का चित्र देख कर तो रो ही उठते हैं। यह व्याकुलता आगे बढ़ती ही जाती है। इसका प्रभाव वासन्ती के मन पर भी पड़ता है। वह रामचन्द्र को विमान पर चढ़ा देती है लेकिन व्यथा-भार से दुखी होकर पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। यहीं नाटक दर्शकों के मन को झकझोरता हुआ समाप्त हो जाता है। इसका प्रभाव दर्शकों पर भी तेजी से पड़ता है और वे भी करुणा से ओतप्रोत हो जाते



श्री नैथमल आर. आर. की ड्रामाटिक कम्पनी का उद्घाटन करते हुए

बैठे हैं दूसरे भावुक और प्रेममय राम हैं जो अतीत की मधुर भावनाओं को नहीं सँभाल पाते हैं पर दुखी होते रहते हैं। इन दोनों रूपों में संघर्ष चलता है। लेखक ने कर्तव्यशील राम के रूप को ही प्रधानता दी है। इसी को स्पष्ट करना उसका मूल ध्येय मालूम होता है।

राम के अन्तर्द्वन्द्व में पश्चात्ताप की प्रधानता है। उन्होंने सीता त्याग का जो काम किया है, वह केवल राजा की पद-मर्यादा और राजनियम के अनुसार ही किया है। वह उनकी विवशता थी। लोकेच्छा के सिवाय राजा की अपनी कोई सम्मति नहीं होती। व्यक्तिगत रूप से वे इस कार्य के लिए अपने को पापी मानते हैं।

राम के चरित्र की रक्षा के लिए लेखक ने सीता के प्रति उनके अगाढ़ प्रेम का चित्रण किया है। एक आलोचक के शब्दों में यह कह सकते हैं कि "प्रेम की पावन धारा में कितनी पवित्रता है, कितनी शीतलता है उसकी झलक लेखक ने राम की कथा में प्रदर्शित की है। राम के कर्तव्य-पथ पर प्रेम का ही सम्बल है। इसीलिए वे आकाशचारी पथिक की तरह राजमार्ग पर चलते हुए दिखाई देते हैं, अन्यथा वे कभी के निर्जीव बन जाते। इसीलिए वे अश्वमेध यज्ञ के पहले पंचवटी में व्याप्त प्रेम के शीतल कणों को प्राप्त करने के लिए विमान से उतरे थे।"

अभिनय की दृष्टि से यह एकांकी सफल है। केवल दो ही पात्र हैं। एक लम्बे दृश्य के कारण मंच पर दृश्यों को बार बार बदलने की कोई झंझट नहीं है। एक के बाद दूसरा जो वर्णन आता है वह सरलता से दिखाया जा सकता है। जिस सामग्री की आवश्यकता है, वह आसानी से मिल सकती है।

चरम सीमा (climax) का निर्माण लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। घूमते घूमते और मधुर स्मृतियों में डूबे हुए जब रामचन्द्र तेंदुए के वृक्ष के पास जाते हैं, तो सीता द्वारा लिखा हुआ अपना नाम सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ देखते हैं। इसे देखकर तो उनका गला भर आता है। वे अपने हृदय को भरसक रोकते हैं पर वह रुक नहीं पाता। इसके उपरान्त धनुर्भंग का चित्र देख कर तो रो ही उठते हैं। यह व्याकुलता आगे बढ़ती ही जाती है। इसका प्रभाव वासन्ती के मन पर भी पड़ता है। वह रामचन्द्र को विमान पर चढ़ा देती है लेकिन व्यथा-भार से दुःखी होकर पृथ्वी पर पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। यहीं नाटक दर्शकों के मन को झकझोरता हुआ समाप्त हो जाता है। इसका प्रभाव दर्शकों पर भी तेजी से पड़ता है और वे भी करुणा से ओतप्रोत हो जाते



श्री मेघनाद आर. आर. डी ड्रामाटिक कम्पनी का उद्घाटन करते हुए

है। इस करुण रस की भावभूमि पर छोड़ना ही लेखक का मूल उद्देश्य है। करुणा के वातावरण से प्रारम्भ होकर वैसा ही व्यापक प्रभाव डालता हुआ एकांकी समाप्त होता है।

एक आलोचक के ये शब्द सत्य हैं 'इस नाटक का करुण प्रवाह दर्शनीय है। धरातल बड़ा सजीव है। लेकिन भावभूमि पर जो अलौकिक वातावरण की झांकी दिखाई है वह सर्वकालीन मानवीय करुणा एवं कथा के आंसुओं से भीगी है। इस कथा को नाटक के रूप में देखने से जो प्रभाव पड़ता है, वह है प्रेम का अपूर्व प्रभाव। राजा राम राजा से पहले प्रेमी के रूप में दिखाई देते हैं। वे सब कुछ होते हुए भी मानवीय गुण से पूर्ण मनुष्य हैं। वे संवेदनशील और करुणायुक्त हैं। कर्त्तव्य पथ पर चलते हुए राम का अपरिचित प्रेम उनके लिए बाधक नहीं हुआ है।'

गौतम बुद्ध सम्बन्धी एकांकी

महात्मा गौतम बुद्ध का जीवन नाटककारों तथा कवियों के लिए प्रेरणा का केन्द्र रहा है। सक्सेना जी एक भावुक-हृदय नाटककार हैं और गौतम बुद्ध के जीवन से प्रभावित हुए हैं। उन्होंने बुद्ध के जीवन के विभिन्न पक्षों को लेकर कई सफल एकांकियों की रचना की है। इनमें चरित्र चित्रण, अभिनय कथोपकथन सभी का सौन्दर्य पाया जाता है। इन एकांकियों में लेखक ने अपने नाटकीय कौशल का अच्छा परिचय दिया है। बुद्ध सम्बन्धी एकांकियों में १— चन्द्रग्रहण २— चीवरधारिणी ३— बुद्धवाणी ४— अभिशप्ता ५— सुजा की आंखें ६— धर्ममार्ग ७— उपसम्पदा आदि विशेष उल्लेखनीय कृतियां हैं। इनमें बौद्धमत के प्रमुख सिद्धान्त, भगवान् बुद्ध के विचार, जीवन-दर्शन तथा चरित्र चित्रण आदि सब आ गए हैं। इतने बुद्ध सम्बन्धी एकांकी किसी अन्य एकांकीकार ने नहीं लिखे हैं। इस दृष्टि से सक्सेना जी ने एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन नाटकों पर पृथक पृथक विचार कर लेना चाहिए।

चन्द्रग्रहण (रचनाकाल अप्रैल १६४६) —

इस एकांकी में वियोगिनी गोपा का जीवन चित्रित किया गया है। जाते समय गौतम बुद्ध अपनी पत्नी से यह कह कर नहीं गए थे कि वे सदा के लिए गोपा तथा अपने पुत्र राहुल को त्याग कर जा रहे हैं। इसका मानसिक आघात गोपा सहन न कर सकी। वह मलिन चिर वियोगिनी का जीवन बिताने लगी।

कपिलवस्तु के राजमहल का एक दृश्य सामने आता है। दासी सूने कक्ष में दीपक जलाती है। कक्ष के एक सिरे पर मलिन वसन गोपा बैठी दिखाई देती है। दासी उंगली से दीपक की बत्ती उकसा देती है। प्रकाश कुछ तेज हो जाता है पर वियोगिनी गोपा चुप्पी है। उसका ध्यान भंग नहीं होता। वह निर्निमेष अन्धकार की ओर देखती रहती है। इतने में उसका पुत्र राहुल आकर सूचना देता है कि दादी गौतमी रोहिणी के तट पर चन्द्रग्रहण स्नान के लिए सिधारी आई हैं। गोपा विरह व्यथा में डूबी है। वह अपने पति की सुखद स्मृतियों में डूबी है। वह उत्तर देती है —

'गोपा— मेरा चन्द्रग्रहण कहां छूटा है बेटा! हाय क्या वह कभी इस जीवन में छूटेगा? अगर कभी समय आया तो मैं भी कलश भी बरसूंगी।

ऐसा वह मन के उद्वेग को न सम्भाल सकने के कारण गोपा रो उठती है। उसकी इच्छा चन्द्रग्रहण पर्व स्नान पर जाने की नहीं है। उधर राहुल हठ करता है। संभव है उधर पिताजी संन्यासी रूप में मिल ही जायें? वहां सभी संन्यासियों के आने की संभावना है मानिनी गोपा रूठी हुई है। उसे मन ही मन विश्वास है कि गौतम एक न एक दिन अवश्य आयेंगे। उन्हें आना पड़ेगा। राहुल जाने का कारण पूछता है तो गोपा कहती है:—

"गोपा—गोपा दीन हीन नहीं है? तेरे पिताजी ने कितनी ही बड़ी सिद्धि को प्राप्त कर लिया हो पर तेरी मां के पास जो धन है, उसके लिए उनके आगे आकर उन्हें हाथ फैलाना ही होगा।

राहुल— वह कौन सा धन है मां? जिसे तुमने मुझसे भी अब तक छिपा रखा है।

गोपा— वह धन तू ही है मेरे लाल।

गोपा राहुल को गोद में भर लेती है। सिसकियों और आंसुओं से वातावरण व्याप्त हो जाता है। गोपा निश्चय पर अटल है। इतने में ही बुद्धदेव के मित्र शुद्धोदन आकर सूचना देते हैं कि गौतम कपिलवस्तु की ओर आ रहे हैं। उस समय सभी आनन्दित हो उठते हैं। गोपा को तो जैसे खोई हुई निधि ही मिल गई है। वह हर्ष विभोर होकर चिल्ला उठती है—

"बुद्धदेव आ रहे हैं। ऐ, बुद्धदेव आ रहे हैं। मेरे भगवान, मेरे स्वामी मेरे शास्ता।"

धीरे धीरे राहुल को जकड़नेवाली उसकी बाहें शिथिल हो जाती हैं और उसे मूर्छा आ जाती है। सुभद्रा गुलाब जल लाने दौड़ती है।

इस एकांकी में गौतम बुद्ध की पत्नी गोपा की मानसिक दशा चित्रित की गई है। बिना सूचना के गोपा को त्याग कर बुद्ध चले गए थे। इससे गोपा के मन पर भयंकर मानसिक आघात पहुँचा था। उस मानिनी को सदा यह दुख रहा कि वे कुछ कहकर नहीं गए। गोपा अति खिन्न है। राहुल तक उसकी उद्विग्नावस्था से परिचित है। लेखक ने इसी मानसिक द्वन्द्व को सफलता से चित्रित किया है। प्रस्तुत गुणों के चित्रण के कारण इसे हम मनोवैज्ञानिक एकांकी कह सकते हैं। गोपा की दीनहीन खिन्न मानसिक अवस्था का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। वह विगत स्मृतियों में डूबी हुई है। जब से उसके पति गए हैं तब से उसने वस्त्र तक नहीं बदले हैं। किसी भी कार्य में उसे दिलचस्पी नहीं रही है। बालों में कंघी नहीं की है। मैली साड़ी ही पहने रहती है। अपने महल में कुशासन और वल्कल के पाटे के अतिरिक्त कुछ नहीं रहने दिया है। गोपा का चरित्र ही प्रधान है। शेष पात्र जैसे राहुल गौतमी, शुद्धोदन सुभद्रा आदि गौण हैं। ये पात्र अप्रत्यक्ष रूप से गोपा के चरित्र को प्रोज्ज्वल करते हैं और उसकी मानसिक दशा को दर्शकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। गौण पात्रों में राहुल गोपा के व्यक्तित्व को बड़ी सफलता से स्पष्ट करता है। वह एक कुशाग्र बुद्धि सरस हृदय भावुक बालक है। वह गोपा से जो कुछ भी बातें करता है वे सारगर्भित और महत्वपूर्ण हैं। उसका एक एक शब्द उसकी चिन्तनशीलता को स्पष्ट करता है। एक दृष्टि से देखा जाय तो वही ऐसा पात्र है जो गोपा की चारित्रिक गुत्थियां खोलकर पाठकों और दर्शकों के सामने रखता है। वह चाहता है कि उसकी माँ चन्द्रग्रहण के पर्व पर रोहिणी स्नान के लिए चले। क्यों? इसके उत्तर में राहुल के ये शब्द देखिए —

"राहुल— पिताजी भी कहीं आयें वहां तो हम उन्हें सहज ही पा लेंगे। माँ से कहो न दादी जी कि वे जिनके लिए रात दिन रोती रहती हैं, उन्हें पाने को हम लोग चलें।" .. ..

.. दादीजी मेरा मन कहता है कि वे रोहिणी किनारे हमें मिलेंगे।

गौतमी— बेटा, यह बात अपनी माँ से कह।

गोपा— बेटा तूने तो पिता जी को देखा नहीं है। तू उनके लिए इतना अधीर क्यों है?

राहुल— मैं उन्हें तेरे लिए खोज लाना चाहता हूं।

गोपा— क्यों बेटा?

राहुल— तू उनके लिए रोती जो रहती है।

गोपा— पर तू उन्हें पहचानेगा कैसे? तू तो चीन्हता नहीं है उन्हें।

राहुल— मैं चीन्हता हूं। तू ने सन्यासी का चित्र खींचा है वह मैंने देखा है। (गौतमी से) दादी जी, ठीक उस संन्यासी जैसे ही तो हैं पिताजी?

गौतमी— हां बेटा?

राहुल— तब क्यों न मैं उन्हें पहचान लूगा (गोपा से) मातेश्वरी, अब तो तुम्हें चलना ही चाहिए। पिताजी कहीं मेरी बात न मानें न आए तो तुम मना लोगी।

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि राहुल की बुद्धि कुशाग्र है। वह प्रतिभावान श्रीमगुण सम्पन्न उच्च संस्कारों से युक्त है। लेखक की नाटयकला का दर्शन इस चरित्रांकन में प्रत्येक स्थल पर मिलता है। लेखक ने बुद्धदेव के पिता शुद्धोदन के चरित्र चित्रण में तो कमाल ही कर दिया है। वे स्टेज पर एक ही बार आते हैं। एक ही वाक्य बोलते हैं पर इसी से उनके चरित्र की महत्ता प्रकट हो जाती है। उनमें बुजुर्गों में पाया जाने वाला बड़प्पन है। अन्त में मूर्छित गोपा को हवा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनकी स्थिति की कारुणिकता यहीं स्पष्ट हो जाती है।

कथोपकथन — इस एकांकी का दूसरा सौन्दर्य उसका सजीव और स्वाभाविक कथोपकथन है। प्रत्येक पात्र जिन शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करता है, वह उसकी वय, स्थिति और शिक्षा के अनुकूल है। नाटककार ने साहित्यिकता और क्लिष्टता के चक्र में न पड़ कर सजीवता और सभ्यता का ही ध्यान रखा है। किसी शुष्क सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया गया है। कथोपकथनों में अनावश्यक विस्तार भी नहीं है।

डा० गायत्री देवी वैश्य के शब्दों में "श्री सक्सैना जी के दृष्टिकोण में वस्तुगत दृष्टिकोण (objective outlook) स्पष्ट है। कथोपकथन के द्वारा पात्र चरित्रांकन के साथ साथ कथावस्तु का विस्तार उन्होंने नाटकीय ढंग से किया है। गोपा और राहुल के वार्तालाप में जब लेखक यह भावभूमि निर्मित करता है कि तपस्विनी गोपा की साधना इतनी महान् है कि बुद्धदेव अवश्य आयेंगे तब शुद्धोदन का सन्देश उस भावभूमि को और भी ठोस बना देता है। इस कथोपकथन में नाटकीय विधान है। पात्र चरित्रांकन तथा विस्तार एवं नाटकीय विधान द्वारा सुन्दर

प्रभाव की सृष्टि की गई है।"

रस की दृष्टि से इसमें करुण रस की प्रधानता है। गोपा की विरहावस्था का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। इसमें वियोग शृंगार की भावना का भी दिग्दर्शन कराया गया है। राहुल की बातचीत सुन्दर है। वात्सल्य से सने हुए अनेक वचन पाये जाते हैं। अन्तिम प्रभाव करुणा का है।

चीवरधारिणी (१९४९) —

इस एकांकी में बुद्ध द्वारा कृशा गौतमी को दिया हुआ आत्मज्ञान दिखाया गया है। कृशा गौतमी मोह के अन्धकार में डूबी हुई है। वह अपने मृत पुत्र का शव कंधों पर लटकाये उसे पुनर्जीवन दिलाने के लिए बुद्धदेव के आश्रम में आती है। भगवान उसे उपदेश देते हैं कि जो काम अब तक नहीं हुआ वह भविष्य में कैसे संभव है ? कृशा का मोह दूर हो जाता है। बुद्ध अपना हाथ बढ़ा कर आगन्तुक के सिर पर रख देते हैं। जय जयकार होता है।

यह एकांकी उपदेश प्रधान है। इसका स्वर आध्यात्मिक-नैतिक है। प्रायः ऐसे जटिल विषयों पर लिखे जाने वाले एकांकी शुष्क और दुरूह हो जाते हैं और दर्शकों की दिलचस्पी जाती रहती है पर नाटककार ने बड़ी नाटकीयता से आध्यात्मिक तत्वों और बौद्ध धर्म के उपदेशों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। 'मृत्यु का चक्र सदा से चल रहा है। प्राण बिना शरीर मिट्टी होता है। मिट्टी के लिए वृथा मोह मत करो। मिट्टी को मिट्टी में ही मिल जाने के लिए छोड़ दो। ये विचार लेखक ने बड़ी नाटकीयता से हमारे सामने रखे हैं। इसमें कोई जटिलता नहीं कोई दुरूहता नहीं। चीवरधारिणी तथागत की वाणी का अमृत पान कर शान्त हो जाती है।

इस नाटक का शीर्षक "चीवरधारिणी' बड़ा उपयुक्त है। अच्छा शीर्षक वह होता है जिससे नाटक की मूल वृत्ति और प्रमुख पात्र पर प्रकाश पड़े। इस शीर्षक से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नाटक किसी दुःखी पीड़ित नारी की मर्म कथा से सम्बन्धित है। वास्तव में है भी यही बात। चीवरधारिणी कृशा गौतमी (मृत बालक की) माता इसकी प्रधान पात्री है। सारा नाटक उसी के जीवन से सम्बन्धित है। लेखक ने पुत्र शोक से दुःखी एक नारी दुखिता की व्यथा से इस नाटक को प्रारंभ किया है। इससे यह मालूम हो जाता है कि लेखक किसी दुःखी जीवन की व्याख्या प्रस्तुत

करेगा। इस प्रारम्भिक वार्तालाप और दर्शन का यही महत्व है। कृशा गौतमी के रंगमंच पर आने से पूर्व ही दुःख दर्द का वातावरण निर्मित हो जाता है। मृत बालक को लिए हुए कृशा गौतमी आती है तथागत बुद्ध के अमृतमय उपदेश को सुनकर उसे आत्मज्ञान हो जाता है। उसका मोह दूर हो जाता है। नाटक के अन्त तक पहुँचते पहुँचते कृशा में महान् परिवर्तन आ जाता है। वह पक्की भिक्षुणी बन जाती है। नाटक का यह भाग उसकी चरम सीमा है। यहाँ बुद्धदेव और कृशा गौतमी का जो वार्तालाप हुआ है वह सम्पूर्ण नाटक का प्राण है। देखिए—

कृशा— शरीर तो मृत्यु का ग्रास है इसके लिए मैं शोक करूं? क्यों न मैं उस आत्मा का अभिनन्दन करूं जो नित्य है जो सत्य है जो अमृत है।

बुद्धदेव— यही हो। अमरत्व को देने वाले आर्य अष्टांगिक मार्ग की अधिकारिणी बनो कृशा!

कृशा— भगवान मुझे प्रव्रज्या दें। मैं बुद्ध धर्म और संघ की शरण लेती हूँ।

बुद्धदेव— कृशा कल्याणी! तुम चीवरधारिणी भिक्षुणियों में अग्रणी बनो। धर्म में तुम्हारी अटल दृष्टि हो। अमृत पुत्रिके जाओ मृत्यु और शोक की इस दुनिया में तुम शाश्वत आनन्द की ज्योति जगाओ।

कृशा— बुद्ध की जय हो। धर्म की जय हो। संघ की जय हो।

उपस्थित जन सागर में रह रह कर यही वाक्य दोहराये जाते हैं। तुमुल कंठ से निःसृत जयघोष से आकाश गूंज उठता है। अपग तक बुद्ध के शब्दों से ही नाटक का मूल तात्पर्य स्पष्ट हो जाता है। प्रारम्भ से जिस चीवरधारिणी की भूमिका बंधी थी, अन्त तक आते आते वही प्रमुखता ग्रहण कर लेती है। इस नाटक की पाप-मुक्ति और उसकी विचारधारा यही अनुकूल है।

यह अभिनय की दृष्टि से भी उपयुक्त है। दार्शनिक और चिन्तन प्रधान होते हुए भी लेखक ने इसमें कार्य व्यापार (Action) की प्रमुखता रखी है। दाव प्रदर्शन हाय और कृशा गौतमी का मुट्ठी भर सरसों लाने के प्रसंग कार्य व्यापार से भरे हुए हैं। थोड़ी देर के लिए भी रंगमंच खाली नहीं रहता। कुछ न कुछ चलता ही रहता है।

रस की दृष्टि से यह करुणा प्रधान एकांकी है। करुणा, वैराग्य और अनासक्ति इसके सम्पूर्ण वातावरण में छाये हुए हैं। पुत्र वियोगिनी कृशा गौतमी का हाहाकार और

यौवन बरबस उसको वो रुला देने वाला है। बुद्धदेव के उपदेश से यह शान्त रस में समाप्त होता है। सम्पूर्ण नाटक का विषय गम्भीर और दार्शनिक है। इसमें किसी गीत का प्रयोग नहीं किया गया है। विषय की गम्भीरता और वैराग्य की प्रधानता के कारण गीतों का न होना ही उचित था। सम्पूर्ण तत्वों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक सफल नाटक है। इसमें गहरी अनुभूति है।

बुद्धवाणी (१६४६) —

इस नाटक का सम्बन्ध बुद्धदेव के उपदेश से है। कोशल की राजमहिषी उनकी बुद्धदेव के पास आती है और अपनी प्यारी पुत्री जीवन्ती को अनुपम सौन्दर्य से होने भी उसका जीवन वापस चाहती है। जीवन्ती मर चुकी है औ व्यथा का एक भार उपसी पर छोड़ गई है। माता उसकी मोहग्रस्त है। वह अपनी कन्या के लिये व्याकुल है। वह कहती है

'मैं रोती हूं अपनी उसी जीवन्ती के लिए। आठों पहर क्रन्दन और विलाप में डूबी रहती हूं। महात्मन् बतलाइये मैं क्या करूं ? कहां उसे खोजूं ?

बुद्धदेव उसे आश्वासन देते हैं। फिर धीरे धीरे समझाते हैं। उपदेश देते हैं। वे महिषी को चौरासी हजार कन्याएं दिखलाते हैं जो श्मशान में जलाई जा चुकी हैं। फिर वे महिषी से पूछते हैं "देखो बोलो तुम इनमें से किस कन्या के लिए विलाप कर रही हो? तुम माता हो ममतामयी और ये सब पुत्रियां। तुम इनमें से किसके लिए व्याकुल हो?" रात्रि की गम्भीर छाया में छोटी छोटी बालिकाओं की एक सेना सी दीख पड़ती है। उसमें उपसी की जीवन्ती भी है और उस जैसी अन्य अनेक। उपसी यह दृश्य देखकर आंखें बन्द कर लेती है। उसका मोह दूर हो जाता है। वह नहीं जानती कि किसके लिए शोक करे। उन असंख्य जीवन्तियों में से किस एक की मां कहलाए? उसका हृदय शान्ति का अनुभव करने की स्थिति में आ जाता है। उसे ज्ञान हो जाता है और अन्त में तो वह कह देती है —

"मेरा चित्त तो आज पूरी तरह निर्मल है देव! मैं समझ रही हूं कि संसार दुःख पूर्ण है। शरीर के पीछे जरा और मृत्यु लगी हुई है। उससे राजा रंक किसी का भी निस्तार नहीं है। निर्मल रागहीन मन से उन्हें जीता जा सकता है। मैंने अपने अन्तर की व्यथा पर विजय पा ली है।'

यह बुद्धवाणी का ही प्रताप था कि उपसी को शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त होती है। वह सदा के लिए बुद्ध की शरण में चली जाती है। बुद्ध महिषी के सिर की ओर हाथ बढ़ाते हैं। इस एकांकी में लेखक ने बुद्ध के उपदेश उनकी वाणी और प्रताप पर प्रकाश डाला है। उनकी अमृतोपम वाणी सुन कर अनेकों की शंकाओं का समाधान हुआ, मोह दूर हुआ, वैराग्य प्राप्त हुआ और वे सुख शान्ति का जीवन व्यतीत करते रहे। बुद्ध का अनित्यता का उपदेश संसार में सर्वत्र फैला। उसी अनित्यता की ओर लेखक ने इस एकांकी में संकेत किया है। यह एक विचारप्रधान गंभीर एकांकी है। इसकी शैली मनोवैज्ञानिक है। लेखक ने माता उपसी की मनोव्यथा और अन्तर्द्वन्द्व प्रकट किया है। यह द्वन्द्व आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार का है। इस द्वन्द्व से ही नाटक में सजीवता आ गई है।

प्रायः देखा जाता है कि किन्हीं विशेष सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले एकांकी शुष्क हो जाते हैं और उनका कौतूहल जाता रहता है। लेखक ने इस शुष्कता से बचने का प्रयत्न किया है। इसका कारण एकांकी में प्रयुक्त कथोपकथन हैं। इन्हें नाट्यकौशल और प्रभावशाली ढंग से लिखा गया है। इनमें द्वन्द्व की गहराई है, पर साथ ही हृदय की स्पर्शिता भी है।

इस नाटक के सौन्दर्य के सम्बन्ध में डा. गायत्री देवी वैश्य ने सत्य ही लिखा है 'एकांकीकार ने पात्रों के मुख से अनुकूलकथनों को कहलवाया है जिससे सजीव वातावरण की सृष्टि के साथ साथ पात्रों का चरित्रांकन भली भांति हो गया है। संक्षिप्त एवं प्रभावमय वाक्यों में जो प्रभाव रहता है वह लम्बे कथोपकथनों में संभव नहीं है। कथोपकथन की संक्षिप्तता ही उसका कौशल है। राजमहिषी उपसी का मोह दूर हो जाता है तब का कथोपकथन कौशल का उत्कृष्ट नमूना है। इसी प्रकार के छोटे मर्मस्पर्शी संवाद एकांकी के लिए उपयुक्त रहते हैं।

दैविक तत्त्व इस नाटक की और विशेषता है। इसमें सर्वत्र एक दैविक छाया (Spiritual element) है। बुद्धदेव के चमत्कार से श्मशान से कितने ही मृत्यु प्राप्त शिशु जीवित रूप में राजरानी उपसी के समीप आते दिखाई देते हैं। इस दृश्य से एक साथ दो विशेषताएं इस नाटक में आ गई हैं। एक तो यह कि इससे एक अलौकिक भूमिका निर्मित हो जाती है जिस पर बढ़ते जाते हुए लौकिक यथार्थ भूमि को भूल जाते हैं। क्षण मात्र के लिए वे चकित हो जाते हैं। दूसरा यह कि

इससे नाटकीय दृष्टि से मनोरंजन का पुट आ गया है। केवल कथोपकथन ही जनमत रंजन नहीं कर सकते। इसके लिए कोई ठोस आधार एवं आकृति चाहिए। पात्रों के विविध रूप रंगमंच पर आने से नाटक का एकाकीपन (Monotony) नहीं रहने पाता। इस वैविध्य तत्व के साथ तीन विशेषताएं आई हैं १— कथा विन्यास की सुगमता २— मनोरंजन ३— एकाकीपन विसर्जन।'

अभिरूपा (१९४९)

इस एकांकी का सम्बन्ध भी बुद्धदेव की अमृतोपम वाणी से है। बुद्ध वचनामृत से जनता को शाश्वत सुख शान्ति मिली थी और अनेक व्यक्ति निर्विकार हो गए थे उन्हीं में से एक वृत्तान्त इस एकांकी में लिया गया है। इस एकांकी की पात्री शाक्य वंशीय कुमारी रूपगर्विता भिक्षुणी नन्दा है। उसको रूप के प्रति बहुत मोह है। बुद्धवाणी सुनकर यह मोह दूर हो जाता है और वह निर्विकार हो जाती है। एकांकी का मुख्य स्थल वह है जहाँ बुद्धदेव अभिरूपा को उपदेश देते हुए कहते हैं —

"बुद्धदेव— ऐसा मत सोचो अभिरूपे! रूप के इतने ऐश्वर्य को पाने के कारण ही तुम्हारा सौन्दर्य-बोध इतना ऊंचा है। शरीर की सुन्दरता और उसकी विकृति के परिणामों को तुम सहज ही समझ सकती हो। देखो यह है रूप और यौवन की परिणति।

(जरा, अशुचि, दुर्गन्ध और व्याधि समूह से विकृत एक नारी शरीर लाया जाता है। नन्दा उसे देख कर आँखें बन्द कर लेती है।)

नन्दा— हटाओ हटाओ। मैं देख नहीं सकती इसे।

(बुद्धदेव के इशारे से वह शरीर हटा लिया जाता है।)

बुद्धदेव— नन्दा, जानती हो यह किसका शरीर है?— एक समय यह भी अभिरूपा थी। ठीक तुम्हारी तरह। आज यह मुट्ठी भर हड्डियों का ढेर है। इसकी कंचन-काया झुर्रियों और व्रणों के जाल से ढक गई है। समझ लो यही दशा तुम्हारे शरीर की होगी। शरीर का परिणाम ही जरा और व्याधि है। अबुध शरीर के परिणाम को नहीं देख पाते। इसमें लिप्त होते और अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। नन्दा तुम अतीन्द्रिय होकर इस काया के रहस्य को समझो। सत्य को पहचानो। इसके प्रति अपनी आसक्ति को हटा लो। अहंकार से चित्त को निर्मल करो। यथार्थ लीन, अनासक्त, उपशान्त होकर निर्वाण सुख प्राप्त करो— तुम इसकी सर्वथा अधिकारिणी हो।

नन्दा— देव, मैंने शरीर का वास्तविक रूप देख पाया। रूप और यौवन के पीछे झांकने वाली जरा जीर्णता और विकृति को समझ पाया। इस क्षुद्र परिणामी काया के प्रति मुझे आंतरिक निर्वेद हो गया। मैं राग मुक्त हुई। देह से मैंने ममत्व तोड़ लिया, भगवन्! आज से हमीं शरण से।

ऐसा कह कर वह रूपगर्विता बुद्धदेव के चरणों में झुकती है।

इस नाटक के प्रारम्भ में ही नाटक का मूल ध्येय प्रकट होने लगता है। वह है भगवान् बुद्ध के उपदेशों का चमत्कारी प्रभाव और उसके द्वारा शाश्वत सुख की प्राप्ति। बुद्धवाणी का चमत्कार मुक्ता के पहले ही वाक्य से प्रकट हो जाता है —

मुक्ता— शास्ता के दो ही वाक्यों ने मेरे अन्तर की ज्वाला को शमित कर दिया। कानों में उनके शब्द निरन्तर गूंजते रहते हैं

नन्दा— कौन से शब्द?

मुक्ता— उन्होंने कहा— मुक्ता तू मुक्त हो जा— राहु के ग्रहण से मुक्त हुई चन्द्रकला की तरह। तू अशेष प्राणियों के साथ मैत्री भावना में लीन हो जा।— भगवान् के इन शब्दों ने मेरे हृदय में आठों पहर उमड़नेवाले ज्वार को शान्त कर दिया।

इसी लक्ष्य की ओर लेखक निरन्तर आगे बढ़ता जाता है। नाटकीय कौशल से वह रूपगर्विता भिक्षुणी के रूप में बदल कर देता है। इस नाटक का मुख्य सौन्दर्य नन्दा के हृदय में उठने वाला अन्तर्द्वन्द्व है। इसका शीर्षक "अभिरूपा" भी उपयुक्त है क्योंकि इसी पर नाटक का अन्त होता है। जब नन्दा का मोह दूर जाता है तो बुद्ध कहते हैं कि वास्तविक सौन्दर्य पा कर आज तुम सच्चे अर्थों में अभिरूपा हुई। बुद्ध के उपदेशों का प्रभाव इस नाटक में स्पष्ट हो जाता है।

शुभा की आंखें (१९५०) —

यह एकांकी शुभा नामक ब्रह्मचारिणी भिक्षुणी के तप त्याग चारित्रिक दृढ़ता और आचार के प्रति निष्ठा से सम्बन्धित है। शुभा पूर्ण युवती है। उसकी अवस्था १६-१७ से अधिक नहीं है। सौन्दर्य भी उसके अंगों से फूट रहा है पर वह तपस्या और साधना से दीप्त है। संयमी है। आत्म निग्रही है। शुभा के नीचे अपने पैरों पर दृष्टि गड़ाये संसार की असारता का चिंतन करती हुई नित्य एक विशेष मार्ग से आया जाया

करती है। युवक देवदत्त उसके रूप यौवन पर मुग्ध है। छिपकर उसे देखता और छूने का प्रयत्न करता है। किन्तु सुभा को वासना की क्षुधा का कोई भान नहीं है। जहाँ कुंज को अभी आना है वहाँ चुपचाप बैठकर वह सुभा की प्रतीक्षा करता है। जब वह वहाँ पहुँचती है तो उठ खड़ा होता है और उसका मार्ग रोकता है। सुभा चकित होकर विस्फारित नेत्रों से उसे देखती है। उसका कलुषित मन्तव्य समझकर वह उससे कहती है —

मेरा क्या अपराध है? मैं विशुद्ध देह और निर्मल चित्तवाली हूँ। भाई, मुझे जाने दे   तुझे पता नहीं विरक्त भिक्षुणियों को छूना पुरुषों के लिए पाप है। तू मेरे मार्ग से दूर हो जा।

सुभा उसे भाई कह कर सम्बोधन करती है। शुभ दृष्टि लाने का प्रयत्न करती है लेकिन वह तो वासना के आवेश से अन्धा हो रहा है। अशुभ संस्कार उसे वासना लोलुप बनाये ही रहते हैं। देवदत्त सुभा के मदभरे नयनों पर मोहित है। वह उनके वशीकरण प्रभाव को नहीं रोक पाता इस पर सुभा विवश हो बैठ जाती है। अपने दृढ़ पंजों को दोनों आँखों के चारों ओर कोर से घुमाती है। दोनों आँखों से रक्त की बूँदें टपकती हैं। देवदत्त को स्वप्न में भी आशा न थी यह अल्पवयस्का भिक्षुणी आँखें फोड़ डालेगी। उसे अपनी वासना लोलुपता पर बड़ा पश्चात्ताप होता है। देवदत्त कहता है —

"बस देवि बस! मैं नहीं जानता था कि तू अपने व्रत में इतनी पक्की है— तेरा मंगल हो कल्याणि, तू ने मुझे संसार को देखने की नई दृष्टि दी। मुझ पापी को क्षमा कर देवि   मेरा मोह दूर हो गया भगवती! मुझे दिव्य दृष्टि मिल गई। मैं कृतार्थ हुआ। पुण्यशीले मैं तेरा आभारी हूँ।"

इसके अनन्तर गुरुदेव का प्रवेश होता है। वे सुभा को आशीर्वाद देते हैं। उनकी वाणी सुभा की आँखों में मरहम का काम करती है। वे कहते हैं —

गुरुदेव— जय हो जय हो! सदाचार की प्रतिष्ठा हो। कल्याण का प्रसार हो। सुभे! धर्म की मर्यादा को तूने ऊँचा उठाया है। तूने बुद्ध के शासन को दृढ़ किया है। तूने संसार में सबसे बड़ी विजय प्राप्त की है। तू धन्य है।

इस नाटक की कई विशेषताएँ हमें अनायास ही आकृष्ट करती हैं। पहली विशेषता इसका चरित्र चित्रण और शीर्षक है। शीर्षक से यह स्पष्ट हो जाता है कि

नाटककार सुभा के नेत्रों से सम्बन्धित कोई दृश्य चित्रित कर रहा है। सुभा नामक भिक्षुणी ही प्रमुख पात्र है। उसी का चरित्र प्रधान है। अपने नेत्रों के बलिदान से वह एक पथभ्रष्ट युवक के हृदय में शील और मर्यादा की भावनाएं उत्पन्न करती है। उसके चरित्र की दृढ़ता उज्वलता, और सदाशयता से धर्म की जय होती है और आचार की प्रतिष्ठा होती है। इस चरित्र की भव्यता और पवित्रता पर ही नाटक खड़ा किया गया है।

नाटक का स्वर नैतिक आदर्शवाद की प्रतिष्ठा करता है। यह पथभ्रष्ट युवकों के लिए भी मार्गदर्शक हो सकता है। देवदत्त हर प्रकार के तर्क और यौवन के सुखों को उसके सामने प्रस्तुत करता है पर सुभा जो उत्तर देती है वह बड़ा ही सारगर्भित है। देवदत्त जब उससे यौवन का आनन्द लेने को कहता है तो वह उत्तर देती है—

"सुभा— परन्तु यह सब कितनी देर के लिए है? क्या यह स्थायी सुख देने वाला है? इसका परिणाम क्या जरा और शोक नहीं है? मैं शुभ दृष्टि सम्पन्न हूं छिः छिः वासना के आवेश से तू इस तरह अन्धा हो रहा है। तुझे ज्ञान नहीं कि मैं सम्यक संबुद्ध की शिष्या हूं मेरे पथ को अवरुद्ध कर रखने में कोई लाभ नहीं है, युवक। किसी तरह के प्रलोभन मुझे मेरे मार्ग से विचलित नहीं कर सकते। इस शरीर के प्रत्येक अंग से मैंने आसक्ति हटा ली है। मेरे लिए वे ठीकरे के समान हैं।

इस नाटक में केवल दो ही मुख्य पात्र हैं। बुद्धदेव का प्रवेश तो अन्त में थोड़ी देर मात्र के लिए होता है। इन दोनों में लेखक की सहानुभूति सुभा के साथ है। देवदत्त एक उदण्ड वासनाप्रिय युवक के रूप में चित्रित किया गया है। कुल नाटक में एक ही लम्बा दृश्य है। कथा की गति तीन स्तरों से स्पष्ट होती है, १ — देवदत्त का सुभा की प्रतीक्षा देखकर २— सुभा की अनुनय विनय और बाद में नेत्रों को फोड़ डालना ३— गौतम बुद्ध का प्रवेश और उपदेश। इस नाटक का अन्त बड़े प्रभावशाली रूप में होता है। सुभा की आँखें फूटते ही देवदत्त में एक अद्भुत परिवर्तन होता है। वह अपने किए पर पश्चात्ताप करता है। अन्त में गौतम बुद्ध के प्रवेश और उपदेश के बाद एकांकी प्रभाव डालता हुआ समाप्त हो जाता है। कथा का प्रवाह सतत गतिशील है।

इस एकांकी का कथोपकथन काव्य-सौन्दर्य से युक्त है। देवदत्त जिन शब्दों में सुभा के रूप सौन्दर्य का वर्णन करता है वह कोई कवि ही कर सकता है। वह रोचक रसपूर्ण और रोमांची है। उदाहरण के लिए देवदत्त के मुंह से कहे हुए इन पंक्तियों के

काव्य-सौन्दर्य को देखिए :—

"देवदत्त—गोरी गोरी कमलनाल सी ये बाहें किसी विदग्ध के गले का हार बनने को आतुर न हों ? हो नहीं सकता ये करुणामयी रस भरे नयन एकान्त चांदनी रातों में किसी के लिए बेचैन न हो उठते हों ये तुम्हारे स्वर्ण कलश रेशम की कंचुकी में रहने लायक हैं। ये तुम्हारे उन्नत नितम्ब फूलसेमा पर विश्राम पाने योग्य हैं। ये कोमल कलाइयां मणि खचित स्वर्ण-कंकणों की झंकार से कानों में रस बरसाने के लिए हैं। ये कोकनद से सुकुमार तुम्हारे पांव देवदत्त की नित्य कामना के अधिकारी हैं।'

इस एकांकी का एक सौन्दर्य उसका अप्रत्याशित अन्त है। कोई भी इस बात का अनुमान नहीं कर सकता कि भिक्षुणी विवश हो अपने नेत्र ही फोड़ डालेगी। लेकिन वह अपने हठ पंजों से आंखें फोड़ ही डालती है। इससे शृंगार के वातावरण में करुणा का संचार हो उठता है। लेकिन अन्त तक पहुँचते पहुँचते कौतूहल बना ही रहता है। सम्पूर्ण नाटक का वातावरण सजीव है। देवदत्त के शब्दों में प्रकृति का सौन्दर्य स्थान स्थान पर प्रकट हुआ है। जैसे—

"फूल और पत्तों में नया जीवन आ गया है। मंजरी की भीनी गन्ध से वायु मतवाली होकर बह रही है।

उपमाएं भी प्रकृति से ही ली गई हैं। जैसे 'कमल-लता में अभी अभी खिले हुए दो नील कमलों की भांति आंखें कमलनाल की तरह तुम्हारी भुजाएं, चम्पक प्रसून की भांति तुम्हारे अंग क्या तपस्या की आग में होम देने के लिए हैं ?"

भाग्यभाग (१६५०)

इस एकांकी का सम्बन्ध भी गौतम बुद्ध के उपदेश और वाणी से है। बुद्ध की शिष्या पूर्णा एक दासीपुत्री है। पौष मास के कठोर शीत में वह श्रावस्ती में एक नदी के किनारे जाती है। भगवान बुद्ध के वचनामृत का पानकर वह नदी के किनारे एकान्त वृक्ष की छाया में बैठ जाती है। जीवन में उसे आज एक नया अनुभव हुआ है। अन्धकार, वैराग्य, विवशता भय और दैन्ययुक्त जीवन में भगवान बुद्ध के उपदेश ने उसे एक नवीन जीवन दिया है। वह नदी की निर्मल तरंगित जलराशि को देखकर भाव विभोर हो उठती है और कहती है —

"धन्य हो भगवान तथागत का जिनके उपदेश से आज मन में शान्ति और सुख

में उल्लास का अनुभव हो रहा है। दासता की श्रृंखला से बद्ध मानस में स्वतन्त्र चेतन आत्मा का जन्म हो रहा है। यही वह पयस्विनी नदी वह कल्लोलित जलधारा है किन्तु कितनी बदली हुई, कितनी सुहावनी ? यहाँ जाना निरानन्द और कष्ट का कारण होता था। आज उज्ज्वल आनन्द हिलोरें ले रहा है।

फिर हाथ में सुमिरनी लिए जनार्दन ब्राह्मण आता है। वह वैदिक धर्मावलम्बी है किन्तु पूर्णा के विचारों के प्रभाव में आकर वह भी बुद्धानुयायी हो जाता है। शीतल जल में निरन्तर सर्दी की कठिन पीड़ा सहकर स्नान करने की समस्या पर बातचीत प्रारम्भ हो जाती है। जनार्दन कहता है कि स्नान शुद्धि से पाप मुक्ति होती है। स्नान करके मनुष्य संचित पापों के फल से अपने आपको बचा सकता है। वैदिक धर्म में स्नान की बड़ी महिमा बताई गई है। इस पर पूर्णा बहुत ही तर्कपूर्ण उत्तर देती है जिससे ब्राह्मण का हृदय-परिवर्तन हो जाता है —

"पूर्णा ... यदि जल से पापों का शमन होता तो यह मधुर मेंढक मत्स्य सर्प आदि जलचर कभी के स्वर्ग पहुँच गए होते। यह तो निरन्तर अपनी काया की शुद्धि करते रहते हैं।

जनार्दन यह तुम क्या कहती हो ?

पूर्णा मैं यही कहती हूँ कि तब तो कसाई मछुए बहेलिए चोर जुआर सभी अपना अपना काम करने के बाद नदी में नहा कर अपने पापों को धो डालेंगे और स्वर्ग जाने की तैयारी कर लेंगे पाप कर्मों से मुक्त होने का यह सीधा मार्ग मनुष्य को पापों में लगाने के लिए उत्साहित करेगा। कोई दलित से घृणित पाप करने से डरेगा नहीं। यह दुनिया पापियों और दुष्कर्मियों की क्रीड़ाभूमि हो जायगी फिर यदि नदी में नहाने से पूर्वकृत पाप कर्म धुल जावें तो पुण्य कर्म भी धुल जायेंगे। यह नहीं हो सकता कि जल स्पर्श पापों को धोवे और पुण्यों को छोड़ दे। पुण्य धुल जाने से पास क्या रहेगा ब्राह्मण !

जनार्दन : पूर्णिके, तू दासी पुत्री होकर भी कितने स्वच्छ विचार रखती है ? किन्तु ...

पूर्णा : ब्राह्मण देवता आर्य सत्यों को पहचानो। पाखण्डी विचारों को छोड़ दो। यदि बड़ा के भय से इस कड़ी सर्दी को सहन करते हो तो भी उस भय को छोड़ दो। अपने शरीर की रक्षा करो, उसे पीड़ित मत करो यदि दुःख तुम्हें प्रिय नहीं तो

चाहिए, यदि तुम दुःखों से डरते हो तो बुद्ध धर्म और संघ की शरण जाओ। पाप गुप्त या प्रकट किसी तरह के पाप कर्मों में लिप्त न होना। यदि कभी पाप कर्म का आचरण किया तो भाग कर भी दुःख से छुटकारा नहीं पा सकते। यदि तुम्हें दुःख नहीं चाहिए तो पाप कर्मों से बचो। धर्ममार्ग का अवलम्बन करो। तुम्हारा कल्याण होगा।

इन शब्दों को सुन कर वैदिक धर्मावलम्बी ब्राह्मण के ज्ञान के नेत्र जैसे खुल जाते हैं उसके हृदय में परिवर्तन होता है। उसे अपनी मिथ्या विचारधारा का ज्ञान होता है। बाहरी शुद्धि की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि का अधिक महत्व है यह उसे स्पष्ट हो जाता है। बाह्याडम्बर से कोई लाभ नहीं है। दिखावा और मिथ्या आचरण छोड़ देना चाहिए। आन्तरिक शुद्धि ही श्रेष्ठतम मार्ग है उसी के विकास से स्वस्थ मानवता का विकास हो सकता है। — ये सभी विचार लेखक ने बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किए हैं।

यह नाटक चिन्तन प्रधान है और इसमें ठोस तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। दासी पुत्री पूर्णा के मुख से ही लेखक ने यह विचार प्रकट किए हैं, किसी भी नाटक की श्रेष्ठता उसमें प्रस्तुत किया जाने वाला द्वन्द्व होता है। इस नाटक में यह द्वन्द्व दो विभिन्न धर्म धाराओं में है। दासी पुत्री पूर्णा बुद्धानुयायी है जनार्दन वैदिक धर्मावलम्बी ब्राह्मण है। यह द्वन्द्व प्रारम्भ से ही शुरू हो जाता है। जनार्दन वैदिक धर्म के तर्क उपस्थित करता जाता है पर पूर्णा कुशाग्र बुद्धिशाली बालिका है। ब्राह्मण जो कुछ कहता है पूर्णा अपने अकाट्य तर्कों द्वारा उन्हें काट डालती है। धीरे धीरे ब्राह्मण का अहंकार समाप्त हो जाता है। उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। यह द्वन्द्व ही नाटक का मुख्य सौन्दर्य है।

मुख्य कथानक के साथ नाटककार ने एक प्रासंगिक छोटी सी और भी कथा इसी में जोड़ दी है। वह है भद्री एवं श्रेष्ठिपत्नी की कथा। इसमें अछूत समस्या का निदान है। पूर्णा की मुक्ति बिना इनके संभव नहीं थी। पूर्णा तो बुद्ध और संघ की शरण में जाकर दीक्षा ग्रहण करती है। श्रेष्ठिपत्नी पूछती है कि अब हमारा पानी कौन भरेगा? इस पर बुद्धदेव जो उत्तर देते हैं वह दास की अछूत समस्या का भी निदान प्रस्तुत करता है

बुद्धदेव — बन्धन कभी व्यवहार्य नहीं हो सकते। स्वेच्छता से व्यक्ति का निर्णीत होने देने में कल्याण ही कल्याण है। इस नई व्यवस्था के प्रयोग में स्वस्थ मानवता का विकास होगा। दलित दासत्व के भार से हलके होकर पनपें और सेवा

आत्म-निर्भरता की दीक्षा ग्रहण कर सजीव हों।'

इस नाटक में आर्य मार्ग दिखाया गया है। यही नाटक का शीर्षक है। इसी उद्देश्य को लेखक ने प्रकट करने का प्रयत्न किया है। पूर्णों के मुख से ऐसे वाक्य कहलवाये गए हैं जो आर्य मार्ग को प्रकट करते हैं —

"बहुश्रुत देवता आर्य सत्य को पहचानो। पाखण्डी विचारों को छोड़ दो। यदि वध के भय से इस कड़ा सर्दी को सहन करते हो तो भी उस भय को छोड़ दो। अपने शरीर की रक्षा करो उसे पीड़ित मत करो। यह (शरीर की पीड़ा) आर्य मार्ग नहीं है यह बुद्ध मार्ग नहीं है।'

तो आर्य मार्ग क्या है? इसके उत्तर में कह सकते हैं कि आन्तरिक शुद्धता और भीतरी स्वच्छता का नाम ही आर्य मार्ग है। जब तक मन पाप-संकल्पों और बुरे संस्कारों से मुक्त नहीं होता तब तक दुःख से निवृत्ति नहीं। चाहे कहीं जाओ, चाहे कहीं डूबो बिना भीतरी स्वच्छता के छुटकारा नहीं हो सकता। स्नान से बाहरी शारीरिक शुद्धि भले हो जाय, आंतरिक शुद्धि के बिना सब निष्फल है। यह आन्तरिक स्वच्छता का मार्ग ही आर्य मार्ग है। निष्कंटक और निरापद है। लेखक ने बड़ी कुशलता से इसे नाटक में चित्रित कर दिया है।

उपसम्पदा (१९५०)

इस नाटक में केवल चार पात्र हैं। एक पुरुष पात्र बुद्धदेव को छोड़कर शेष तीन स्त्रियाँ हैं। तिष्या एक षोडशी सुन्दरी वेश्या है अभया एक मध्यवयस्का भिक्षुणी है तथा रोहिणी तिष्या की दासी है। इन तीनों में मुख्य पात्रो अभया और तिष्या ही हैं। भिक्षा मांगती हुई भिक्षुणी अभया जनपद में एक घर से दूसरे घर होती हुई वेश्या तिष्या के द्वार पर आकर खड़ी हो जाती है। तिष्या रत्नाभरणों के भार से मुश्किल से उठ पाती है और तब भिक्षुणी का स्वागत करती है। तिष्या के इशारे से उसकी परिचारिका रोहिणी एक चांदी का पात्र लेकर आती है। तिष्या पात्र लेकर भिक्षुणी के भिक्षा पात्र में उलट देती है। अभया भिक्षुणी आशीर्वचन कह कर जाना चाहती है तो तिष्या उसे रोकती है और पूछती है कि इस यौवनावस्था में भी उसे आन्तरिक शान्ति कैसे मिल रही है क्योंकि वह यौवन उन्माद के कारण अशान्त है। भोग तृष्णा की ज्वाला से उसका रोम रोम जला जाता है। विलास में डूबी हुई होने के कारण वह शान्ति नहीं पा रही है। वह सोचती है कि जो बात उसके हाड़ मांस के शरीर पर बीत रही है, वही

भिक्षुणी पद भी छोड़नी चाहिए।

यही नाटक का मूल विषय है। विषय-वासना से कैसे बचा जाय ? जीवन में भोग तृष्णा से मुक्ति पाने का क्या उपाय है ? मन को निर्विकार कैसे रखा जा सकता है ?

इसका उत्तर भिक्षुणी प्रमया इस प्रकार देती है। स्वयं वह भी वासना के अनेक संघर्षों को पार कर निकली है :—

प्रमया— साधनापथ पर चलते हुए मुझे भी अपने चित्त से लड़ना पड़ा है। यदि उसे बताने लग जाऊँ, तो तुम अचरज करोगी। भिक्षुणी-संघ में सात वर्ष रहकर भी विहार के पवित्र वातावरण में अहोरात्र धर्मचर्चा का अमृतपान करके भी चित्त धारा वासना से निर्मल न हो पाई। प्रत्येक पल प्रत्येक घड़ी प्रत्येक दिन प्रत्येक रात मैं मन के उत्पीड़न से व्याकुल रही हूं। भोगतृष्णा से दुखी, वासना के स्वप्नों में खोई, मुहूर्त भर के लिए चैन नहीं पा सकी हूं।

तिष्या— ऐसा !

प्रमया— हां और इसे स्वीकार करने में मुझे कोई भय नहीं है। यह देह तो यौवनश्री से अभी तक दीप्त है, किन्तु यौवना भिक्षुणियों के अनुभव मुझसे भी कटु और दीर्घकाल व्यापी हैं।

और अन्त में प्रमया उसे मन की शान्ति और भोगों की तृष्णा से मुक्ति का रहस्य बतलाते हुए कहती है कि निर्मल चित्त ही विकारों से मुक्ति का साधन है। सत्य श्रद्धा के वातावरण से बाहर ही अपने नग्न रूप में प्रस्तुत हो पाता है। मनोबल से ही हम विकारों से मुक्त हो सकते हैं।

इस उपदेश से वेश्या तिष्या का हृदय-परिवर्तन होता है। भोग-तृष्णा और विषयों के प्रति उसका आकर्षण कम हो जाता है। उसने कौमुदी महोत्सव का आयोजन किया था। वर्षों से उसकी तैयारियां हो रही थीं। हजारों युवक तिष्या को देखकर आनन्दित होने की इच्छा लगाये हुए थे। तिष्या रोहिणी से कहती है कि अब कौमुदी महोत्सव नहीं होगा। यह सुनकर रोहिणी विस्मित मुद्रा में खड़ी हो जाती है। उसे विश्वास नहीं होता कि इतना परिवर्तन एकाएक तिष्या में कैसे आ गया ? वह आश्चर्य में डूबी रहती है। आने वाली भीड़ों को इन्कार कर दिया जाता है।

तिष्या इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि भिक्षुणी प्रमया को सबसे बड़ा सहारा भगवान् तथागत का है। यदि वह भी उनका वरदहस्त प्राप्त कर सके तो उसे भी

विकारों से शान्ति मिल सकती है। उसे बुद्ध वचनों में श्रद्धा हो जाती है। वह बुद्ध की शरण में आती है। भगवान् उसे आशीर्वाद देते हैं :—

"कल्याणी तूने विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया है। तेरे पुनर्जन्म की श्रृंखला नष्ट गई है। तू निर्मलचित्त होकर विचरण कर। तू स्थिरमति होकर बुद्धशासन की अधिकारिणी बन।'

इस प्रकार इस नाटक में बुद्ध के वचनों और व्यक्तित्व का प्रभाव दिखाया गया है।

यह नाटक विचारप्रधान है। बुद्ध के जीवन और सिद्धान्तों का आश्चर्यजनक प्रभाव और वेश्याओं तक पर होनेवाले असर का इसमें दिग्दर्शन कराया गया है। इस लक्ष्य का संकेत हमें भिक्षुणी श्रमणा के प्रारम्भिक वचनों से ही मिलने लगता है। वह कहती है—

"शास्ता के शासन में विराम नहीं! गति, प्रगति सुगति चलना ही चलना तो है तथागत की वाणी तो करुणा के अमृतजल से ही अभिसिंचित है। उन चरण चिह्नों की अनुगत कहलानेवाली हम सब आर्त सृष्टि को आश्वस्त करने के लिए प्रतिक्षण कर्तव्य-लग्न हैं।

यही रहस्य पाँच आगे जाकर खुलती है जिससे बुद्धि की वाणी का चमत्कार स्पष्ट हो जाता है। यह विषय गंभीर है फिर भी नाटककार ने इसका प्रतिपादन इस ढंग से किया है कि दर्शकों और पाठकों का कौतूहल बढ़ता जाता है। एक एक कथोपकथन इसी विषय को आगे बढ़ाता है। लम्बे उपदेशात्मक कथोपकथनों को नाटक की कथावस्तु का एक अंग बना कर प्रस्तुत किया गया है। कहीं कहीं विषय की गंभीरता के कारण कुछ कथोपकथन शुष्क और कठिन हो गए हैं। वैराग्य के भावों का आधिक्य है।

यह नाटक पात्र प्रधान है। वेश्या तिष्या के मन में आनेवाले परिवर्तन की ओर ही नाटककार की दृष्टि विशेष रूप से रही है। इसीलिए इस नाटक का शीर्षक 'उपसम्पदा' उपयुक्त है।

भिक्षुणी श्रमणा के ये शब्द इस शीर्षक की उपयुक्तता स्पष्ट करते हैं :—

अमृतपद की उपसम्पदा तुम्हारी बाट जोह रही है। बुद्ध के अमोघ शासन का वरण कर तुम निर्मल चित्त बनो। तुम अनन्त सुख और अक्षय शान्ति की अधिकारिणी हो।"

सम्पूर्ण कथानक रूपवती तिष्या के इस हृदय-परिवर्तन (इस उपसम्पदा) में ही सन्निहित है। अतः यह शीर्षक उपयुक्त है और सारगर्भित भी है।

इस नाटक में नाटककार ने चरित्र चित्रण में विशेष चातुर्य और कौशल दिखाया है। विशेष रूप से नारी चित्रण की गहराई का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। एक आलोचक ने निम्न शब्दों में इस नाटक के पात्र-सृष्टि के विषय में लिखा है —

"इस नाटक के स्त्री पात्रों का वर्गीकरण निम्न रूप से किया जा सकता है।

१ लौकिक सुन्दरी

२ अलौकिक सौन्दर्य पिपासु

३ सामान्य नारी पात्र

सुन्दरी तिष्या रूप यौवन में संसार के सुखों की अभिलाषा रखने वाली सुन्दरी है। उसकी दासी रोहिणी सामान्य नारी पात्र है। वह कौमुदी महोत्सव के स्थगित होने से कौतूहलवश श्रावस्ती वैशाली की भिक्षुणियों में दोष ढूंढने लग जाती है क्योंकि उन्होंने ही उसकी स्वामिनी तिष्या को अति भ्रमित कर निर्णय बदलवा दिया है। अनुपमा अलौकिक एवं शाश्वत सुख की उपासिका के रूप में आती है।

सभी में मानव सुलभ दुर्बलताएं एवं सबलताएं हैं। इसलिए वे सर्वप्रथम मानवी हैं।

भिक्षुणी अनुपमा ने अपने चिन्तन द्वारा तथा भगवान् बुद्ध के सम्पर्क से अपने को महान् बना लिया है तो सुन्दरी तिष्या उस शाश्वत पथ की पथिका बनकर आने की तैयारी करती है। रोहिणी सामान्य नारी पात्र है। वह अपनी स्वामिनी को समझाने के लिए बौद्ध भिक्षुणियों में दोष बतानेवाली एक युवती को लाने का निष्फल प्रयत्न करती है पर जब वह उस युवती को लेकर आती है तब वह भगवान बुद्ध की शरण में सुन्दरी तिष्या को देख कर अवाक् रह जाती है। वह उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करती है। वह अपनी स्वामिनी की भांति बौद्ध भिक्षुणी हुई होगी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता पर अनुमिति यह है कि वह बुद्धदेव के दर्शन से निर्मल बनकर बुद्धदेव की शरण गई होगी।

इस प्रकार इस नाटक के सभी पात्रों में सबलता है तथा नारी सुलभ दुर्बलता भी। इसीलिए वे सजीव एवं स्वाभाविक पात्र कहे जा सकते हैं।"

सक्सेना जी एक विचारप्रधान नाटककार हैं। उनके पौराणिक नाटकों में महान

गंभीरता तथा सोचने विचारने की प्रचुर सामग्री है। उनमें कहीं भी हलका मनोरंजन नहीं पाया जाता। भारतीय मर्यादा और नैतिक मूल्यों का उन्होंने सर्वत्र ध्यान रखा है। चरित्र निर्माण और शुभ संस्कार उत्पन्न करने, अतीत की गौरवमयी परम्परा और भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने अपने युद्ध सम्बन्धी नाटकों का निर्माण किया है। इनमें हमें अपनी संस्कृति के दर्शन होते हैं। वे कला की आराधना 'जीवन के लिए' करते हैं। जीवन का उचित दिशा में विकास और परिष्कार ही उनका इष्ट है। यह सुन्दर परिमार्जन आकस्मिक तथा चमत्कारी न होकर क्रमिक और स्वाभाविक हुआ है। अतः उनका साहित्य आकर्षक होने के साथ साथ उपयोगी भी है। अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर सदा उन्हें अभिमान रहा है। अपने विध्वंस और जीवित। महापुरुषों के प्रति सर्वत्र उन्होंने आदर की भावनाओं को संजोये रखा है। साथ ही उन्हें अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं पर भी गर्व रहा है। अपने को किसी रूढ़िवाद और अन्धविश्वास से दूर रखते हुए उन्होंने जीवन को उठानेवाला नाटक साहित्य लिखा है।

★

चौथा खण्ड

सक्सेना जी के सभी नाटक

इन नाटकों के क्षेत्र में भी श्री रघुवरदयाल जी सक्सेना ने कई नाटक लिखे हैं जैसे साधनापथ, बापू ने कहा था, मेघदूत इत्यादि। नाटककार की इन कला-कृतियों में भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समावेश है। अतीतकालीन, विशेषतः ऐतिहासिक कथानक होते हुए भी, उनमें मानव प्रवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में उन्हें विशेष सफलता मिली है। आपकी विचारधारा भारतीय संस्कृति से प्रभावित है और आप आधुनिक सभी वादों और विवादों से दूर रहे हैं। आपके नाटकों की एक बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ अनेक लेखकों ने अपनी लेखनी का अर्थीकरण किया है, वहाँ प्राचीन संस्कृति और भारतीय गौरव के कथानक और घटनाएं लेकर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा करते हुए आप स्वान्तः सुखाय ही लिखते रहे हैं। अपने पौराणिक नाटकों में सक्सेना जी भारतीय संस्कृति के व्याख्याता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इन नाटकों में जहाँ उनका भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष पूर्ण है वहाँ सांस्कृतिक विचारों का भी उत्तम विश्लेषण है। भारतीय शिष्टाचार और सांस्कृतिक विचारधारा का उन्होंने सदा सर्वदा ध्यान रखा है। गम्भीर विचारों से ओतप्रोत होते हुए भी उनमें सजीवता और सरसता है। करुण-रस का उद्रेक करने की सक्सेना जी में स्वाभाविक प्रतिभा है। गौण रसों में शृंगार और वात्सल्य रसों का भी समावेश है। बड़े नाटकों में शृंगार करुण और शान्त रसों का यत्र तत्र मार्मिक और मर्म-स्पर्शी प्रयोग पाया जाता है। अनेक स्थल बड़े करुणात्मक व हृदयग्राही बन गये हैं।

साधना-पथ ऐतिहासिक नाटक

उद्देश्य तथा विचारधारा — प्रस्तुत नाटक सक्सेना जी का ऐतिहासिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में पात्र तथा देशकाल वातावरण का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रायः ऐतिहासिक नाटककार किसी मुख्य उद्देश्य या विचारधारा को ले लेता है और ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से उसी उद्देश्य को स्पष्ट करता है। मुख्य पात्रों के सम्बन्ध में हेर फेर करने की गुंजाइश नहीं होती इसलिए वह कुछ गौण पात्रों

का निर्माण अपनी कल्पना से करता है, उसके चरित्र चित्रण में स्वतन्त्रता से काम लेता है कुछ को अपनी विशेष विचारधारा या दृष्टिकोण प्रकट करने का माध्यम (Mouthpiece) बना लेता है।

ऐतिहासिक और इतिहास एक नहीं होते। दोनों में अन्तर है। शुष्क इतिहास में सन्, तारीखों व्यक्तियों और युद्धों को विशेष महत्व दिया जाता है। इतिहास की सत्यता शुष्क होती है। वर्णन सच्चे होते हुए भी रोचक और प्रभावशाली नहीं होते। आप किसी इतिहास की पुस्तक को उठा लीजिए। उसमें आपको घटनाओं का शुष्क कालिक और क्रमबद्ध रूप मिल जायेगा, पर रस, भावना या रोचकता न मिलेगी। व्यक्तियों के विषय में भी केवल ऊपरी संकेत मात्र ही मिल जायगा; उनके चरित्रों की बारीकियाँ या हृदय की धड़कनें नहीं मिलेंगी; पात्रों की भावनाएं प्राप्त नहीं होंगी। इतिहास और नाटक दोनों में सत्यता के दर्शन होते हैं, किन्तु इतिहास का सत्य सन्, तारीखों और घटनाओं का सत्य है ऐतिहासिक नाटक का सत्य उसकी भावनाओं का शाश्वत सार्वभौमिक सत्य है जिसमें समय और काल की गति के बावजूद कोई परिवर्तन नहीं होता जो सदा एक रस है जो सजीव और सप्राण है। इतिहासकार की कुछ सीमाएं और मर्यादाएं हैं। इतिहासकार भावना में नहीं बह सकता। उसे एक सच्चे प्रमाणित हो जानेवाले तथ्य की रक्षा करनी होती है। जो कुछ वह कहता है वह गलत न हो जाय या उसका प्रमाण न मिले ऐसा नहीं होना चाहिए। इसका वह बड़ा ध्यान रखता है। इसके विपरीत ऐतिहासिक नाटककार विश्रुत चरित्र को लेकर उसमें अपनी ओर से भावनाओं के रंग भरता है नए नए रसों का समावेश करता है निर्जीव इतिहास में प्राण फूंकता है। कल्पना पग पग पर उसकी सहायता करती है। प्रभावोत्पादकता मार्मिकता और सरसता का उसे सदा ध्यान रखना पड़ता है। फिर भी वह यथासंभव ऐतिहासिक मर्यादाओं का ध्यान रखता है।*

---

*"इतिहास के विपरीत नाटक एक साहित्यिक कलाकृति होती है जिसमें नाटककार स्वयं परोक्ष में रहते हुए भी किसी काल विशेष एवं उससे सम्बद्ध घटनाओं को कुछ पात्रों में मूर्तिमान कर शुष्क एवं निर्जीव इतिहास में सप्राणता एवं सरसता उत्पन्न करता है। सत्य एवं सुन्दर दोनों के इस व्यावहारिक समन्वय द्वारा ही ऐतिहासिक नाटक की उत्पत्ति हुई जिसके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों का एक कलात्मक दिग्दर्शन हो सका।

प्रो गुलजारीलाल जैन

सक्सेना जी का "साधना-पथ" एक ऐतिहासिक नाटक है। स्वयं नाटककार ने प्रवचन में लिखा है "यह नाटक है इतिहास नहीं। इसलिए ऐतिहासिक पात्रों में थोड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया गया है और समय की लम्बी चादर को खींचकर छोटा कर लिया गया है। नाटक की मुख्य भावना की पोषक सामग्री प्रस्तुत करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। उसी के लिए इतिहास का भी उपयोग हुआ है।

अतः इस कृति को नाटकीय तत्वों की कसौटी पर ही कसना चाहिए इतिहास की कसौटी पर नहीं। लेखक का मुख्य उद्देश्य राजस्थान की प्रसिद्ध कृष्णभक्ति कवयित्री मीराबाई के चरित्र की भावनाएं मुख्यतः भक्ति और वैराग्य भावनाएं प्रकट करना है। मीराबाई ही प्रमुख पात्री है। लेखक ने उसी के जीवन तथा चरित्र के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है विशेष रूप से उसकी भक्ति भावना को उभारा है। चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए मीराबाई के प्रारम्भिक जीवन विवाहित और भक्ति वैराग्य के सब पहलुओं को कलात्मक तरीके से केंद्रित कर लिया गया है।

प्रारम्भिक दृश्य में ही मीरा के पितामह राव दूदा बालिका मीरा का भक्ति सिक्त संगीत सुनकर कहते हैं "वत्से तेरी भाव भक्ति ने मेड़तिया वंश को पवित्र कर दिया है। तू भक्तकुल की मुकुटमणि है।'

मीरा— दादा जी आप मेरे साथ अन्याय कर रहे हैं!

दूदा— नहीं तू भक्त शिरोमणि है।

मीरा— घर में किसको शिक्षा का ज्ञान है? मेरा हृदय तो दादा जी आपकी ही रचना है।

दूदा— ओह! मुझे याद है वह दिन जब उन महात्मा से तू गिरधरलाल की मूर्ति लेने के लिए अड़ गई थी " इसके आगे दूदा कहते हैं—

"मीरा मैं आशीर्वाद देता हूं तू अविचल भक्ति की अधिकारिणी हो।'

यहीं से मालूम होने लगता है कि मीरा में भक्ति वैराग्य और श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम की प्रधानता है। राव दूदा से ही उसे विराग की दीक्षा मिली है। रतनसी इसी कारण चिन्तित भी हैं। वे मीरा से कहते हैं, बच्ची संसार का प्राण कल्पना और कवित्व नहीं संघर्ष है। मैं चाहता हूं भावुकता के स्थान पर वास्तविकता की किरण से तेरा हृदय अभिषिक्त हो।"

क्षत्रिय कुमारी मीरा की भक्ति भावना धीरे धीरे बढ़ती जाती है। पिता रतनसी

और माता चम्पाबाई चिन्तित हैं। आनेवाली आपत्तियों का कुछ आभास हमें माता चंदाबाई के निम्न वक्तव्य से होता है —

"मैं अब पछताती हूँ महाराज। उसका भावावेश, उसकी भक्ति और उसकी तन्मयता देखकर कभी कभी मुझे डर होने लगता है।"

मीरा की भक्ति साधना का क्रमिक विकास होता जाता है। यह भक्ति भावना ही पूरे नाटक में पृष्ठभूमि बन कर फैली हुई है। एक दर्जन से भी अधिक पात्र हैं किन्तु वे सब मीरा से सम्बद्ध हैं। उन्हीं के पावन चरित्र पर किसी न किसी पहलू से प्रकाश डालते हैं। इस भक्ति साधना में विघ्न आने प्रारम्भ होते हैं। पहले माता पिता चिन्तित होते हैं। राजकुलीन क्षत्रिय ललना के लिए इतना कृष्णभक्ति में लीन हो भजन पूजन मानन करना उन्हें उचित प्रतीत नहीं होता। अन्त में जब राज्य की बागडोर मेवाड़ के तृतीय राजकुमार (बाद में राणा) विक्रमाजीत के हाथ में आती है तो वह इस भक्ति को उचित नहीं समझते। राजकुल के लिए कलंक स्वरूप मानते हैं। नाटक के तीसरे अंक के सातवें दृश्य में उनके विक्षुब्ध स्वरूप को देखा जा सकता है :—

"वि०— सोलोदिया कुल की राजरानियाँ अब नर्तकी बनेंगी। कैसा अन्धेर है!

(ऊदाबाई का प्रवेश)

ऊदाबाई— वही क्रोध! आप अभी शान्त नहीं हुए?

विक्रमाजीत— शान्त! मैं पुरुष हूं ऊदा! मैं बप्पा रावल का वंशधर मेवाड़ का राणा हूं। इस कुल को अपनी क्षत्राणियों का गौरव है। उन असूर्यम्पश्या देवियों की कीर्ति को मैं इस प्रकार कलंकित होते नहीं देख सकता।

ऊदा— उनकी कीर्ति अमर रहेगी!

विक्रमाजीत— क्या इसी प्रकार नर्तकी और गायिका बनकर? सर्वसाधारण के सामने रासक्रीड़ा करके?... वे राणा सांगा की कुल वधू हैं। विधवा होकर भी वे वंश की मर्यादा से बंधी हैं जिसकी कीर्ति से भूमण्डल आलोकित हो रहा है ... मुझे शासक का कर्तव्य पालन करने दो। ऊदा! बिना शासन दण्ड के यह तूफान शान्त होने का नहीं है ... मैं अपने विशद वंदुय-वंश की मान-मर्यादा में कलंक लगते नहीं देख सकता ... ... ।

इसी प्रकार अपनी कृष्ण भक्ति के कारण मीरा को दयाराम हलाहल देता है, सर्प की माला पहनाई जाती है। ऐसी कठोरतम परीक्षाएं पार कर मीरा भक्तों, साधु

सन्तों में लोकप्रिय हो जाती हैं। उन्हें नाना प्रकार के कटु विरोध सहने पड़ते हैं कठिनाइयों और आपत्तियों से लोहा लेना पड़ता है। अन्त में वे गिरधरगोपाल की मूर्ति में समा जाती हैं। सम्पूर्ण नाटक प्रभविष्णु भक्त शिरोमणि मीराबाई के साधनामय जीवन से सम्बन्धित है। प्रो० गुलजारीलाल जैन के शब्दों में, "मीरा का जीवन वस्तुतः साधनामय था। गिरधर प्रेम का वह पथ जिसे उस सलोने सजनी ने अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के लिए चुना था अत्यन्त ही महान एवं कण्टकाकीर्ण था। उन्हें ज्ञान नहीं था कि भक्तवत्सल की भक्ति में पिता की ताड़ना तथा देवर की भर्त्सना के अतिरिक्त अहिदंश तथा विषपान तक करने को मिल सकता है, किन्तु गिरधर प्रेम के प्रति उन्हें एक उद्दाम लगन थी, जिसके कारण कराल विपत्तियाँ तथा भीषण परीक्षाएं भी उसे अपने साधना-पथ से विचलित न कर सकीं।" प्रारम्भ से लेकर अन्त तक मीरा के भक्तिरूपी साधनापथ का मार्मिक विवेचन कर सक्सेना जी ने एक सुन्दर आदर्शोन्मुख नाटक लिया है। नाटक का नामकरण ही उसके उद्देश्य का सूचक है।

कथावस्तु राजस्थान में भक्त शिरोमणि मीरा के भक्ति संगीत से स्निग्ध पद घर घर गाये जाते हैं। उनसे नई प्रेरणा और एक सात्विक आनन्द प्राप्त होता है। इतिहास इसका साक्षी है कि इस भक्ति को स्थिर रखने के लिए कृष्ण जी के प्रेम में दीवानी मीरा को कितनी ही विपत्तियाँ और अग्नि परीक्षाएं देनी पड़ी थीं। उन्हीं कृष्ण आराधिका मीरा के जीवन और चरित्र को कथावस्तु के रूप में चुना गया है।

लेकिन ऐतिहासिक नाटककार अपनी कल्पना के बल पर पुराने कथानकों में आवश्यक परिवर्तन कर लेते हैं। स्वयं लेखक ने प्रारम्भ ही में यह स्पष्ट कर दिया है कि मैंने ऐतिहासिक पात्रों में थोड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया है और समय की चादर को खींच कर छोटा कर लिया है। मुख्य भक्ति भावना और साधनामय जीवन ही स्पष्ट करना उनका मूल उद्देश्य रहा है। यह नाटक सहृदयों के लिए है ऐतिहासिक सत्यता और नवेषणा ढूँढने वालों के लिए नहीं है। इतिहास में मीराबाई की कहानी का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि भक्ति के कारण उन पर भांति भांति के अमानुषिक अत्याचार हुए। मेवाड़राज ने भी अत्याचार किए। उन्हें सर्प से डसवाया गया और जहर पिलाया गया। लेकिन मीरा सांसारिक सुख और संकुचित मर्यादाओं में बंधी न रह सकीं।

लेखक ने ऐतिहासिक कथानक में कुछ ऐसे परिवर्तन किए हैं जिनसे मीराबाई की कहानी बुद्धि और तर्कसम्मत बन गई है। उन्हें विधवा के रूप में चित्रित किया गया है। इससे उनकी भक्ति और वैराग्य की भावनाएं बुद्धि सम्मत प्रतीत होती हैं। राणा विक्रमाजीत महाराणा सांगा के तीसरे पुत्र तथा मीरा के छोटे देवर हैं। महाराणा की मृत्यु हो जाने और उनके दो उत्तराधिकारियों के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर वे सिंहासन पर विराजते हैं। लेखक ने उन्हें धर्म और मर्यादा का प्रति प्रेमी दिखाया है। अतः मीरा के मार्ग में अड़चनें उपस्थित करना और कठोरता बरतना उनके द्वारा ठीक ही मालूम होता है। वे आधुनिक विचारों के हैं। साधुओं को आडम्बरपूर्ण समझते हैं। विक्रमाजीत कहते हैं —

'मैं कस नहीं हूं जो भगवद्भक्ति का विरोध करूं। मैं तो उस नाच-गाने का विरोधी हूं जो न आध्यात्मिक नहीं वासनात्मक प्रवृत्तियों को जगानेवाला है। देखती नहीं हो मन्दिर में भक्तों की भीड़। क्या यह सब भक्त ही हैं रसिक नहीं।'

इस प्रकार के सुधारवादी विचारों वाला व्यक्ति निश्चय ही यह नहीं पसन्द करेगा कि सीसोदिया कुल की राजरानियां नर्तकी बन जायं। या साधु सन्तों की संगति में दिन रात व्यतीत करती रहें।

इसी प्रकार लेखक ने अपनी कल्पना से दयाराम पाण्डे का नया चरित्र गढ़ा है। वह चित्तौड़ का ब्राह्मण है और मीरा की भक्ति का विरोधी है। उसने पंचामृत के नाम से राजरानी मीरा को छल से विष दे दिया। लेखक ने उसे पश्चात्ताप की अग्नि में जलता हुआ दिखाया है। वह कहता है "मैं राणा विक्रमाजीत के सामने हूं। मैं एक भक्त शिरोमणि नारी की हत्या का पापी हूं" "सरकार मैं हत्यारा हूं। मैंने अपने स्वामी की इच्छा पूर्ति के लिए यह भीषण कृत्य किया है" "मुझे मृत्युदण्ड दीजिए मृत्यु से भी कठोर यंत्रणा मुझे तिल तिल करके जला रही है।

इसी प्रकार सुखलाल ब्राह्मण आकर सूचना देता है कि राणा जी बहुत क्रुद्ध हुए। उत्तेजना में मग्न होकर उन्होंने एक बड़ी भयानक बात कर डाली। "उन्होंने निर्माल्य में छिपा कर विषधर सर्प बाई जी के पास भेज दिया। आगे चलकर सुखलाल ही मीरा की प्रबल भक्ति की प्रशंसा करता है और कहता है —

"परन्तु भगवान् की कृपा से वह सांप फूलों की माला सा निर्विष हो गया। उसे पहनकर वे गोपाल के सामने झूम झूम कर गा रही हैं विश्वास न हो मंदिर में

जाकर देख लो। मैं अपनी आँखों से देखकर आया हूँ।

नाटक के मध्य में युद्ध का प्रसंग और वीर भोजराज की दुःखद मृत्यु के कारुणिक प्रसंग मीरा का भजन इत्यादि प्रसंग सूत्र रूप में जोड़ दिये गए हैं। वास्तव में लेखक मीरा के चरित्र में ही दिलचस्पी रखता था। उसी को सर्वत्र प्रधानता दी गई है। भक्त-शिरोमणि मीरा का चरित्र और जीवन स्पष्ट हो गया है। गौण पात्र जैसे राव दूदा, रत्नसी सांगा भोजराज ऊदाबाई सभी मीरा के चरित्र के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। राव दूदा के चरित्र का तो यही महत्व है कि वे मीरा के प्रारम्भिक संस्कार स्पष्ट कर देते हैं।

निष्कर्ष यह है कि इस नाटक में भावना का महत्व है। कथानक संक्षिप्त स्पष्ट तथा सरस है। इसे भावना को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही बनाया गया है कि वह मीरा के प्रारम्भिक जीवन से लेकर उनके अन्तर्धान होने तक की सारी कथा को स्पष्ट कर दे। बिना किसी प्रभावात्मक जटिलता के वह कथानक दर्शकों के मन में मीरा की साधना को स्पष्ट कर देता है। इतने बड़े कथानक को इतनी अल्प परिधि में उसी सुन्दरता और मार्मिकता से अंकित कर देना लेखक के कौशल का परिचायक है। एक आलोचक के शब्दों में मीरा के जीवन चरित से अनभिज्ञ दर्शक भी बिना किसी मानसिक कसरत के सब कुछ ग्रहण कर सकता है। समस्त कथा में कहीं भी कुछ अस्पष्टता अथवा उलझन नहीं है वरन् एक क्रम है जो गति की तत्परता के कारण दर्शक को कथासूत्र को जोड़ने में सहायता करता है।' ये शब्द सत्य हैं। सफलता भी कथानक निर्माण में रही है, क्योंकि एक विस्तृत कथा में भी उन्होंने संक्षिप्तता स्पष्टता और रोचकता उत्पन्न कर दी है। दर्शकों और पाठकों का कौतूहल पूरी तरह जागृत रहता है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक पात्र, यहाँ तक कि प्रत्येक कथोपकथन सप्रयोजन रखे गए हैं।

पात्र और चरित्र चित्रण — ऐतिहासिक नाटक होने के कारण इसमें पात्रों की संख्या अधिक है। मीराबाई प्रमुख पात्र है शेष गौण। गौण पात्रों में लेखक के गुरु स्वामी मीरा के पितामह राव दूदा मीरा के पिता रत्नसी, मेवाड़ के महाराणा सांगा मेवाड़ के युवराज भोजराज और मेवाड़ के तृतीय राजकुमार विक्रमाजीत महत्व पूर्ण हैं। इन सबका महत्व यह है कि ये मीराबाई के चरित्र के किसी पहलू को उजागर करते हैं। विक्रमादित्य खलनायक का स्थान लेते हैं। अधिकांश पात्र राजघरानों से ही सम्बन्धित हैं। राव दूदा रत्नसी, जयमल, सांगा, भोजराज, रत्नसिंह, विक्रमादित्य

ऐतिहासिक पात्र हैं। इनका चरित्र चित्रण अधिकांश में उसी रूप में हुआ है, जैसा स्वरूप इतिहास में वर्णित है। वह पूर्ण एवं प्रामाणिक है।

लेखक का कौशल और चातुर्य कुछ ऐसे गौण पात्रों के निर्माण में है, जिन्हें उन्होंने कल्पना के द्वारा जन्म दिया है। ये पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मीरा के चरित्र के किसी पहलू पर प्रकाश डालते हैं। इन गौण पात्रों में मीरा के बचपन की दो सखियाँ रत्नावली तथा कंचन हैं। ये मीराबाई से बातचीत करती हैं और उनके यौवन काल के गुप्त मनोभावों को प्रकाश में लाती हैं। एक युवती अपने यौवन के उद्‌गार समवय वाली युवती पर ही प्रकट कर सकती है। यही मीरा का हाल है। मीरा से जब कंचन विवाह के विषय में पूछती है तो वे कहती हैं :—

मीरा— "मैं दादा जी की आत्मा को दुखी न करूंगी। मैं बिन्दु में सिन्धु का दर्शन करूंगी। मैं विवाह में उस परम सम्बन्ध को खोजूंगी।"

इसी प्रकार दूसरी सहेली रत्ना से मीराबाई अपनी ईश्वरभक्ति भगवत्-आराधना में तादात्म्य और तल्लीनता प्रकट करती हैं। वे रत्ना को नवधाभक्ति का मर्म प्रकट करती हैं। उधर उनकी देवरानी अजबकुंवरि भी विधवा हो जाती हैं। वे भी व्याकुल हैं। रत्ना मीरा बाई से अजबकुंवरि की अधीरता का उल्लेख करती है तो मीरा गम्भीर दार्शनिकतापूर्ण उत्तर देती हैं। वे कहती हैं कि 'जो साधना की सीढ़ी पर जितना ही ऊंचा चढ़ जाता है सांसारिक माया-मोह उसे उतने ही कम सताते हैं। बहिन अजबकुंवरि ने भक्ति के पथ पर अभी पैर धरा है। भक्ति के संसार में उनके पैर अभी जम नहीं पाये हैं। इसीलिए उनकी मनोदशा ऐसी है। मैं स्वयं भी क्या विचलित नहीं होती ? कभी कभी मेरा भी असहाय हृदय नारी का एक दुर्बल हृदय बन जाता है और सारी आस्था परी की तरह डोलने लगती है।

मेड़ता के वृद्ध स्वामी दूदा मीरा के पितामह हैं। मीरा शैशवकाल में उन्हीं की छत्रछाया में पली है। उसके प्रारम्भिक संस्कार राव दूदा के ही दिए हुए हैं। मीरा कहती हैं कि उनके प्रारम्भकालीन संस्कार राव दूदा की शिक्षा के ही फल हैं। प्रारम्भ से ही उनकी प्रेरणा से मीरा कृष्णभक्ति की ... भक्त बनी थी। राव दूदा के शब्दों से पाठकों और दर्शकों को मीरा ...
है। राव दूदा बतलाते हैं कि ...
धर्मासक्त है। मीरा से वे ...

देश को पवित्र कर दिया है। तू भक्तजन की मंदाकिनी है। भक्त-शिरोमणि है।"
मीरा के कृष्णभक्ति विषयक छन्द उन्हें बहुत प्रिय हैं। वे मीरा के पद सुनकर मुग्ध हो जाते हैं। उनके अशान्त मन को बड़ी शान्ति मिलती है। दूदा कहते हैं कि मीरा के पदों में एक हृदयवसित हृदय है। अनेक साधु-महात्माओं की वाणी भी ऐसा अमृत नहीं डाल सकती जो मीरा की वाणी में है। वे मीरा के चरित्र के भक्तिमय-पहलू को स्पष्ट करते हैं। मृत्युशय्या पर पड़े पड़े भी मीरा के भजन सुनते हैं। उन्हें सुनकर शान्ति, शीतलता और मधुरता मिलती है। भजन सुनते सुनते ही शान्ति से उनके प्राण निकलते हैं।

राव दूदा के शब्दों से ही हमें मालूम होता है कि भक्ति के क्षेत्र में वय का कोई खास महत्व नहीं है। छोटी होते हुए भी मीरा भक्ति के क्षेत्र में निरन्तर अग्रसर होती रहीं। योग्यता के लिए अवस्था न कोई बन्धन है न प्रमाण कसौटी। यदि एक लक्ष्य हो तो मनुष्य निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होता रहता है और अल्पायु में ही उद्देश्य प्राप्त कर लेता है। छोटी आयु में ही मीरा के मन में भगवद्भक्ति की लालसा थी। सांसारिक कठोरताएं उन्हें न रोक सकीं और वे कृष्ण में लीन हो गईं। मीरा के वे प्रारम्भिक संस्कार विचारधाराएं, प्रवृत्तियां, वैराग्य-भावना हमें राव दूदा के माध्यम से मिलती हैं।

युवराज भोजराज मेवाड़ के महाराणा हैं। वे प्रारम्भ से ही शंकित हो जाते हैं और कह उठते हैं "अमृतत्व की प्यासी मुग्ध आत्मा क्या नश्वर हाला से तृप्त हो सकेगी, कौन जाने।" प्रथम मिलन में वे मीरा के आध्यात्मिक जीवन और पवित्रता से बड़े प्रभावित होते हैं। वे कहते हैं 'मीरा स्वर्गीय दिव्य कुसुम है। वह विलास की नहीं, पूजा की वस्तु है।" अपने बाबा राव दूदा की आज्ञानुसार यद्यपि मीरा लौकिक दाम्पत्य बन्धन में बंधने को प्रस्तुत हो गई थी तथापि वह दाम्पत्य जीवन में भी ईश्वरीय सम्बन्ध को खोजती है।

ऊदाबाई के चरित्र द्वारा नाटककार ने मीरा और भोजराज के पारिवारिक जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। वह अपनी बाल सुलभ बातों में उनके दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डालती है। स्वयं वह पति विषयक तत्वों से अनभिज्ञ है। मीरा ऊदा को समझाते हुए कहती है—

'विवाह हो जाने पर समझ जाओगी बाई जी। स्त्री ही अपने स्वामी के प्रत्येक मर्म जानती है। उसके लिए वे ही पुरुष हैं। वे ही देवता हैं, वे ही पूज्य हैं

ऐतिहासिक पात्र हैं। इनका चरित्र चित्रण ध्वनिकाव्य में उसी रूप में हुआ है, जैसा स्वरूप इतिहास में वर्णित है। वह पूर्ण एवं प्रामाणिक है।

लेखक का कौशल और चातुर्य कुछ ऐसे गौण पात्रों के निर्माण में है जिन्हें उन्होंने कल्पना के द्वारा जन्म दिया है। ये पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मीरा के चरित्र के किसी पहलु पर प्रकाश डालते हैं। इन गौण पात्रों में मीरा के बचपन की दो सखियाँ रत्नावली तथा कंचन हैं। ये मीराबाई से बातचीत करती हैं और उनके जीवन काल के मुख मनोभावों को प्रकाश में लाती हैं। एक युवती अपने यौवन के श्रृंगार समवय वाली युवती पर ही प्रकट कर सकती है। यही मीरा का हाल है। मीरा से जब कंचन विवाह के विषय में पूछती है तो वे कहती हैं :—

मीरा—"मैं बाबा जी की आत्मा को दुखा न सकूंगी। मैं बिन्दु में सिन्धु का दर्शन करूंगी। मैं विवाह में उस परम सम्बन्ध को जोड़ूंगी।"

इसी प्रकार दूसरी सहेली रत्ना से मीराबाई अपनी ईश्वरभक्ति, भगवत्-आराधना में तादात्म्य और तल्लीनता प्रकट करती हैं। वे रत्ना को भगवद्भक्ति का स्वरूप प्रकट करती हैं। उधर उनकी देवरानी अजबकुंवरि भी विधवा हो जाती हैं। वे भी व्याकुल हैं। रत्ना मीरा बाई से अजबकुंवरि की अधीरता का उल्लेख करती है तो मीरा गम्भीर दार्शनिकतापूर्ण उत्तर देती हैं। वे कहती हैं कि 'जो साधना की सीढ़ी पर जितना ही ऊंचा चढ़ जाता है सांसारिक माया मोह उसे उतने ही कम सताते हैं। बहिन अजबकुंवरि ने भक्ति के पथ पर अभी पैर धरा है। भक्ति के संसार में उनके पैर अभी जम नहीं पाये हैं। इसीलिए उनकी मनोदशा अभी ऐसी है। मैं स्वयं भी क्या विचलित नहीं होती ? कभी कभी मेरा भी असहाय हृदय नारी का एक दुर्बल हृदय बन जाता है और सारी आस्था पत्ते की तरह डोलने लगती है।

मेड़ता के वृद्ध स्वामी दूदा मीरा के पितामह हैं। मीरा शैशवकाल में उन्हीं की छत्रछाया में पली है। उनके प्रारम्भिक संस्कार राव दूदा के ही दिए हुए हैं। मीरा कहती हैं कि उनके प्रारम्भकालीन संस्कार राव दूदा की शिक्षा के ही फल हैं। प्रारम्भ से ही उनकी प्र रणा से मीरा कृष्णभक्ति की ओर झुक गई थी। राव दूदा के शब्दों से पाठकों और श्रोताओं को मीरा के प्रारंभकालीन जीवन तथा प्रवृत्तियों का पता चलता है। राव दूदा बतलाते हैं कि मीरा भावुक है भक्तिरस में डूबी हुई है संसार के प्रति अनासक्त है। मीरा से वे प्रारम्भ में ही कह देते हैं "बसे तेरी भाव भक्ति ने मेड़तिया

जग को पवित्र कर दिया है। तू मरुस्थल की मंदाकिनी है।" भक्त-शिरोमणि हैं।" मीरा के कृष्णभक्ति विषयक पद उन्हें बहुत प्रिय हैं। वे मीरा के पद सुनकर मुग्ध हो जाते हैं। उनके अशान्त मन को बड़ी शान्ति मिलती है। दूदा कहते हैं कि मीरा के पदों में एक उच्छ्वसित हृदय है। अनेक साधु-महात्माओं की वाणी भी ऐसा अमृत नहीं बरसा सकती जो मीरा की वाणी में है। वे मीरा के चरित्र के भक्तिमय-पहलू को स्पष्ट करते हैं। मृत्युशय्या पर पड़े पड़े भी मीरा के भजन सुनते हैं। उन्हें सुनकर शान्ति, शीतलता और मधुरता मिलती है। भजन सुनते सुनते ही शान्ति से उनके प्राण निकलते हैं।

राव दूदा के शब्दों से ही हमें मालूम होता है कि भक्ति के क्षेत्र में वय का कोई खास महत्व नहीं है। छोटी होते हुए भी मीरा भक्ति के क्षेत्र में निरन्तर अग्रसर होती रहीं। योग्यता के लिए अवस्था न कोई प्रमाण है न एकमात्र कसौटी। यदि एक साधक हो तो मनुष्य निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर होता रहता है और अल्पायु में ही वह लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। छोटी आयु में ही मीरा के मन में भगवद्भक्ति की लालसा थी। सांसारिक कठोरताएं उन्हें न रोक सकीं और वे कृष्ण में लीन हो गईं। मीरा के ये प्रारम्भिक संस्कार, विचारधाराएं प्रवृत्तियाँ, वैराग्य-भावना हमें राव दूदा के माध्यम से मिलती है।

युवराज भोजराज मेवाड़ के महाराणा हैं। वे प्रारम्भ से ही चिंतित हो जाते हैं और कह उठते हैं "अमृतत्व की प्यासी पुण्य आत्मा क्या नश्वर हमसे तृप्त हो सकेगी, जीव जाने।" प्रथम मिलन में वे मीरा के आध्यात्मिक जीवन और पवित्रता से बड़े प्रभावित होते हैं। वे कहते हैं "मीरा स्वर्गीय दिव्य कुसुम है। वह विलास की नहीं, पूजा की वस्तु है।" अपने दादा राव दूदा की आज्ञानुसार यद्यपि मीरा लौकिक दाम्पत्य बन्धन में बंधने को प्रस्तुत हो गई थी, तथापि वह दाम्पत्य जीवन में भी ईश्वरीय सम्बन्ध को खोजती है।

मालती के चरित्र द्वारा नाटककार ने मीरा और भोजराज के पारिवारिक जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। वह अपनी बाल सुलभ बातों से उनके दाम्पत्य जीवन पर प्रकाश डालती है। स्वयं वह रति विषयक तत्वों से अनभिज्ञ है। मीरा उस को समझाते हुए कहती है —

"विवाह हो जाने पर समस्त कामनाएँ, बाई जी। स्त्री ही अपने स्वामी के प्रत्येक भाव जानती है। उसके लिए वे ही पुरुष हैं। वे ही देवता हैं, वे ही पूज्य हैं,

में ही प्रारम्भ है।"

"ऊदा— भाभी

मीरा— कहो बाई जी!

ऊदा— भैया को भी आपने यह बताया?

मीरा— उन्हें क्या बताऊं वे स्वयं जानते हैं।

ऊदा— वे जानते हैं?

मीरा— वे हृदय में मेरे रोम-रोम में रमे हुए हैं। वे क्यों न जानेंगे? उनसे क्या छिपा है?

ऊदा के ये शब्द उसकी प्रेम-विषयक अनभिज्ञता स्पष्ट करते हैं, पर मीराबाई के गम्भीर ज्ञान के भी सूचक हैं।

राणा विक्रमाजीत के माध्यम से मीरा के सार्वजनिक जीवन और लोकप्रचार के तत्त्व स्पष्ट किये गए हैं। वे सीसोदिया कुल की वंश मर्यादा के पुजारी हैं। वे इस बात से नाराज हैं कि मीराबाई विधवा होकर कीर्तन और नर्तन द्वारा कुल की मर्यादा का क्यों उल्लंघन कर रही हैं। मर्यादा-प्रेम उनके चरित्र का प्रधान गुण है। यों व्यक्तिगत रूप से वे भक्ति को बुरा नहीं समझते। वे उस नाच गाने के विरोधी हैं जो वासनात्मक प्रवृत्तियों को जगाने वाले हैं। एकान्त में वे मीरा को अपनी साधना में लगी रहने दे सकते हैं। यदि मीरा सर्वसाधारण के सामने कीर्तन करना बन्द कर दें तो मीरा की भक्ति से उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। क्रुद्ध चरित्र होकर भी विक्रमाजीत को शुद्ध हृदय निष्पाप चरित्र और मर्य्यादा-प्रेमी बना दिया गया है।

इन बड़े पात्रों के अतिरिक्त दयाराम पाण्डे चित्तौड़ के एक ब्राह्मण हैं वे मीरा की भक्ति के विरोधी हैं। अपने बुरे कामों पर इन्हें बाद में बहुत पश्चात्ताप होता है। वे कहते हैं:—

'धिक्कारो रत्नावली मुझ पापी को धिक्कारो! अनुताप और ग्लानि से क्या वह पाप प्रक्षालित हो सकेगा? उसके लिए अभिशापों की वर्षा भी थोड़ी है।"

अन्त तक दयाराम मीरा को मेवाड़ लौट चलने का आग्रह करता है पर वे नहीं जातीं। जीव गोस्वामी वृन्दावन के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त हैं। वे स्त्रियों से नहीं मिलते। मीरा उनसे कहलवाती हैं "मैं यही समझती थी कि वृन्दावन में श्रीकृष्ण एक ही पुरुष बसते हैं और सभी गोपियां हैं पर आज मालूम हुआ कि यहां पुरुषत्व का दावा करने

वाले भी मौजूद हैं।'' यह सन्देश सुनकर जीव गोस्वामी को ज्ञान हो जाता है। वे नंगे पाँव दौड़े हुए आते हैं। उन्हें यह ज्ञान हो जाता है कि भगवान् की शरण में स्त्री-पुरुष समान हैं। उनके हृदय का आवरण हट जाता है।

इस प्रकार मुख्य और गौण दोनों ही प्रकार के पात्रों का अपना अपना विशेष महत्व है। प्रत्येक साभिप्राय निर्मित हुआ है। व्यर्थ के किसी भी पात्र को स्थान नहीं दिया गया है। मीराबाई और ललिताबाई के चरित्रों को बड़ी कुशलता और बारीकी से सजा-संवारा गया है। इनके पीछे मनोवैज्ञानिक गहराई है। मीरा के चरित्र के शैशव विकास दाम्पत्य वैराग्य इत्यादि सभी भागों पर प्रकाश डाला गया है। उनके सम्बन्ध में मिलने वाले सभी ऐतिहासिक उपकरणों का उपयोग किया गया है। उन्हें नाना परिस्थितियों में डाल कर उनके चरित्र के सब पहलुओं को स्पष्ट होने का पर्याप्त अवसर दिया गया है। गौण पात्रों को काल और समय के अनुसार बड़ी कुशलता से चित्रित किया गया है। यदि रत्नाव ? ललिताबाई वीरमती जीव गोस्वामी दयाराम चन्डे इत्यादि गौण पात्र न होते तो ऐतिहासिक सत्यता और तत्कालीन परिस्थितियाँ पूरी तरह से स्पष्ट न हो पातीं। पुजारी ब्राह्मण सेवक भाभी दासी सैनिक साधु सन्त, इत्यादि वातावरण निर्माण में सहायक हैं। अत चरित्र-चित्रण की दृष्टि से नाटक सफल है।

अभिनेयता — मीरा के सम्पूर्ण चरित्र को नाटक में भर देना कठिन काम है। ६०—७० वर्षों के जीवन-काल को कैसे स्टेज पर दिखाया जावे ? इसके लिए बहुत बड़ा आकार कम से कम पाँच अंकों का नाटक तो चाहिए किन्तु श्री सक्सेना जी ने कुशलता से सम्पूर्ण कथानक को तीन अंकों में ही संक्षिप्त कर दिया है। पहले अंक में मीरा का प्रारम्भिक जीवन शैशव विवाह और दाम्पत्य जीवन है। पहले अंक में भोजराज के अन्तिम उद्गारों से ही दूसरे अंक में आने वाली कथावस्तु पर प्रकाश पड़ जाता है। वे कहते हैं कि विवाह तो हो गया परन्तु कृष्ण-दिवानी मीरा क्या मुझ से प्रेम कर सकती ? अमृतत्व की प्यासी पुण्यात्मा क्या नश्वर हाला से तृप्त हो सकेगी ? और दूसरे अंक में अनेक घटनाएं आती हैं जिनसे मीरा की भक्ति और वैराग्य प्रकट होने लगते हैं। इसी में उनका दाम्पत्य जीवन युवराज भोजराज की बीमारी मृत्यु और लाचारी और उदासी छा जाती है। मीरा ललिता से कहती हैं —

"मैं केवल यही समझ पाई हूँ कि मनुष्य को भगवान् की इच्छा के प्रति आत्म-

कुसुमों की वर्षा नहीं चाहते। ऐसे फूलों को चाहते हैं जो सचमुच उसे सुवासित कर सकें। मैं चाहता हूं कि मीरा कविता का स्वप्न न बने सीधी सादी गद्य की भाषा बनी रहे।

इस प्रकार दृश्यों की संक्षिप्तता कथोपकथनों की सजीवता, पात्रों की व्यक्तिगत विशेषताएं गेय गीतों की सरसता नाट्याचार्यों द्वारा वर्जित दृश्यों से मुक्ति और सरल सरस भाषा के कारण 'सावनापथ' अभिनयशील नाटक है। अधिकतर वार्तालाप एक पंक्ति के अभिप्रायपूर्ण और समयोचित हैं जिनसे यह ऐतिहासिक नाटक भी मौजूदा जमाने जैसा लगता है। दृश्यों के चित्रण, पात्रों की वेशभूषा रंगमंचीय सुझाव दर्शकों को तत्कालीन युग की झांकी दिखाने में सफल हुए हैं।

शैली — शैली की दृष्टि से यह नाटक आधुनिक नाटकों की परिष्कृत शैली का अच्छा उदाहरण है। 'प्रसाद' जी के नाटकों जैसी दुरूहता जटिलता, क्लिष्टता या संस्कृत शब्दावली की प्रचुरता इसमें नहीं है। सरस और प्रवाहपूर्ण भाषा के कारण यह नाटक मार्मिक और लोकप्रिय हो जाता है। प्रायः और बहुत से कथोपकथन लेखक के प्रतिबिम्बों (Images) को उभारने में पूर्ण समर्थ हैं। भावना की जिस गहराई का सक्सेना जी ने भाषा में समावेश किया है वह उसका कभी पृथक न होनेवाला तत्व है।

बापू ने कहा था राजनतिक नाटक

ऐतिहासिक नाटक 'सावनापथ' के अतिरिक्त सक्सेना जी ने सामयिक विषयों पर भी लेखनी चलाई है। 'बापू ने कहा था' उनका नवीनतम राजनैतिक नाटक है। इसमें बापू के जीवन की अन्तिम झांकी नाटक के रूप में प्रस्तुत की गई है।

जहां तक कथानक का प्रश्न आता है उसका निर्माण महात्मा गांधी सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों उनके भाषणों तथा पत्रों में प्रकाशित सामग्री से किया गया है। तथ्यों की भूमि पर कल्पना का भव निर्माण करते समय पात्रों के मुंह से जो संवाद कहलाये गये हैं वे निर्दोष हृदय के उद्गार हैं। सम सामयिक व्यक्तियों को नाटक के पात्र के रूप में लेना और उनको उनके अनुरूप बनाये रखना कठिन कार्य होता है। कल्पित पात्रों के सम्बन्ध में काफी छूट रहती है।

इस नाटक में बापू सरदार वल्लभ भाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू डा० जाकिर हुसैन, आचार्य कृपलानी डा० राजेन्द्र प्रसाद मौलाना आजाद आदि प्रमुख नेता पात्रों के

रूप में प्रस्तुत किए गये हैं, शेष बापू के सहायक मनमो दिल्ली के नागरिक, हिन्दू सिक्ख शरणार्थी नेता, गोडसे, राजकुमारी अमृतकौर, बापू की संबंधी लड़कियाँ, मीरा बहन, डा० सुशीला नैयर इत्यादि हैं। इन सबका सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार महात्मा जी के जीवन से रहा है। इन पात्रों के मुख से वही बातें कहलवाई गई हैं जो उनके द्वारा कही गई हैं या उनसे जिनकी आशा की जा सकती है।

नाटक की कथावस्तु १० सितम्बर १९४७ से प्रारम्भ होकर ३० जनवरी १९४८ गोडसे की पिस्तौल से महात्मा जी की मृत्यु पर समाप्त होती है। इस प्रकार लेखक ने भारत में इन चार महीनों में होने वाले देशव्यापी राजनैतिक संघर्षों और नाना हलचलों का सजीव चित्रण प्रस्तुत नाटक में कर दिया है। यह भारत में वह युग था जब तीव्रता से देश का नक्शा बदला और नई चेतना का जन्म हुआ। आजादी की प्राप्ति के पश्चात् देश में जो भयावह मारकाट, वैधानिक हत्याकाण्ड, लूटमार, आगजनी घटनाएँ घटीं, गुण्डागर्दी का जो प्रलयंकारी नाच चला उन सबका चित्रण इस में आ गया है। नाटक के दूसरे ही दृश्य में अलवर और भरतपुर से निकले हुए मेवों और शरणार्थियों के चिन्ता, त्रास और दुःख से भरे चेहरे दिखाई पड़ते हैं। बापू यह सब देख कर शर्म से मस्तक झुका लेते हैं। उन्हें मानवता का यह उपहास देखकर बड़ा दुःख होता है। बापू उन्हें समझाते हैं और कहते हैं कि अचानक तूफान आ जाने से सरकार भी कुछ करते धरते नहीं बना है। हिन्दू मुसलमान दोनों का धर्म का भेदभाव छोड़कर भाई भाई की तरह रहना चाहिए। लेखक ने डा० जाकिरहुसेन के शब्दों में यह उचित ही कहा है कि महात्मा जी हिन्दू और मुसलमान दोनों के समान रूप से शुभचिन्तक थे। अन्त में बापू कहते हैं कि मुसीबत में भी उन्हें इन्सान की तरह रहना चाहिए।

नाटककार ने बापू की प्रार्थना-सभा के कई दृश्य लिये हैं जिनसे महात्मा जी की विचारधारा सरलता से प्रकट हो जाती है। प्रत्येक भाषण में उनके ऐसे प्रतिनिधि विचार रखे गये हैं जिनसे महात्मा जी का व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाये। नाटक में प्रत्येक राजनैतिक पार्टी के नेता को अपने विचार और सिद्धान्त स्पष्टता से अभिव्यक्त करने का पूरा पूरा अवसर मिला है। सबने अपने मतों का निर्भयता से प्रामाणीकरण किया है। गांधीवादी विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए अधिक स्थान दिया गया। एक प्रकार से देखा जाय तो यह नाटक समाजवादी, महासभावादी, साम्प्रदायी विचारधारा के साथ गांधीवाद की तुलना है।

पात्रों में गांधी जी की सर्वत्र व्यापकता है। उनके चरित्र और विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए ही कथानक का निर्माण किया गया है। वास्तव में यह नाटक पढ़कर अध्ययन करने के लिए है अभिनय के लिए नहीं। लेखक ने गांधीवाद का अच्छा अध्ययन किया है और इस छोटे से नाटक के माध्यम से प्रकट कर दिया है। "बापू ने कहा था" नामकरण से भी यही प्रकट है कि इस नाटक में लेखक बापू की विचारधारा को अभिव्यक्त करना चाहता है। तथ्य तो यह है कि अभिनयशीलता या नाट्यकौशल की अपेक्षा नाटककार बापू की विचारधारा को ही स्पष्ट करने में सफल हुआ है। नाटक का अन्तिम दृश्य करुण दर्शन मात्र है जिससे बापू के जीवन की अन्तिम झांकी मिल जाती है। गोडसे अपने पिस्तौल का घोड़ा दबाता है एक के बाद एक तीन गोलियां छूटती हैं और बापू 'हे राम!' कह कर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

इस नाटक में लेखक ने विभाजन तथा गांधी हत्याकाण्ड के युग का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिनिधि विचारधारा की अभिव्यक्ति और सजीवता की दृष्टि से यह नाटक सफल है। भारत की विचारधाराओं का सच्चा प्रतिबिम्ब इसमें अंकित हो गया है।

मेघदूत रंगमंचीय नाटक

यह नाटक कालिदास की विश्वविख्यात कृति 'मेघदूत' का मंच के अभिनय के लिए हिन्दी रूप है। 'मेघदूत' शाश्वत आनन्द और सुख देनेवाला संस्कृत का अमर काव्य ग्रन्थ है। साहित्य और कला तथा संगीत और सौन्दर्य के संसार में सर्वत्र नाना प्रकार से मेघदूत की कथा कही और सुनी जाती है। यह चिरनवीन आख्यान है, यह चिरनूतन गीत है। विरह वेदना और मिलनाकांक्षा इसकी पंक्ति पंक्ति में ओतप्रोत है। यक्ष ने मेघ से संपूर्ण जोड़ लिया है चेतन अचेतन का भेद उनके मध्य में नहीं है। 'मेघदूत' अपने प्रकृति वर्णन में भी अद्वितीय है। यह कोरा प्रकृति-वर्णन न होकर प्रकृति का मानवीकरण है। प्रकृति इसमें जड़ न होकर चैतन्ययुक्त है। कालिदास ने अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर इसमें सजीवता और चैतन्य फूंक दिया है। यक्ष की व्यथा विभोर विलाप कर प्राकृतिक पदार्थों के माध्यम से महाकवि अनेक मार्मिक तत्वों का उद्घाटन कर गए हैं। इसी प्रकार भारतीय गृहजीवन में जो कुछ वर्णनीय स्पृहणीय और सराहनीय है उसे मेघ के सम्मुख अपना संदेश निवेदन करते हुए कह दिया गया है।

नाट्यकार श्री संपूर्णानन्द सक्सैना ने एक बड़ा साहस का कदम यह उठाया कि

मेघदूत की कहानी को एक सजीव नाटक का रूप दे दिया। इसमें मानव पात्र तो केवल यक्ष ही है। दूसरा पात्र कल्पित है। वह है आषाढ़ का प्रथम मेघ। वास्तव में वह यक्ष के मन के भावों को ही प्रकाशित करने का माध्यम है। यक्ष अपनी बातों का उत्तर स्वयं ही मेघ के मुंह से प्राप्त कर लेता है। सक्सेना जी ने इसी रूप में उसकी अवतारणा की है।

नाट्यकार ने सरस और मार्मिक काव्य से स्निग्ध मधुर भाषा में यह नाट्य रूपान्तर किया है। पढ़ने में पाठक आत्मविभोर हो उठता है। साहित्यिकता से परिपूर्ण इस नाटक के कथोपकथन देर तक कल्पना में जागरूक रहते हैं। दृश्य सजीव-सा सामने खड़ा हो जाता है। मनुष्य की आशा-निराशा कुंठा चेतना मिलन आकांक्षा को चित्रित करने की अपूर्व क्षमता लेखक के पास है।

सक्सेना जी ने काव्य को नाटक का रूप देकर अनुवाद के क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है। एक भाषा के काव्य को दूसरी भाषा के काव्य में बदल देना आसान है किन्तु उसे सजीव और मार्मिक नाटक का रूप देना सर्वथा मौलिक और नया प्रयोग है। अपने ढंग का अभूतपूर्व है। मेघ का पात्र रूप में आना लेखक की मौलिक कल्पना की देन है। आद्योपान्त कल्पना प्रसूत होने पर भी मेघदूत की पृष्ठभूमि मांसल है। विरह निवेदन में यक्ष आत्मविस्मृत हो जाता है उसे स्वयं मेघ ही यक्ष के हृदय की छाया बन कर मानों हमारे सामने खड़ा है। इस नाटकीयकरण में सक्सेना जी ने अभूतपूर्व सफलता पाई है। अनुवाद बहुत सफल हुआ है और मूल लेखक की भावना का हिन्दी नाटक के रूप में पूरी तरह उतार दिया गया है। यक्ष के अन्तर्जगत् का चित्रण पूरी तरह मनोवैज्ञानिक है। यह मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि लेखक की सबसे बड़ी खूबी है। मानवीय संवेदनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को काव्य की मधुर शैली में सफलता से उभारा गया है। इस नाटक के कथोपकथन करुण रस से सिक्त हैं और अनायास ही हमें आकृष्ट कर लेते हैं। सक्सेना जी जैसा कवि-हृदय लेखक ही कालिदास की काव्योचित भावनाओं को इतनी मार्मिकता से स्पष्ट कर सकता था।

★

पाँचवाँ खण्ड

सक्सेना जी के सामाजिक एकांकी

श्री शंभूदयाल सक्सेना ने देश के सामाजिक जीवन की व्याख्या अपने एकांकियों में प्रस्तुत की है, कुछ एकांकियों का सम्बन्ध चरित्र के चित्रण से है। चरित्र-विकास के लिए विस्तृत परिधि की आवश्यकता पड़ती है। उनके एकांकियों में कहीं कहीं यथार्थवाद के साथ व्यंग्य का अद्भुत समावेश है। कलाकार की गहरी दृष्टि सामाजिक जीवन की तहों में पहुँची है और उसने समाज की नाना विद्रूपताएं, अभावों बनावटी जीवन और कुण्ठित वातावरण को स्पष्ट कर दिया है। कुछ नाटकों में उनका विचारक रूप प्रकट हुआ है। इस वर्ग के एकांकियों से स्पष्ट है कि सक्सेना जी ने खोजे नेत्रों से समाज को देखा है, स्वयं उन्हें नाना कटु अनुभव मिले हैं बनावटी झूठे देशसेवकों से पाला पड़ा है सामाजिक संस्थाओं की पोलें देखने को मिली हैं। आइये विस्तार से इन एकांकियों का अन्तरंग देखें —

मलेरिया सम्पादक

इस एकांकी में पत्रकार जगत् के जीवन की व्यंग्यमय झांकी प्रस्तुत की गई है। इसके पात्र अपने आपमें टाइप हैं। भार्गव नवयुग पत्र के सम्पादक हैं मथुरा उस कार्यालय के एक क्लर्क हैं मोहिया देश-सेवक के रूप में एक धूर्त। भार्गव अपने अखबार में झूठ सच छापते रहते हैं और जनता को दबा या डरा कर अमीरों को उनकी कुछ शरारतें या भेद-भरी बातें स्पष्ट करने का भय दिखा कर रुपया ऐंठ लेते हैं। अपने दफ्तर के कर्मचारियों तक को वेतन नहीं देते। जब कोई जन-सेवक पीड़ित जनता के लिए दवाई इत्यादि बंटवाना चाहता है, तो वह सम्पादक जी के पेट में चला जाता है। न कागजवालों का कर्ज दे पाते हैं, न टेलीफोन की फीस जमा करते हैं। बस टालते जाते हैं। पूरे चार सौ बीस व्यक्ति हैं। ऐसे सम्पादकों से सम्पादन जगत् बदनाम होता है— यही लेखक ने चित्रित किया है।

यह एकांकी उन तथाकथित छद्मवेशी देश-सेवकों पर एक तीखा व्यंग्य है जो

अपने को माल व सील और मेटकाम पर जनता का सेवक कहते हैं। किन्तु गरीबों को दिया हुआ दान स्वयं हड़प जाते हैं, उनके बिस्कुट स्वयं खा जाते हैं, उनके एकेन्ट गोलियाँ बाजार में बेच देते हैं और उसका रुपया जमा लेते हैं। एकांकी की कुशलता इस तथ्य में है कि अन्त तक पहुँचते पहुँचते भार्गव की कलई खुल जाती है, उनके अत्याचार और चोरी का भण्डाफोड़ हो जाता है। उन्हीं के दफ्तर का एक असंतुष्ट क्लर्क यह मिथ्या व्यवहार प्रकट कर देता है।

यह नाटक मालिक और नौकर समस्या पर प्रकाश डालता है। मालिक हर प्रकार नौकरों का शोषण करना चाहते हैं। उनसे अधिक से अधिक काम निकालकर कम से कम पैसे देना चाहते हैं। महीनों का वेतन दबाये रहते हैं। नाहटा 'नवयुग' कार्यालय का एक पिटा हुआ क्लर्क है। सम्पादक उसे निकालना चाहता है तो नाहटा उससे अपना वेतन माँगता है। यह हिस्सा देखिए, स्थिति को कैसा स्पष्ट कर देता है —

"नाहटा— आपने बुलाया है?

भार्गव— नवयुग' का अब तुम्हारी जरूरत नहीं है।

नाहटा— मेरी या मेरी सेवाओं की?

भार्गव— दोनों की।

नाहटा— तो मेरा हिसाब कर दीजिए।

भार्गव— हिसाब चौदह तारीख को ले जाना।

नाहटा— नहीं साहब, यह नहीं हो सकता।

भार्गव— तब क्या करोगे?

नाहटा— सरकार समझ, हिसाब साफ-पाई पाई साफ। चार महीने से मेरी तनख्वाह रुकी पड़ी है।

भार्गव— मेरे पास अभी रुपया नहीं है।

नाहटा— आपके पास कभी रुपये नहीं होंगे। इससे हमें मतलब?

भार्गव— तुम ईवोनिंग सोसायटी के दफ्तर से पेमेन्ट ले आये और यहाँ जमा नहीं कराया?

नाहटा— यहाँ जमा कराने के बाद फिर कुछ निकल सकता है? तनख्वाह आप देना नहीं जानते। फिर हम लायें किस?

भार्गव— नानसेन्स! जाओ अपना काम करो।

'अस्थाना— नहीं सेठ साहब। अब तो ऊपर एक हजार की हो गई। हत्या का कोई सबाद एक हजार से कम का कैसे हो सकता है आप ही बताइये ? जल्दी करिये पुलिस आ रही है। आप पर हत्या का जुर्म ।

सुराणा— ऐं ऐं— अखबार साहब ! (बड़बड़ाते हैं)

जेबों में से नोटों का एक बंडल निकाल कर कांपते हाथों से अस्थाना के ऊपर फेंकते हैं। पुलिस कांस्टेबिल जिमे के दरवाजे पर डंडे से खटखटाता है। खिड़की उनके हाथों से छूट जाती है। आंखों के आगे अन्धेरा छा जाता है और वे अचेत होकर सीट पर गिरते हैं।

इस एकांकी में व्यंग्य के साथ हास्य का भी समावेश है। यह स्थल सबसे हास्यपूर्ण है, जिसमें राधा का मेहतर की लड़की होना प्रकट होता है —

"अस्थाना— सेठ साहब आपकी शादी कहां हुई है ?

सुराणा— आपसे में पर क्यों पूछते हैं आप ?

अस्थाना— राधा राधा— यह तो रधिया है।

सुराणा— क्या कहते हैं जी ?

अस्थाना— राधा ? यह रधिया किसकी लड़की है ?

सुराणा— बाणिये की और किसकी ?

अस्थाना— नहीं।

सुराणा— क्या कहा ? नहीं ?

अस्थाना— नहीं।

सुराणा— बणिये की नहीं ?

अस्थाना— नहीं।

सुराणा— क्यों आपको क्या पता ?

अस्थाना— पता है।

सुराणा— क्या पता है ? किसकी लड़की है ?

अस्थाना— मेहतर की— हमारे जिमाना मेहतर की।

सुराणा— (मुंह फाड़ कर) ऐं ऐं ऐं।

अस्थाना – यह है हमारे अपने मेहतर की लड़की रधिया। तीन साल से गुम है रधिया।"

इस एकांकी में लेखक ने पूंजीपतियों के असुन्दर, अनैतिक, डरपोक जीवन की खिल्ली उड़ाई है। वे कई कई विवाह करते हैं, पत्नियां मर जाती हैं। उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। जब कोई कुलीन कन्या नहीं मिलती तो महिलाश्रमों तक से कुजाति की कन्याओं से शादी कर लेते हैं। उनका जीवन बस रुपया कमाने में ही लगा रहता है। वैवाहिक सुख सदा उनसे दूर भागता रहता है। उनमें वैवाहिक वैषम्य चलता रहता है। इसकी एक झांकी इस नाटक में मिल जाती है।

अखबार दूसरे की बुरी स्थिति से कैसे अनुचित लाभ उठाते हैं, धरमदास इसके उदाहरण हैं। उन्हें बात का बतंगड़ बनाने में आनन्द आता है। घूस लेकर वे दुराव छिपाव, झूठ फरेब यहां तक कि हत्या तक की खबरों को कैसे दबा लेते हैं यह भी दिखाया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी नाटक सफल है। अखबार कैसे कुटिल और धूर्त होते हैं हड्डी तक में से मांस नोच लेते हैं, समाचारों से कैसे रुपया बनाते हैं धरमदास इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मराठा व्यापारियों की तरह वे मन्द-बुद्धि व्यक्ति हैं। उनके भोलेपन से धरमदास अनुचित लाभ उठाता है। वे नाम को कायम के हैं और अपने अपने वर्गों का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं। 'मलेरिया सम्पादक' और 'एक हजार का जवाब' आदि दोनों एकांकी अखबार जगत् की मौजूदा स्थितियों पर एक कठोर व्यंग्य और प्रहार करते हैं। लेखक का उद्देश्य सुधारवादी है।

विमला और वारुणी

इस एकांकी का कथानक समाचार-पत्रों की दुनिया से परिचित कराता है। इस जगत् में भी क्या क्या काले कारनामे चलते हैं, जैसे गलत या झूठी खबरें छाप छाप कर जनता को ठगा जाता है, सेठों सेठानियों को डराया जाता है और रुपया वसूल किया जाता है—इन सबका पर्दाफाश लेखक ने किया है। पत्रकारिता के प्रोपेगन्डा, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, छोटे कर्मचारियों के शोषण, और धोखेबाजी पर लेखक ने कटु व्यंग्य किया है।

सम्पादक व्यक्तिगत मामलों की गन्दी खबरें छापने की धमकी देकर अनेक व्यक्तियों से रुपया हड़पते हैं। सनसनीखेज खबरों के बल पर ही अखबार चलते रहते हैं। उनमें सच्चाई, जनता की सेवा-भावना, या रुचि परिष्कार इतना नहीं होता, जितना गरीबों का शोषण होता है। यदि संयोगवश उनके पास सच्चा सबूत भी होता

है, तो भी कार्यालय में काम करनेवाले (जिनका वेतन चढ़ा हुआ है) चपरासी, मुन्शी, माली इत्यादि गरीबों को न देकर शराब और मांस में व्यय करते हैं।

इस एकांकी के शर्माजी 'लोकसेवक' पत्र के सम्पादक हैं जिन्हें बिना शैम्पेन की बोतल के सम्पादकीय लिखने में आनन्द नहीं आता। उनके प्रधान सम्पादक भी वारुणी हैं, जो विजया की तरंग में ही लिखने का मजा लेते हैं। नशा किए बिना इन्हें लिखने की प्रेरणा ही नहीं मिलती। मुख्य चार सम्पादक शर्मा का तो यहाँ तक विचार है कि "विश्व का ऊँचे दर्जे का साहित्य विजया और वारुणी की देन है। वेद और उपनिषद् सोमरस पीनेवाले ऋषि महर्षियों की लेखनी से ही लिखे जा सकते थे। असल बात तो यह है कि भावना और कल्पना को पंख लगाने वाली सुरों की प्रिया वारुणी को छोड़कर हम सम्पादकों की कहीं गति नहीं है।' इस एकांकी में लेखक ने पीली पत्रकारिता (Yellow Journalism) करनेवाले कुछ सम्पादकों पर छींटाकशी की है।

एकांकी का कथानक इस प्रकार है। शर्माजी का 'लोकसेवक' बड़ी कठिनता से चलता है। आर्थिक कठिनाई हमेशा बनी रहती है। लोगों का कर्ज चढ़ा हुआ है। टाइपवाले के पैसे देने हैं। फर्नीचर हाउस का रुपया बकाया निकलता है। पप्पू बाबू बीमार है। उसका बुरा हाल है। उसके पैसे भी वे नहीं पा रहे हैं। एक अमीर सेठानी की बदनामी का भय दिखाकर सम्पादक जी एक हजार रुपया ठगते हैं। उनका असिस्टेन्ट सेठानी से और वसूल करना चाहता है पर चतुर सेठानी द्वारा पकड़ा जाता है। अन्त में रमेसियार शर्माजी व्यंग्यमिश्रित वाणी में बापू जी को डाँटते हुए कहते हैं :—

"तुमने 'लोकसेवक' के पवन पद पर कालिख पोतने में क्या कसर रखी? पत्रकार का पेशा कितना ऊँचा है (और स्वयं वे उस ऊँचाई से कितने गिरे हुए हैं) यह समझने के लिए यह अवसर तुम्हारे हाथ आ गया। तुमने "आज" में काम किया "लोकसेवक' में करते हो। बड़े पत्रों में काम करने से कोई बड़ा नहीं बनता। ऊँचे आदर्शों पर न्योछावर होने से ही आदमी बड़ा बनता है। मैं समझता हूँ तुम्हें अपने संवाद का मूल्य मालूम हो गया है?"

इस एकांकी की चरम-सीमा उस स्थान पर आती है जहाँ स्वयं सेठानी जी लट्ठधारी जवानों को लेकर घटनास्थल पर आ जाती हैं। ठगी और पैसा ऐंठने का

भंडाफोड़ हो जाता है। आज की पत्रकारिता में जो बेईमानी और भ्रष्टाचार ओतप्रोत बस रहा है उसका चित्र इस एकांकी में खींचा गया है। नीर-क्षीर का विवेक करनेवाले इस पवित्र पेशे में कितनी बेईमानी जालसाजी झूठ, मक्कारी फरेब आ गया है और पत्रकार अपने पेशे से कितने गिर गए हैं यह स्पष्ट हो जाता है। शर्माजी वारुणी के प्रतिनिधि हैं जासूसी विजया के प्रतीक हैं। शर्माजी की जासूसों पर विजय वारुणी की विजया पर विजय है। यह नाटक चरित्र प्रधान है। कथानक स्तर पर पत्रकार जीवन के बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और पतन का नग्न प्रदर्शन है। विस्मयपूर्ण अन्त से नाटक की प्रभावोत्पादकता बढ़ गई है। नाट्यशिल्प की दृष्टि से सेठानी का जासूसी को पकड़े हुए आना सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। जिस क्रम से घटनाएं घटित होती हैं वह पाठकों की दिलचस्पी में उत्तरोत्तर वृद्धि करता है।

इस नाटक में समाजसुधार का विषय प्रमुख है। लेखक ने दिखाया है कि जिस पत्रकार को समाज की गन्दगी दूर करने का कर्तव्य है वही सुधार चाहता है। यदि पत्रकार स्वयं अपने साथ न्याय नहीं कर सकता तो वह अपने उत्तरदायित्व को कैसे सम्हालेगा? समाज के साथ कैसे न्याय करेगा? उससे समाज की उन्नति की क्या आशाएं की जा सकती हैं? जो सम्पादक शराब पीते हैं गरीब कर्मचारियों का शोषण करते हैं जनता को बदनामी का डर दिखाकर ठगते हैं वे हमारी घृणा के पात्र होने चाहिए। उनके पत्रों का बहिष्कार ही उत्तम है। इस नाटक के शिल्प की एक विशेषता यह है कि इसका कथानक काल विस्तार की दृष्टि से बहुत कम अवधि का परन्तु उसका विस्तार अपेक्षाकृत अधिक है।

दुर्घटना

इस एकांकी में पत्रकारिता का एक दूसरा पक्ष सामने लाया गया है। साधारणतः पत्रकार जगत् में आर्थिक कठिनाइयां रहती हैं। प्रेस कम्पोज़ीटरों का हिसाब साफ नहीं किया जाता। पत्रों की हालत नाजुक होती है। उनके ग्राहक इतने कम होते हैं कि बिक्री से सम्पादक मालिक और कम्पोज़ीटरों तक की उदरपूर्ति नहीं होती। विज्ञापन भी काफी नहीं मिलते। एक युग था जब सेठ साहूकारों के चित्र या रानियों की प्रशंसा छाप देने पर मुँहमांगा रुपया मिल जाता था। छ: महीने में वर्ष भर का खर्चा निकल आता था। जिस ड्योढ़ी पर सम्पादक जी पहुँच जाते थे वहीं उनकी धूम मच जाती थी। पर आज पत्रकारिता घाटे का सौदा है। जब तक सनसनीखेज खबर न हो, तब तक कोई

अखबार को नहीं खरीदता।

इस एकांकी में केसाजी सम्पादक और मालिक 'संसार' मुख्य पात्र हैं। शंकर, सीता मोहन नसीर आदि गरीब कम्पोजीटर हैं। उनके पैसे चढ़े हुए हैं। केसाजी घाटे में हैं। इसलिए कुछ दे नहीं पाते। बड़ी परेशानी में हैं। इतने में अन्धकार में प्रकाश की एक किरण दिखाई देती है। संयोग से एक दुर्घटना हो जाती है। 'संसार' पत्र का दुर्घटना अंक निकलने की तैयारियां शुरू हो जाती हैं। जब दुनिया में शान्ति थी तो "संसार" मर रहा था अब दुनिया दुर्घटनाग्रस्त है, तो वह सजीवन पाता है। गण्यमान्य सब सार्वजनिक नेता आते हैं रिलीफ कमेटी कायम होती है रिलीफ फण्ड खोलने का प्रस्ताव स्वीकार किया जाता है। फण्ड जमा होना शुरू हो जाता है। पब्लिसिटी का काम "संसार" पत्र को मिलता है। उसमें नया जीवन आ जाता है। पत्रकार जगत के मजदूर मनाते हैं कि ऐसी दुर्घटनाएं रोज हुआ करें जिससे उनका रोजगार चलता रहे।

लेखक ने दिखाया है कि एक की मुसीबत में से दूसरा अपनी जीविका कमाता है। हमारे समाज का निर्माण कुछ इस प्रकार का है कि बाहरी दिखावा ही अधिक होता है, सच्चा काम बहुत कम हो पाता है। सार्वजनिक कार्यकर्ता मिथ्या प्रदर्शन अधिक करते हैं ठोस और सच्चा काम बहुत कम। चन्दे उगाहे जाते हैं पर इनके हिसाब में बड़ा गोलमाल होता है। जिसके हाथ में आ जाता है वही हड़प लेता है। सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार की धोखेबाजी चलती रहती है। दुमुंहा व्यवहार (Double dealing) बहुत होता है। इस सामाजिक त्रुटि पर लेखक ने व्यंग्य किया है। पत्रकार जगत् की भूख, पीड़ा, अभाव और शोषण आदि का वातावरण अच्छी तरह निर्मित हुआ है। मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की गिरती हुई स्थिति की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। सार्वजनिक कार्यों में पैसे का कैसा दुरुपयोग होता है अवसरवादी कैसे अनुचित लाभ उठाते हैं इनकी ओर लेखक ने पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है।

जरायमपेशा

इस एकांकी में आज की जनसेवा का हास्य-व्यंग्यमय रूप प्रस्तुत किया गया है। जनसेवा के नाम पर आज बहुत से लोग अनुचित लाभ उठा रहे हैं और जनता का शोषण कर रहे हैं। कहने को "नेता" कहलाते हैं, वास्तव में वे हैं भक्षक और शोषक। जैसे जोंक खून चूसती है ये तथाकथित नेता समाज का अर्थ चूसते हैं। सार्वजनिक रुपया

इनकी जेबों में चला जाता है।

सोहनलाल नगर कांग्रेस के अध्यक्ष एक सेठ हैं। नगर कांग्रेस के दफ्तर में विजित बैठे हैं। छोटे कमरे की दुछत्ती पर कई बक्से रखे हैं। उन पर धूल छाई हुई है। लगता है कि एक अर्से से वे काम में नहीं लाये गए हैं। इसी प्रकार अनेकों पुस्तकें रखी हैं। जिन पर न पढ़े जाने के कारण धूल जम गई है। ग्राम पंचायतों का साहित्य भी एक ओर पड़ा है। इन सबसे यह प्रतीत होता है कि कांग्रेस के इस दफ्तर में सब अ निष्क्रियता है। कोरा दिखावा मात्र है। ठोस काम नहीं है। इतने में हरिजन नेता रामलाल आते हैं चुनाव पर बातचीत प्रारम्भ होती है। सभी पार्टियां सक्रिय हो गई हैं अतः कांग्रेस के ये (दिखावटी) कार्यकर्ता भी बहुमुखी कार्यक्रम तय करने को मैदान में आते हैं। सोहनलाल पच्चीस हजार का बजट अछूतों के लिए रखते हैं। धुआंधार प्रचार की योजना बनाते हैं। अछूतों का पूरा समर्थन कांग्रेस को मिलता है। भारतभूषण (लोकराज के सम्पादक) से योजना बनाई जाती है। वे अपना अलग लीडर करना चाहते हैं और यह योजना पेश करते हैं कि तैंतीस प्रतिशत प्रचार पर व्यय होना चाहिए। अन्त में स्वागत-सत्कार मार्ग-व्यय पंडाल प्रतिनिधियों और नेताओं के खान-पान की व्यवस्था सवारियों का प्रबन्ध प्रदर्शनी ड्रामा कवि-सम्मेलन और अनेक खर्चों की योजनाएं बनती हैं। चुनावों तक इसी प्रकार के सभा-सम्मेलन कराते रहने का क्रम रहता है। इतने में विरोधी दल "चिनगारी' के सम्पादक कोठारी आ जाते हैं। उधर काशीप्रसाद और किशनाराम सीमेन्ट का परमिट लेने के लिए आ जाते हैं। इन्हें परमिट देना भी जरूरी है क्योंकि ये दोनों ही प्रभावशाली व्यक्ति हैं। सौ सौ वोट हर एक के हाथ में हैं। उन्हें खुश करने के कारण परमिट देने पड़ते हैं। फिर ये लोग पैसे वाले हैं। इनसे अछूत सम्मेलन के लिए चन्दे के रूप में एक खासी रकम ऐंठनी है। यदि इन पूंजीपतियों को खुश न किया जायेगा, तो अछूत सम्मेलन के व्यय का पच्चीस हजार कहां से आयेगा ? बस परमिट दे दिये जाते हैं। "चिनगारी' सम्पादक कोठारी भी गरजते हैं। झगड़े करते हैं। पोल खोल देते हैं। उनका भी मुंह बन्द करना है। एक स्थान पर वे दोनों झींकते हुए यह कह जाते हैं —

"कोठारी— अरे यारो ! झगड़ते क्यों हो ? भारतभूषण जी दूसरों की कलम पर पलते हैं, तो तुम दूसरों के चन्दे पर मौज हो। सेठ साहब अवैध व्यापार से मोटे हैं। मुसद्दीलाल जी झूठे टेण्डर भर कर ठेके हड़पते हैं। ये काशीप्रसाद और किशनाराम जी

कोटा और मालोपसी की तिकड़म में है। बहरहाल तो झूठा सच्चा बना-चुनू कर पीछे है वैसा वैसा ही आप बेचें। इस समय तो बेच खासी श्रो पेट भूखा है। कोई ऐसा परमिट दिला तो ताक किसी किसी दूकानदार को देकर हजार पांच सौ हाथ लग जायें।"

सौ बोरी सीमेण्ट का परमिट हरिजन कालोनी के नाम से कटा था। उसे ही कोठारी को देकर उसका मुँह बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार नाटककार ने दिखाया है कि ये पत्रकार लोग जो अपने को जन-नेता कहते हैं और समाज उद्धार का दम भरते हैं वास्तव में जरायमपेशा लोग हैं। चोर चोर मौसेरे भाई है। वे जनता की गर्दन पर छुरी चलाते हैं शोषण करते हैं तरह तरह के सम्मेलन कराने का स्वांग करते हैं और वास्तविक काम कुछ नहीं करते। यह जनता के प्रति क्या दुर्व्यवहार है, कैसा धोखा है कांग्रेस के आदर्शों के कितना विपरीत है! नाटक के अन्त में एक स्थान पर मुसद्दीलाल कहता है —

'तो एक चेक 'लोकराज" के नाम काट कर कांग्रेस के आदर्शों की रक्षा कर ली जाय।

रामपाल व्यंग्य को नहीं समझ पाता। वह भोलेपन से कह देता है "हां काट लीजिए। प्रस्तुत सम्मेलन का प्रचार कार्य तो प्रारम्भ हो।

इस प्रकार इस नाटक में सर्वत्र जनसेवकों की क्षुद्रता स्वार्थपरता ढोंग, शोषणप्रवृत्ति और "जरायमपेशा वृत्ति" दिखाई गई है। यदि ऐसे थोथे व्यक्ति जनसेवा के नाम पर सार्वजनिक जीवन में घुसे रहेंगे तो जनता का क्या भला हो सकता है?

देवता और मानवर

इस एकांकी में सम्पादक जगत् में होने वाली धांधली का चित्रण है। त्यागी जी "जनज्योति" के सम्पादक हैं। पत्र सौ डेढ़ सौ बिकता है पर उन्होंने झूठ फरेब से दस हजार की बिक्री का प्रामिट सार्टिफिकेट ले रखा है। दस हजार कोइपत्र छपवाने के लिए आप प्रागराज फार्मेसी से पचास रुपये ले लेते हैं फिर उन्हें जामानी की दुकान पर रद्दी में बेच कर पैसे बना लेते हैं उन्हें प्रागराज फार्मेसी को अनेक गुप्त बातें मालूम हैं। पगड़ी को सबके सामने खोलने की डाट दिखाकर रुपया ऐंठते हैं। किशोर नामक एक नवयुवक पत्रकार को सताते हैं। त्यागी जी की धर्मपत्नी उनसे नाना प्रकार से उचित अनुचित तरीकों से आग्रह करती है। अन्त में किशोर भाभी जी के अनुरोध को स्वीकार कर लेता है लेकिन कार्यालय से हर प्रकार का मुक्त विदाय लेना चाहता है।

वह कहता है "मैं घर घर दौड़ कर 'जनक्रान्ति' के ग्राहक बनाऊंगा। पत्र का स्तर ऊंचा करूंगा। उसे जनता की आवाज का माध्यम बनाऊंगा। इससे निश्चित रूप से ग्राहक बढ़ेंगे।" पर स्वामी तो इस क्षेत्र में सांसारिक अनुभवप्राप्त हैं। झूठ, फरेब, धोखेबाजी से उन्हें कोई परहेज नहीं। वे कहते हैं—

"पत्र चलाने की अकल मुझे आई हुई है। इस विषय में कोई मुझे सिखाये यह मेरी समझ में नहीं आता मुझे चाहिए सहकारी जो पत्र के लिए सामग्री जुटा सके। न उग्र न तीखी न धिक्कारोक्तियों दुनियां नहीं चाहती है। नेता अफसर, समाज के कर्णधार कार्यकर्ता कोई भी आलोचना सुनने को तैयार नहीं।

किशोर— तो हमें पत्र बन्द कर देना चाहिए।

स्वामी जी— बन्द कर दो। कौन पूछता है। इसके लिए कोई एक आंसु नहीं गिरायेगा।

किशोर— समाचार-पत्र नाम देकर अभिनन्दन-पत्र निकालना मेरी समझ में नहीं आता।

स्वामी जी— अभिनन्दन ही नहीं अभिवन्दन भी। और यह अपने लिए करना होता है। समाज में जीवित रहने के लिए यह जरूरी है।"

नाटक में अन्त तक पहुंचते पहुंचते स्वामी जी का एक और करिश्मा दिखाया गया है। वे रामु कुम्हार चौधरी केतु और कालु आदि गरीबों का शोषण करते हैं। उनकी ओर से प्रचार करने का लालच देकर चालीस रुपये ऐंठ लेते हैं। उसमें से कुछ रिश्वत दूसरों को बांट देते हैं। किशोर आदर्शवादी युवक है। उसे यह चार सौ बीसी पसन्द नहीं। उसकी आत्मा विद्रोह कर उठती है। पत्रकार जगत् को वह जितना अच्छा और आदर्श पेशा समझता था यह उतना ही गिरा हुआ और निकृष्ट पेशा निकलता है। वह निराश होकर "जनक्रान्ति" का दफ्तर छोड़कर चल देता है।

इस नाटक में भी लेखक ने सार्वजनिक जीवन में पाये जाने वाले मिथ्याडम्बर की पोल खोली है। उसे इस प्रकार धोखा देने वाले नेताओं से घृणा है। घर और बाहर के जीवन में आज जो अन्तर आ गया है, उसे स्पष्ट कर दिया गया है। इन नाटकों के द्वारा लेखक ने वर्ग और धर्मविश्वास सभ्य जगत की धोखेबाजी षड्यंत्र, आदि के विरुद्ध क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की है।

शर्मा जी का व्यय बिल

सार्वजनिक सम्मेलनों में प्रत्येक व्यक्ति अधिक से अधिक रुपया ऐंठना चाहता है। उसे यह परवाह नहीं होती कि इतने भारी भारी व्यय सम्मेलन का अर्थ विभाग सम्हाल भी सकेगा ? कुछ स्वार्थी व्यक्ति व्यय को इतना बढ़ा चढ़ा देते हैं कि सम्मेलन की कमर ही टूट जाती है। लोग ऐसे व्यक्तियों को सफेद हाथी कहते हैं, जो केवल देखने मात्र के हैं और जिन्हें पालने का बड़ा भारी खर्चा आता है पर काम में कुछ नहीं करते। वास्तव में उन्हें "सफेद हाथी" कहना सत्य ही है।

इस नाटक के मुख्य पात्र शर्मा जी सम्मेलन के नए प्रचार मन्त्री हैं। उन्हें ही लेखक ने व्यंग्य का शिकार बनाया है। प्रचार मन्त्री शर्मा जी के यात्रा भत्तें पर विचार विमर्श हो रहा है। नाटक का यह भाग देखिए कितना व्यंग्यपूर्ण है —

"शर्मा जी— (बिल पर दृष्टि डालकर) वर्धा से प्रयाग आने जाने का रेल भाड़ा कुली, टैक्सी होटल व्यय पांच दिन का आठ सौ पच्चीस सवा बारह आना। सौ सौ रुपया रोज भी तो नहीं पड़ा।

चतुर्वेदी जी— तो पास करिये।

शर्मा जी— आप प्रधान मन्त्री हैं यह सम्मेलन के प्रचार-मन्त्री का यात्रा-बिल है। किसी चपरासी या लेखक का नहीं यह मत भूल जाइये।

दीक्षित जी— इतना भारी व्यय सम्मेलन उठा सकेगा ?

शर्मा जी— (व्यंग्य से) व्यय उठायेगा तभी सम्मेलन में बल आयेगा। आप लोग अभी तक छोटी छोटी बातों पर लड़ते रहे हैं।

वाजपेयी जी— इस तरह सम्मेलन कितने दिन चल सकेगा ?

इतने में सड़क पर मोटर का हार्न सुनाई देता है। नए प्रचार मंत्री शर्मा जी प्रवेश करते हैं। उन्हें आश्चर्य है कि मन्त्रियों के यात्रा बिल पर भी विचार होता है। दीक्षित व्यंग्य करते हुए कहते हैं 'आपका व्यय-बिल आपकी सेवाओं के अनुरूप ही है पर सम्मेलन के लिए कुछ भारी होने से विचार आवश्यक हो गया है (हंसते हैं) इसके बाद सब भनकने लग जाते हैं। वातावरण उत्तेजनापूर्ण हो जाता है। शर्मा जी तो भड़भड़ाते हुए निकल जाते हैं। आपस में तू तू मैं मैं चलने लगती है। हंगामा मच जाता है। भभड़कर सब चले जाते हैं। अन्त में वर्मा जी स्थिति को साफ करते हुए कहते हैं :—

"ये कबूतर (अर्थात् सम्मेलन के मन्त्रीगण) सम्मेलन की छतरी छोड़कर और कहीं नहीं जायेंगे। निर्भय और निर्बाध दाना चुगने की यहां जितनी सुविधा है, उतनी कहीं नहीं है। दर्जनों किस्म के मजे लेते हैं ये। अपने सम्बन्धियों को नौकरी दिलाते हैं सम्मेलन की परीक्षाओं में बिना बाधा के अपनी पुस्तकें चलवाते हैं। ये कहां जा सकते हैं भला— ये परकटे कबूतर !"

लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार स्वार्थी नेता सार्वजनिक सम्मेलनों में रुपया नोचते हैं। बढ़ बढ़ कर व्यय करते हैं ऐश आराम करते हैं पुस्तकें छपाते हैं। यह खर्च इतने बढ़ जाते हैं कि सम्मेलन की रीढ़ की हड्डी टूट जाती है। कुछ काम नहीं होता। ऐसे सार्वजनिक कार्यकर्ता जनता के लिए अभिशाप हैं। घातक हैं। जितनी जल्दी हो सके ऐसे छद्मवेशधारी ठगों से बचना चाहिए।

जहाँ न व्यापै राढरि माया

यह एकांकी विदेशगत समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। लेखक ने अपना मन्तव्य प्रकट करने के लिए एक अलौकिक लोक की कल्पना की है जिसमें मृत आत्माएं मिलती हैं और सांसारिक गतिविधियों की आलोचना करती हैं। दिवंगतों के इस लोक में जाति पाँति, पद मर्यादा किसी का भी विचार नहीं है। यह लोक तो काल की परिधि से बंधा हुआ है। लेखक ने इसी एकांकी के साथ देश के विभिन्न दृश्य दिखाये हैं और सामयिक घटनाओं पर व्यंग्य भी किया है। कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं —

"क्षितिज पर भयंकर तूफान सा उठता है। गड़गड़ाहट की आवाज होती है। पहाड़ हिलता है। राणा जी, शाह जी, मीलो जी एक दूसरे को देखते हैं।

राणा जी— क्या हो रहा है मीलो जी ?

शाह जी— प्रलय के जल की तरह यह क्या उत्पात है ? इतनी आवाजें कहां से आ रही हैं ?

मीलो जी— कोई बात नहीं है। अपने देश में राज्य पुनर्गठन के प्रश्न का निर्णय हो रहा है।

राणा जी— तो आजकल प्रश्नों का निर्णय इतने होहल्ले उत्पातों और उपद्रवों के साथ होता है ?

मीलो जी— जनतन्त्र की दुनिया ही निराली है। हम राजाओं और सम्राटों के

युग के प्राणी हैं। जब प्रश्नों का निर्णय सेनायें और तलवारें ही किया करती थी। उस समय भी हो हल्ला और रोना-धोना तो मचता ही था।"

इसी प्रकार चुनाव अभियान पर भी लेखक ने इस प्रकार व्यंग्य बाण कसा है :—

'साहूजी— राज्य पुनर्गठन का सवाल बीच में कहाँ से आ गया ? यह भाषावी राज्यों का कैसा नारा है ?

मीठोजी— चुनाव अभियान का यह भी एक कदम है।

राणाजी— इतनी दूर बैठे हम लोगों के कानों के पर्दे अभी से फटे जा रहे हैं। चुनाव अभियान चालू हो जाने पर न जाने क्या होगा ?

मीठोजी— जनतन्त्र के रथ को चलाने का अधिकार सत्ता ग्रहण एक बहुत बड़ा प्रलोभन है। उसके लिए कुछ भी क्यों न किया जाय थोड़ा है। आज भारत का हर नागरिक राजा है। वह अपना मतामत रखने के लिए स्वतन्त्र है। उसकी उपयोगिता करने के लिए वह बड़े से बड़े शक्तिशाली एम्प्लीफायर का प्रयोग कर सकता है।"

अपने देश के साथ नाटककार ने विश्व के रंगमंच पर होने वाले घटना चक्र पर भी व्यंग्य किए हैं और अपनी तीखी आलोचना का शिकार बनाया है। एकांकी के इस प्रसंग में विश्व की राजनीति की मौजूदा हालत की कटु आलोचना है —

(एक भयानक विस्फोट से रंगमंच कांपता है।)

साहूजी— इंगलैण्ड और फ्रांस की हवाई सेना ने स्वेज पर बम वर्षा प्रारंभ की है।

मीठोजी— तो तीसरे विश्व युद्ध के आसार बन रहे हैं। हा, ईश्वर न जाने क्या होने वाला है ?

(दूसरी दिशा से घरघराहट, धमाके और चीख पुकार की आवाजें)

राणाजी— लो उधर भी कोई नया तूफान उठ रहा है।

साहूजी— कुछ नहीं कुछ नहीं। रूसी टैंक और सेनाएं अपना काम कर रहे हैं। वे हंगरी के विद्रोह को दबाने के शुभ कार्य में लग्न हैं।

राणाजी— हंगरी की इच्छा को रूसी क्यों दबा रहे हैं भला ?

साहूजी— हंगरी एक छोटा देश है। रूस महान् है। शक्तिशाली है। साम्यवादी रूस नहीं चाहता कि उसके पड़ोसी छोटे छोटे देश शासन में अपनी स्वतन्त्र इच्छा का प्रयोग करें।

राणाजी— क्यों भला ?

माहूजी— कमज़ोर लोगों की कब स्वतन्त्रता रही है ?

मीकोजी— कमज़ोर होना पाप है ?

माहूजी— इसमें क्या संदेह । सब समय कमज़ोरों को दबाया गया है । उन्हें बोलने नहीं दिया गया है ।

रमलाजी— परन्तु साहूजी, आज तो आदमी सभ्य होने का गर्व करता है । उसके अधिकारों को मानने के लिए घोषणा पत्र बने हैं । संयुक्तराष्ट्र संघ जैसी विश्वव्यापी संस्थाएं लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए काम कर रही हैं ।

माहूजी— (उत्तर में जोरों से हंसते हैं ।) दुर्बलों की स्वतन्त्रता का मूल्य तो कभी नहीं था । आज भी नहीं है ।"

नाटककार ने आज की दूषित राजनीति पर व्यंग्य किया है । हंगरी की राजधानी को रूसी सेनाएं और टैंक घेर लेते हैं । गली गली में युद्ध होता है । इस सम्बन्ध का एक उदाहरण लीजिए :—

"मीकोजी— तो हंगरी का जनसंहार रोका नहीं जा सकेगा ? राष्ट्र संघ कुछ नहीं कर सकेगा ?

माहूजी— जब तक राष्ट्र संघ न्याय और कानून की बारीकियों पर विवाद करता रहेगा तब तक रूस देशभक्तों को कुचल डालेगा ।

अखबार— रूसने भागी सरकार के सदस्यों को बन्दी बना लिया है । साम्यवादी कदार रो को पिछले दिनों पदच्युत कर दिया था बरतरफ कर दिया है । उसी के नाम पर ध्वंस कार्य चल रहा है ।

माहूजी— अभी ऐलान किया जा रहा है कि रूसी हंगरी की जनता के बुलाने पर आये हैं । प्रतिक्रियावादी लुटेरों से उसे मुक्त कराते ही उनका काम समाप्त हो जायेगा"

मीकोजी— छि: छि: आज की राजनीति । छि छि आज की कूटनीतिक भाषा । क्या सचमुच सभ्य युग में ये सारी विडंबनाएं चल रही हैं ?"

यह एकांकी आज के राजनीतिक युग की अनेक विद्रूपताएं छल कपट, कूटयोजनाएं छोटे राष्ट्रों का बड़ों द्वारा शोषण, तानाशाही और विविध अत्याचारों का चित्र उपस्थित कर देता है । लेखक ने बड़े नाटकीय कौशल से राजनीतिक जगत् की कटु आलोचना प्रस्तुत की है ।

यमराज भारती

इस एकांकी में भारती जी नामक 'यमदूत' पत्र के सम्पादक का व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। कुमुद एक आदर्शवादी नया सह-सम्पादक है जो भारती जी के निम्न कोटि के हथकण्डों से अपरिचित है। भारती जी के हाथ में तुरुपमन्त्री हैं चुनाव आ रहा है। मन्त्रियों का यशोगान कर वे पत्र को चलाने की योजनाएं बनाते हैं। 'यमदूत' की साम्यवादियों से साठगांठ है, सरकारी विकास योजनाओं, ग्रामोत्थान निधियों समाजविकास के अनुदान बस-बोर्ड के धन में उनका हिस्सा है। चुनावों में किसी भी उम्मीदवार का प्रचार कर वे पेट भरते हैं और साल भर के चढ़े हुए कर्ज निकालते हैं। अनेक साधारण कोटि के व्यक्तियों के धन पर कर्ज चढ़े हुए हैं, पर वे अपनी धूर्तता और बेईमानी से सब को बुद्धू बनाते हैं। लोगों को उनकी असलियत का पता ही नहीं लगने पाता। वे तथाकथित नेताओं को लूटते भी हैं और धन पर कुमती भी झाड़ते हैं। नए लेखकों से उनकी रचनाएं छापने के लिए अग्रिम पैसा लेते हैं। आदर्शवादी कुमुद जी इस विषैले वातावरण में नहीं रह पाते। अचल जी नामक एक कवि जो भारती जी की तरह धूर्त हैं उन्हें निकालकर स्वयं सह-सम्पादक की गद्दी पर बैठते हैं।

इस एकांकी में लेखक ने कई स्थानों पर दिखावटी और धोखेबाज पत्रकारों की कलई खोली है। व्यंग्य बाणों से नाटक परिपूर्ण है। भारती जी ऐसे ही लुब्ध पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी नीति अपना काम साम दाम दण्ड भेद जैसे भी संभव हो वैसे ही निकालने की है। उसमें नैतिकता ताक पर रख दी गई है। जो जिस तरह झांसे में आ गया, उसे उसी तरह धोखा दिया गया है। भारती जी के कुछ सफलता सूत्र (यदि हम उन्हें उचित समझें ?) इस प्रकार हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

"बरसातों का भादपद तो हर साल आ जाता है परन्तु पत्रकारों का भाद्रपद (चुनाव के मौके पर) कहीं पांच साल बाद मीलता है।

एक कथोपकथन लीजिए :—

भारती जी— "यमदूत' (उनके पत्र का नाम) को निकाला रहना है। आप लोगों के पुलपान में बरमैद भोजन की भी व्यवस्था नहीं है। तब वहीं साठगांठ किए बिना काम कैसे चलेगा आप ही बताइये ?

त्रिवेदी जी— हमारे साथ रहो। विकास योजनाओं में हमारा साथ दो। चुनावों

में हमारा प्रचार करो। यह देश सेवा का कार्य है। यह जनता जनार्दन का काम है।

भारती जी— आप लोग देश सेवा करके ही इतने मोटे हो रहे हैं।

त्रिवेदी जी— और आप तो देशद्रोह कर के भी कम मोटे नहीं हैं।

ऐसा कहकर वे एक अट्टहास करते हैं।

एक स्थान पर भारती जी कहते हैं :—

"हर सेठ आज अपने पीछे एक अखबार लेकर चलना चाहता है। वह समझता है कि उसकी आड़ में उसका कारबार चलता रहेगा। उसे यह पता नहीं कि भारतवर्ष जैसे गरीब देश की जनता में कोई बुद्धि नहीं होती। उसमें दबे तथ्यों को लोग झूठा प्रचार समझते हैं।"

भारती जी— 'लोगों को असलियत का पता ही नहीं चलने पाता। खद्दर पहन पहन कर ये देश भक्तों में शामिल हो गये हैं। सरकारी अनुदान और सहायता की बड़ी बड़ी राशियाँ इनके ही हाथों से खर्च होती हैं। इनके ही अड्डे सब जगह छाये हैं। इनके अखबारों में धुआँधार प्रचार छपता है।

कुमुद जी— सरकार इनके प्रचार को जनता की आवाज मानने के लिए विवश होती है।

भारती जी— वही तो। इन्होंने अनेक प्रकार से अपना जाल फैला रखा है। धर्म, संस्कृति कला, साहित्य और समाज के नाम पर इनके कारबार की इमारत खड़ी है। ऐसा कौन है जो इनसे धोखा नहीं खाता " ।"

नाटक के अन्त में आदर्शवाद के पुजारी "अग्रदूत' पत्र से त्यागपत्र दे देते हैं। उन्हें पत्रकारी में फैले हुए भ्रष्टाचार कतई पसंद नहीं हैं। वे खुले स्पष्टवादी व्यक्ति हैं। पत्रकारिता में सच्चाई और ईमानदारी का उच्च आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। इसके विपरीत चंचल जी, जो एक प्रगतिशील कवि हैं, 'अग्रदूत के सम्पादक होना स्वीकार करते हैं। ये भी चार सौ बीस आदमी हैं। उनकी पॉलिसी देखिए :—

"चंचल जी— मैं चलाऊंगा 'अग्रदूत'। किसी को एक पैसा पारिश्रमिक न दूंगा। नये लेखकों की रचनाएं छापूंगा, उनसे पैसा लूंगा। मंत्रियों के चित्र छापूंगा। उनके प्रोग्राम छापूंगा। नेताओं के पुल बाधूंगा। वह सब तरीके काम मा जिससे "अग्रदूत" का पेट भरे और मुझे चाय बिस्कुट खाने को मिलें। तुम (कुमुद जी) निकल जाओ अमलदारी कुर्सी मुझे और भारती जी को मिलकर सम्भालने दो। (कुमुद जी को

देता है।)

कुमुदनी— मैं तो जा ही रहा हूं। इस नरक में मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता।"

इस प्रकार इस नाटक में पत्रकार जगत् का एक व्यंग्यात्मक यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने बड़े कटु प्रहार किए हैं।

भूचाल

इस नाटक में एक सार्वजनिक महिला संस्था का खाका खींचा गया है। कार्यालय के प्रवेश द्वार पर "महिला सदन" का पट्ट लगा हुआ है पर यह किसी को मालूम नहीं कि उसमें क्या होता है? उसकी कार्यकर्त्ताओं का कैसा चरित्र और व्यवहार है? उनका कार्यक्रम, योजनाएं और प्रणाली क्या क्या हैं? वास्तव में यह महिला सदन एक प्रकार की देखने मात्र की संस्था है जिसमें दिखावा बहुत अधिक है और काम धाम भी नहीं होता। सांस्कृतिक कार्यक्रम के नाम पर नृत्य संगीत इत्यादि की भरमार होती है। लेखक ने इसमें दिखाया है कि ऐसी संस्थाओं में सार्वजनिक रुपये का दुरुपयोग होता है और हिसाब में भी बड़ा गोलमाल रहता है। महिला सदन के बाबू भी प्रायः चरित्रहीन पाये जाते हैं। महिला केन्द्रों के कर्मचारियों को वेतन कुछ मिलता है, और हस्ताक्षर बहुत बड़ी रकम पर कराये जाते हैं। चन्दे की रकमों और रसीदों में मेल नहीं होता। हिसाब किताब की गोलमाल को ढकने के लिए अन्य अनुचित और अनैतिक तरीके काम में लाये जाते हैं।

इस नाटक में लेखक ने अनेक सामाजिक विषमताओं और विद्रूपताओं पर व्यंग्य किया है जैसे अनमेल विवाह, आधुनिक शिक्षिताओं की अतिशय शृंगारप्रियता अमीर अफसरों की जवान पत्नियों का विलासी जीवन नृत्यसंगीत आदि की बढ़ती हुई सामाजिक व्याधि इत्यादि। दो एक उदाहरण लीजिए:—

ललीता साहब की पत्नी उनकी दूसरी विवाहिता है। दस बजे कार उन्हें तो दफ्तर में छोड़ देती है। फिर वे आजाद हैं कि कहीं जायें कुछ भी करें। तितली बनी घड़ी शृंगार प्रधान उपन्यास पढ़ती रहें या महिला-सदन के पांच केन्द्रों में नृत्य-संगीत की कक्षाओं का निरीक्षण करती रहें।

श्रीमती ललीता कहती हैं— उनकी (पतिदेव की) चिन्ता मत करो बहिन जी। वे बड़े भोले हैं। कभी रोकते नहीं। पूछने पर हंसकर कह देते हैं मैं

जानता हूं 'पहली चौक दूसरी घोड़ी जितना नाचे उतना थोड़ी।"

इस पर पुणविदी का उत्तर सुनिये—

पुणविदी— तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। कहां तो बस

श्रीमती सतीजा— (खिलखिलाकर) कहो कहो बहिन जी तुम्हें मेरी कसम।

पुणविदी— मैं तो कहती हूं पहली औरत होना पाप है। घर की जूती से अधिक उसकी कीमत नहीं होती। गृहस्थी के कोल्हू में बैल की तरह जुते रह कर भी उसे क्या मिलता है ?

श्रीमती सतीजा— तब तो मैं अच्छी हूं।

पुणविदी— लाज शर्म।

श्रीमती सतीजा— तेरी बहन मुझ से भी अधिक ?

पुणविदी— अरे हां वह तीसरी है कि चौथी ?

श्रीमती सतीजा— शायद चौथी।

पुणविदी— तभी तो कोयल की तरह कूकती रहती है। मयूरी की तरह नाचती फिरती है। कोई हसरतें बाकी नहीं कोई इच्छाएं शेष नहीं। जो चाहती है कर गुजरती है। कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं।

शीलवन्ती वेश्या महिला सदन में अपने उद्धार के लिए आती है। पुणविदी से वह कहती है कि उनका पेशा आजकल चलता नहीं। कारण ?

"शीलवन्ती— हमारा पेशा छिन गया है। आज घर घर में फैशन की तड़क भड़क और नृत्य-गीत पहुंच गया है। जिसके लिए लोग हमारे पास आते थे वह सब उन्हें घर में ही मिल जाता है समाज ने ही हमें बनाया है, वही हमें उजाड़ रहा है। यही शिकायत लेकर मैं आपके पास आई हूं।

पुणविदी— आखिर तुम क्या चाहती हो ?

शीलवन्ती— यदि यह काम बुरा है तो घर की बहू बेटियों को उससे बचाओ। उन्हें तितलियां न बनने दो। उन्हें फैशन की पुतलियां बनने से रोको। नृत्य गीत की मादक वारुणी पिला कर उन्हें मदमिस्त न करो। वेश्या के नाच को उठा दिया गया है, पर घर की बहू बेटियों को नचाने लगे। इससे हम मर रही हैं।'

पुणविदी का निम्न वक्तव्य हमारे आधुनिक समाज के एक पहलू पर सच्ची आलोचना है —

"इधर हमारे घरेलू जीवन में साज शृंगार अनावश्यक रूप से बढ़ गया है। आज कोई भी आयोजन बहू-बेटियों को नचाये बिना सम्पन्न नहीं होता। अतिथि आये तो नाच अधिकारी आये तो नाच नेता आये तो नाच। हमारी संस्कृति जैसे नाच गानों की ही संस्कृति हो। बालिकाएं नाचती हैं किशोरियां नाचती हैं बालाएं नाचती हैं। शालाओं आश्रमों और संस्थाओं में सभी जगह तबला सारंगी ढोलक बजते हैं। नृत्य संगीत की कक्षाएं धड़ाधड़ खुल रही हैं। नगर नगर में सिनेमाघर हो गए हैं— यह भयानक महामारी है हमारे युवकों की प्रतिष्ठा इसी बात में होती है कि वे लड़कियों को कितना घेरते हैं"

महिला सदन में रहने वाले बाबू पदमचंद का चरित्र नीचे लिखे अवतरण से मालूम किया जा सकता है —

'चम्पादेवी — बाबू, तुम देखने में भोले लगते हो पर हो बड़े जालिम।

पदमचंद— मैंने क्या जुल्म किया है ?

चम्पादेवी— भूल गये कितनी सख्त चिकोटी की थी अभी ?

पदमचंद— ओह यह तो प्यार का प्रदर्शन था।

चम्पादेवी— प्यार ऐसे जताया जाता है ?

पदमचंद— तुम्हें गंवारों के प्यार का अनुभव है। वे सीधा सादा लट्ठमार प्यार करते हैं। हम बाबुओं का प्यार भाषा की कलाबाजी से और भी मीठा हो जाता है समझीं ?

(चम्पादेवी के गाल में उंगली गड़ाता है)

चम्पादेवी— तुम महिला सदन के बाबू रहने लायक नहीं हो। तुम पूरे शोहदे हो।

पदमचंद— तुम कुछ भी कहो। आज से मुझे तुम्हारी अध्यक्षता के गाल में भी उंगली गड़ाने का अधिकार मिल गया है।'

हिसाब निरीक्षकों को प्रसन्न करने के लिए पुष्पदेवी अपनी मान प्रतिष्ठा तक की कोई परवाह नहीं करती। अपनी १४ १५ वर्ष की युवती कन्या को नृत्य के लिए तैयार करती है और जब वह लज्जा के कारण नहीं नाचती तो उसे झिड़कते हुए ऐसे कटु शब्द कह डालती है, जो आज की शिक्षित नारी के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग्य है :—

विद्याधरी— (कन्या अपनी माता से) तो तुम जाकर नाचो न अम्मी। रिझाओ उन्हें।

पुष्पलिका— (आवेश से कांपती हुई) चुप्पी कहीं की। लोफर का जी बहलाने में तेरा मान नहीं घटता। शर्म तेरी शर्म देखती हूं।"

यह कहकर वह अपनी पुत्री को धक्का देती है।

इस प्रकार यह नाटक आज के सभ्य समाज का दर्पण है, जिसमें हम आधुनिक शिक्षित समाज की विद्रूपताओं और कमजोरियों के सच्चे चित्र पाते हैं। प्रगति का पौधा बेहद नाजुक है। उसके इर्द गिर्द अनेक खतरनाक बीज कांटे, घास फूस और जहरीली वस्तुएं मौजूद हैं। समाज की व्यवस्था और क्रम को बदलते हुए हमें इन बुराइयों से सदा सावधान रहना चाहिए। आज जो संस्थाएं चल रही हैं उनके पर्दे के पीछे क्या क्या होता है, इसका हमें सदा सर्वदा ध्यान रखना चाहिए। बनावटीपन, भ्रष्टाचार, खोखी कृत्रिमता और झूठा आडम्बर किसी भी समाज की बुनियादों को ध्वस्त करने के लिए काफी है। नई रोशनी में जो खतरनाक विषैले फोड़े उत्पन्न हो गए हैं, जो समाज के समूचे शरीर को सड़ा देने के लिए काफी हैं जल्दी से जल्दी दूर होने चाहिए। अति आधुनिक समाज में जो मिथ्या बातें पैदा हो गई हैं लेखक ने उनकी ओर से हमें सावधान कर दिया है। जिन व्यक्तियों ने ढोंग द्वारा समाज का वातावरण कुत्सित कर दिया है, उन्हें निकाल देना चाहिए।

आज का कवि

इस एकांकी में कविसम्मेलन में पधारनेवाले नाना वृत्तियों तथा आदतों के कवियों के व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। कवि लोगों की आदतें, स्वभाव इनकी पसन्दगी आचार व्यवहार, रहनसहन अजीब होता है यह कविसम्मेलन के संयोजक के लिए एक सिर दर्द बन जाता है। कवि लोग अनर्गल बकते हैं अजीब मांगें पेश करते हैं। जिसके सिर कवि-सम्मेलन को ओरगनाइज् करने का काम पड़ जाता है, उस पर तो मानों एक आफत सी आ जाती है। कवियों और पंडितों का जमघट दुर्भाग्य से जिसके ऊपर पड़ जाता है, वह पछताता है। ये लोग अपने ग्रन्थों में ही अच्छे लगते हैं, व्यावहारिक जीवन में नहीं, पारिश्रमिक पुरस्कार, भेंट और मार्ग व्यय के रूप में भी कवि लोग बड़ी बड़ी मांगें पेश करते हैं। सम्मेलनों की अध्यक्षता के विषय को लेकर भी वे कभी कभी बड़े विरोध खड़े कर देते हैं।

मक्कड़ कवि के आदेश सुनिये —

'मक्कड़ कवि— दो मंगाओ छटांक भर गांजा और जरा देर जमाएं। कवि

लक्कड़ के आगे तुम्हारे सारे कवि तुक्कड़ हैं। हा हा हा! हम किसी की भी अध्यक्षता में कविता सुनाने को तैयार हैं। कहो तो अभी सुनायें। आशु कवि हैं हम! कहो तो सुनायें सारी रात और दिन इसी तरह इसी गति से, बिना पुरस्कार, बिना पारिश्रमिक, बिना भेंट के? बस भांग और मलाई की आराधना में अपनी सरस्वती प्रसन्न है। इसके अतिरिक्त लक्कड़ को और कुछ भी नहीं चाहिए।

ढंपू कवि—(गला फाड़कर) चुप करो। सामन्ती-दरबार का चाटुकार कवि। मालूम पड़ता है मार्क्सवाद नहीं पढ़ा है इसने। नये जमाने के प्रगतिशील साहित्य से सर्वथा अनजान है। क्या इस तरह के कवियों को मंच पर स्थान मिलेगा?

कंकाल जी— क्या सबका ठेका क्यों ले रहे हैं? लोक साहित्य और लोक संस्कृति को अपने ढंग में ढलने क्यों नहीं देते? इन्हें वादों की स्याही से क्यों काला करते हो?

ढंपू कवि— अच्छा भंगाराम यहाँ आओ बैठो कितनी ही विद्वत्ता छाँटो पर सभापतित्व तुम्हारे हाथ नहीं आने का।

कंकाल जी— यह तुम्हें भी नसीब नहीं होने का। बूढ़े अमीनर के यहाँ कमरा ले आये हो। वे भूल गये होंगे। जाओ जाकर ले लो। फिर संयोजक जी के नाम बनवा देना। सतर्क रहना कवित्व और व्यक्तित्व किसी का भी शोषण न होने पावे।

ढंपू कवि— (अपने अनुयायियों से) साथियो इस प्रतिक्रियावादी का मुंह बन्द करना होगा।'

दो तीन नवयुवक कवि तत्काल उठकर कंकाल जी पर झपटते हैं और उनका गला दबाते हैं। लक्कड़ कवि ताल ठोंकता है और विद्यामंदिर के मन्त्री सोमेश्वर, जो एक अनुभवी साहित्यकार हैं झंडा तान कर कहते हैं 'छोड़ो छोड़ो यह विद्यामंदिर का साहित्य-कक्ष है। यहाँ बल प्रयोग सर्वथा वर्जित है।' चारों ओर हंगामा मच जाता है।

इस नाटक में कवियों का व्यक्तित्व और काव्य जगत् में काम करनेवालों की छीछालेदर की गई है। लेखक ने दिखाया है कि उनकी आदतें कैसी बेहूदा होती हैं और वे कैसी अनर्गल बातें किया करते हैं। सीधी तरह न खाते पीते हैं न व्यवहार करते हैं। कोई मांस मछली की मांग करता है कोई विजया तो कोई बारुणी की कोई चाय काफी मलाई भांग इत्यादि की। एक ओर परास्त कवि को सिगरेट और चाँदी के लिए हाथ

खोखा मचा रहे हैं तो दूसरी ओर कवि कंकाल की मांस मछली के बिना एक कौर भी तोड़ने को तैयार नहीं है। हमारे कवियों ने शिव जी की बरात को भी मात कर दिया है। इसी पर यह व्यंग्य है।

सक्सेना जी की आधारभूत मान्यताएं

समाज-सुधार के क्षेत्र में सक्सेना जी उन तत्वों को दूर करना चाहते हैं, जो समाज को घुन की तरह खा रहे हैं और जिससे समाज का विकास अवरुद्ध सा हो गया है। ये समाज के विद्रूप के एकांकी हैं जिनके कुछ पात्रों में हम अपने इर्दगिर्द चलते फिरते वाले व्यक्तियों के प्रतिबिम्ब देखते हैं। ये लोग मुंह पर बनावटी चेहरे लगाये हुए हैं और समाज को धोखा दे रहे हैं। सार्वजनिक जीवन में ऐसे उपदेशकारी व्यक्तियों की कमी नहीं है जो चुपचाप समाज विरोधी प्रवृत्तियों में लगे हुए जनता का शोषण कर रहे हैं। हमारी सामाजिक संस्थाएं मिथ्या प्रदर्शन में लगी हुई हैं। वे दिखाती बहुत हैं, काम बहुत कम करती हैं। नई परिस्थितियों में यदि हम सच्चाई और ईमानदारी से काम करना चाहते हैं, तो हमें समाज के इन दूषित कीटाणुओं को निकालना होगा। नई संस्थाओं और स्वस्थ सार्वजनिक जीवन के तथा कार्यकर्ताओं के लिए आवश्यक यह है कि व्यक्ति जनता के प्रति अपने दम को बढ़ावें और सच्चाई ईमानदारी, और सच्ची सेवा को सर्वोपरि समझे। समाज की उन्नति को प्रथम महत्व दे। धीरे धीरे अपने बदलते हुए दृष्टिकोण को अपने व्यवहार में सच्चाई के साथ समाविष्ट करे। अति आधुनिकता से बचे और पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण न करे। आधुनिक सभ्यता में सब कुछ अच्छा ही अच्छा नहीं है। हमें उन त्रुटियों और खराबियों को तुरन्त त्याग देना चाहिए इसी में हमारे समाज की भलाई है। विनाश के इन जहरीले कीटाणुओं को जल्दी से जल्दी समाज-शरीर में से निकाल डालना चाहिए। भौतिक मूल्यों के साथ नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय होना नितान्त आवश्यक है।

नए एकांकी सृष्टि का प्रश्न

इस सामाजिक एकांकी में लेखक ने दिखाया है कि आज के समाज में मनुष्य विविध बन्धनों में जकड़ा हुआ है। आज के सामाजिक जीवन में हम पर घर आचरण सभ्यता, संस्थाओं, नियमों अनुशासन और समाज का नियन्त्रण है। कभी कभी मनुष्य इन बन्धनों से तिलमिला उठता है उसकी आत्मा इनसे टूटने को बुरी तरह छटपटा

तड़पती है। उसे मुक्ति की उत्कट चाह है और वह इसी के लिए सतत प्रयत्नशील है। इस सर्वतोमुखी आत्मा की भावना को इस एकांकी में स्पष्ट किया गया है।

कथानक सरल सा है। कैलाश घर का अविवाहित मालिक है उसके घर में बेला नामक दासी रहती है जिसका दुनिया में कोई नहीं है। कैलाश के घर की देखभाल का कार्य उसकी सम्बन्धिनी एक बूढ़ा दादी करती है। बेला उस परिवार के बन्धनों से परेशान है क्योंकि कोई उसे प्यार दुलार नहीं करता। उसकी आत्म-प्रतिष्ठा पर पग पग पर ठेस पहुँचती है। वह परिवार से बच निकलने के लिए आतुर है। संयोग से बेतुके बेढ़ाप, फटे–पुराने बेरौनक कपड़े पहिने एक अजनबी आकर द्वार की कुण्डी खटखटाता है। बेला काम छोड़कर आती है और कुण्डी खोल देती है। आगन्तुक उसे अपनी बातचीत से प्रभावित करता है सहानुभूति दिखाता है मुक्ति की सम्भावनाएं प्रस्तुत करता है। फलस्वरूप वह घर से भाग निकलती है और इस प्रकार मुक्ति का दर्शन करती है।

आगन्तुक एक प्रकार का प्रतीक (Symbol) है जो मुक्ति का दर्शन कराता है। वह मुक्ति दिलाने का एक साधन है। जिन्दगी में कभी कभी ऐसे अवसर आते हैं जिनसे आजादी प्राप्त होने में बड़ी सहायता मिलती है।

इस एकांकी का सबसे भावपूर्ण स्थल वह है जहां कैलाश और उसकी बूढ़ी दादी उसे रोकते हैं परन्तु वह उनसे रुकती नहीं मुक्त जीवन की ओर अग्रसर होती ही जाती है। मानो मनुष्य की आत्मा समस्त सांसारिक बन्धनों का परित्याग कर मुक्ति की ओर बढ़ रही हो। इस एकांकी में अन्त तक पहुँचते पहुँचते बड़ा सुन्दर परिवर्तन आता है जो अप्रत्याशित है। देखिए—

"दादी— तुम्हारी दादी मां नाटक करना नहीं जानती है बेटा।

कैलाश—तो साफ साफ क्यों नहीं बोलती ?

दादी— क्या बोलूं ?

बेला— (अचानक) कह दो न दादी।

दादी— क्या कह दूं ? कह दूं कि निकल जा ?

बेला— कह दो हां कह दो।

दादी— तब तुझे जाना पड़ेगा। कहां जायगी ?

बेला— उस उन्मुक्त संगीत की खोज में जो चुपचाप बसन्त आते ही कोयल के कंठ से फूट पड़ता है। उसने मुझे वचन दिया है। वह मुझे ले जायगा।

कैलाश— वह कौन ?

बेला— आगन्तुक ? ओह कितना अच्छा है वह। वह बांधता नहीं वह मुक्ति देता है। आजादी देता है।

रानी— कैलाश।

कैलाश— रानी।

बेला— मैं जा रही हूँ। नदी नाले जंगल पहाड़ सागर, मरुस्थल सभी मुझे बुला रहे हैं। वह सब जगह जाता है। सब जगह उसका स्वागत होता है।

कैलाश— तू नहीं जा सकती। कोई बहकाकर तुझे नहीं ले जा सकता।

बेला— मैं जाऊंगी। मैं बन्धन में नहीं रह सकती। घर का बन्धन आचरण का बन्धन सभ्यता का बन्धन संस्थाओं का बन्धन, नियमों का बन्धन अनुशासन का बन्धन समाज का बन्धन — मैं नहीं रह सकती मैं नहीं सह सकती। मैं अपने समय का सदुपयोग करूंगी। अपनी सत्रहवीं वर्षगांठ के उपलक्ष में उस आजादी का वरण करूंगी।

(एक एक कर सारी चीजें फेंकती है)

रानी— (भौचक्की सी देखती है) तूफान आया यह कैसा तूफान है ?

कैलाश— बेला बता (उच्चतर स्वर बढ़ता जाता है) खबरदार, यह सब नहीं चल सकता। मैं तुझे इस घर की रानी बनाऊंगा, तेरे साथ ब्याह रचाऊंगा। (बेला की ओर बढ़ता है)

बेला— नहीं मेरा उत्तर है नहीं। मैं तुम्हारे पिंजड़े से घृणा करती हूँ। मैं तुम्हारे घर को लात मारती हूँ।

और यह कहकर वह पांव से मेज को ठुकरा देती है। लैंप सहित मेज गिरती है। घर में अन्धेरा छा जाता है। बेला अन्धेरे में द्वार से निकल जाती है मानो मनुष्य की आत्मा तमाम सांसारिक बन्धनों को तोड़ती हुई उन्मुक्त हो जाती है। जैसे कोई भी पार्थिव प्रलोभन रोक नहीं पाता। इस प्रकार लेखक ने प्रतीक रूप में आत्मा का द्वार स्पष्ट किया है।

तो है वो एक नई जमीन और आयेगी। हम फिर उसमें हल चलायेंगे, सत्ताइस साल के बाद। पर हमारी टेक का क्या होगा? वह तो पूरी नहीं होगी। वह तो सच्चा-स्वराज्य आने पर ही पूरी होनेवाली थी।

कान्हा जी— (स्वगत) और तब"

पाँचा काका— और तब मेरी ओर से अपने मित्रों स्नेहियों नेताओं और बापू को लिखा, जब प्रजा पुलिस की सहायता लिए बिना रहना सीख जायेगी उसी दिन मेरे स्वराज्य की टेक पूरी होगी। फौज की संगीनों के आतंक बिना स्वेच्छा से जब हम अपना कर्त्तव्य निभायेंगे, तो मानो स्वराज्य आ गया। बापू जिस दिन साबरमती-आश्रम लौट आयेंगे उसी दिन मैं समझूँ था कि स्वराज्य आ गया। जब तक यह नहीं होता तब तक कैसे मानूँ कि स्वराज्य आ गया।"

लेखक ने आज के राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन की कमजोरियों पर उँगली रख दी है। वास्तव में हम आजाद तो हुए किन्तु हममें स्वतन्त्र देशों में पाई जानेवाली जिम्मेदारी और देश व समाज के प्रति कर्त्तव्य भावना नहीं आई है। हम तनिक तनिक सी बातों पर लड़ते और सिर फोड़ते हैं। साम्प्रदायिक जोश में भाई भाई को मारते हैं। दमन के लिए हमें आज भी दासता के युग जैसी फौज के आतंक की जरूरत है। सच्चा स्वराज्य तभी आयेगा जब हमारे देशवासी कर्त्तव्यभावना को समझकर साम्प्रदायिक तथा पारस्परिक भेदभाव से ऊँचे उठेंगे। आज हम कहाँ हैं? 'हम' से हमारा तात्पर्य हमारा देश, हमारी राजनीति हमारी सामाजिक मनोदशा हमारा वैयक्तिक व्यवहार। यदि हम अपने समाज की ओर गहरी दृष्टि डालें तो हमें यह देख कर चिन्ता होगी कि हमें जहाँ होना चाहिए था हम वहाँ नहीं हैं। ऊँचे नहीं उठ पाये हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् जैसे हमारी कर्त्तव्यभावना और विकास की गति शिथिल हो गई है। स्वराज्य प्राप्ति तो हमारा एक साधन मात्र था। क्या हम नहीं कहते थे कि इस साधन को प्राप्त करके हम इस पुण्यभूमि पर एक नया समाज एक नई आर्थिक व्यवस्था दुनिया में एक नया आदर्श उपस्थित करेंगे जिससे मानवता पुष्पित एवं फलित होगी? हमें अब अपनी स्थिति अविलम्ब सुधारनी चाहिए— यही इस एकांकी की प्रेरणा है।

मामू की हार

यह एकांकी बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। मम्मू सीता का दो साल का पोता

गई अधिक प्यार दुलार से बिगड़ गया है। उसका बापू उसे सुधारने के लिए डंडे के बल पर सीधा करने वाला शिक्षक बापू तय करता है। बापू के कोड़े से सभी घरवाले भयभीत दीखते हैं पर बम्मू अकड़ के साथ आता है और एक उड़ती-सी दृष्टि बापू पर फेंकता है। सभी उसे डराना चाहते हैं पर बम्मू कहता है, "कोड़ा मेरा क्या कर सकता है? मन को तो नहीं खींच सकता? बेकार है ऐसा कोड़ा। मैं उससे नहीं डरता।' और बम्मू बापू के कोड़े से खेलने लगता है उसे मरोड़ता है। इतने में ही दादी तूफान की तरह आती है और सबको ताड़ना करती है, "छोड़ो मेरे बच्चे को। मेरे लाल को छोड़ो। खबरदार जो मेरे लाल को हाथ लगाया। कोड़ा मैं चूल्हे में झोंकती हूं।" बापू निराश हो जाता है और कहता है कि जब सभी बच्चे को बिगाड़ने पर तुले हुए हैं तो मैं अकेला क्या कर सकता हूं।

लेखक ने बापू के मुख से संकेत कराया है कि बच्चे को अधिक नहीं दबाना चाहिए, क्योंकि इससे उसका स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता। बाल मनोविज्ञान के तत्व को बड़े प्रभावोत्पादक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

माँ

नारी मनोविज्ञान पर आधारित इस एकांकी में मां के चरित्र तथा गुप्त मनोभावनाओं को प्रकट किया गया है। इसमें एक युवती नारी के प्रेम वासना और वात्सल्य का संघर्ष चित्रित किया गया है। रामा अपने पति तथा दो वर्ष के पुत्र रघुवीर को छोड़कर अपने प्रेमी द्वारका के साथ भाग जाती है, तब से वह अपने पहले सभी सम्बन्धियों को त्याग चुकी है। अब वह अपने प्रेमी द्वारका की हो चुकी है और द्वारका उसका। लड़ाई झगड़ा मारपीट, हंसी मजाक, लाड़ प्यार जो कुछ भी होता है उसके वे दोनों बराबर के साझीदार हैं। उनके बीच में अब कोई तीसरा नहीं आता क्योंकि अपने पूर्व पति तथा उसके सम्बन्धियों से अब उसका किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। एक दिन रामा का पहले पति से उत्पन्न पुत्र द्वारका उसे वापस लेने आता है। रामा चकित सी उसको खोलती है और रघुवीर को देखकर भय से कांप उठती है। लेखक ने मां और पुत्र में जो कथोपकथन कराया है वह दोनों के अन्तर्द्वन्द्व से परिपूर्ण है। रामा के मन में भी पश्चात्ताप उत्पन्न होता है और वह अपने पूर्व पति को त्याग देने पर दुखी होती है आठ आठ आंसू रोती है पर अपने प्रेमी को भी छोड़ नहीं सकती। वह उसके प्रति भी वफादार रहना चाहती है। पुत्र और माता बातें कर ही रहे थे कि

इतने में शराब के नशे में रामा का प्रेमी द्वारका आ जाता है। वह रामा के चरित्र पर सन्देह करता है और दोनों को कत्ल करना चाहता है। तभी रामा रघुबीर के हाथ से कटार छीन लेती है और द्वारका की पीठ में भोंक देती है। वह चीख कर नीचे गिरता है। रामा उसके ऊपर गिरती है और बराबर कटार चलाये जाती है। रघुबीर माँ के इस भैरवी रूप को देख कर चरणों में साष्टांग दंडवत करता है। लाश का सिर काट लेता है यह पड़ा रहने देता है। इतने में ही रामा को होश आता है कि अकस्मात आवेश में मैंने यह क्या कर डाला। वह रघुबीर पर हत्या का दोष लगाती है और कहती है "रघुबीर, तू ने उनकी हत्या की है दुष्ट ! जालिम हाय तू ने मेरा सुहाग लूट लिया।" यह सुनकर रघुबीर स्तम्भित रह जाता है। रामा पुलिस के लिए चिल्लाती है और कहती है कि इसने मेरे आदमी का सिर काटा है। उसके रुदन से सारा मंच कांप उठता है। रघुबीर भी क्रोधित होकर रामा को मार डालने का भय दिखाता है। जब पुलिस आकर रघुबीर को हत्या के अभियोग में गिरफ्तार करती है तो फिर माँ का मन बदलता है। वात्सल्य जोर मारता है और वह पुलिस वालों से कहती है —

"थानेदार साहब मेरे बच्चे को छोड़ दीजिये। वह निर्दोष है निर्लिप्त है। उसने कुछ नहीं किया है। हत्या मैंने की है। छुरा मैंने मारा है। सिर मैंने काटा है। मुझे ले चलो। मुझे फांसी चढ़ाओ। मेरे बच्चे को छोड़ दो। मेरे कलेजे के टुकड़े को मत पकड़ो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

थानेदार— चुप-चाप शोर मत करो। कानून को अपना काम करने दो।

रघुबीर— (रो पड़ता है) माँ माँ मेरी माँ ! मुझे बचा।

रामा— (चिल्लाती और तड़फड़ाती है) मैंने खून किया है। मैं — कहती हूँ फिर उस फूल से बालक को क्यों सताते हो ? उसे छोड़ दो उसे छोड़ दो। ऐ जल्लादो, उसे छोड़ दो। मुझे पकड़ो। मुझे ले चलो। मैंने छुरा मारा है। मैंने हत्या की है। मैंने उस नराधम को पापों का मजा चखाया है।'

वह चिल्लाती रहती है। सिपाही रघुबीर के साथ उसे भी पकड़ ले चलते हैं। इस बीच एकत्र हुई भीड़ शोर करती है "हत्यारे दोनों हैं। दोनों को फांसी पर चढ़ा दो।"

लेखक ने नारी के प्रेम सम्बन्धी भावों का बड़ा ही सूक्ष्म और सजीव चित्रण किया है। नारी के मन में क्या क्या उलट फेर आते हैं यह प्रेमी और पति को क्या कैसे समझती है ? फिर एक कुलटा माँ के हृदय के गहन तल में भी सच्चे मातृ-स्नेह की

संकुल द्वारा प्रवाहित होती रहती है— यह सब फिल्म की तरह हमारे सामने आ जाते हैं। यहाँ हमें पात्रों के मनोविज्ञान का परिचय भी प्राप्त हो जाता है।

सामाजिक एकांकी सगाई

चन्द्रसेना जी का 'सगाई' (१९५४) एक सामाजिक समस्या एकांकी है। हमारा समाज आज शिक्षा के प्रभाव के कारण बहुत कुछ जागरूक हो गया है, किन्तु आज भी अनेक सामाजिक कुरीतियाँ समाज में टिकी हुई हैं। हम आँखें खोले होने पर भी उन्हें बर्दाश्त करते हैं। आखिर क्यों? यह इसलिए कि वे सामाजिक कुरीतियाँ हमारे व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में सहायक होती हैं व्यक्ति की यह स्वाभाविक दुर्बलता है कि अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए वह समाज के हित-अहित की बात भुला देता है। इन सामाजिक कुरीतियों से युद्ध करना बड़े साहस धैर्य और अध्यवसाय का काम है। ऐसी ही कुरीतियों की लौह-शृंखला को छिन्न भिन्न करने के लिए दृढ़संकल्प साहसी युवकों को प्रेरणा देने के लिए यह 'सगाई' सम्बन्धी एकांकी लिखा गया है।

'सगाई' एकांकी आज की विवाह सम्बन्धी समस्या का विस्तृत व्यापक अध्ययन है। हिन्दू कन्याओं का विवाह एक विषम और दुरूह समस्या बन गई है। दहेज, लेन देन, ठहराव, दिखावा और अनमेल विवाह हमारे यहाँ आज भी स्थिरवत् बने हुए हैं। कन्या का जन्म होते ही जैसे घर घर में मातम छा जाता है। पुत्र का जन्म होने पर थाल बजाये जाते हैं, मंगलध्वनि होने लगती है, मिठाई बाँटी जाती है। कन्या जन्मते ही सबको बुरा लगता है, यहाँ तक कि जिस माता ने नौ महीने पेट में रखकर उसे जन्म दिया, वह भी अपने कलेजे के टुकड़े उस नन्हीं बालिका को देखकर प्रसन्न और संतुष्ट नहीं होती। कारण, हमारे समाज में कन्या और पुत्र के बीच असमभावना पक्षपात, गलत मूल्यांकन, कन्या के प्रति दुर्व्यवहार और पुत्र पक्ष द्वारा शोषण है। व्यावहारिक ज्ञान प्राप्ति के क्षेत्र में भी कन्याओं पर उतना व्यय नहीं किया जाता जितना पुत्र पर किया जाता है। यदि लड़की बीमार होकर मर तक जाय तो माता को छोड़कर अन्य लोगों को प्रसन्नता ही होती है। हमें आज भी राजपूतों में प्रचलित यह प्रथा स्मरण हो जाती है जब कन्याओं को विष देकर या जन्मते ही दाई द्वारा मार डालने की निन्दनात्मक चेष्टा की जाती थी। पुत्र पुत्री के मध्य जो यह भारी असमानता है उसका कारण दहेज है। विवाह में बेचारे कन्या पक्ष का बुरी तरह शोषण होता है। लड़के-वाला उससे बहुत सा धन, जेवर, वस्त्र, रेडियो, साइकल, घड़ी फर्नीचर, मकान और

न जाने क्या क्या लेता है। कन्या पक्षवाले वर पक्ष के लोगों की खातिर और खुशामद इतनी दीनता से करते हैं जैसे चोर को पुलिस थानेदार की करनी पड़ती है। इस पर भी कन्या पक्षवाले पर बड़ा एहसान समझा जाता है। कन्या का पिता होना एक गाली बन गई है क्योंकि वह बेचारा दोषी भाग्यहीन और एक प्रकार से पापी माना जाता है। लेखक ने अपने "सगाई" नामक एकांकी में यह चित्रित किया है कि कन्या का पिता होना हिन्दू समाज में एक बड़ा दुर्भाग्य है। इसका दण्ड कन्या के पिता को कितना भी मिले मन मसोसकर सहन करने के अतिरिक्त उस बेचारे को और कोई चारा नहीं है।

इस एकांकी के नायक मुरलीधर बीला के पिता एक मध्य वर्ग के गृहस्थ हैं। बीला और मैना के अतिरिक्त उनकी तीन बड़ी पुत्रियाँ और भी हैं। पाँच कन्याओं के भार की वजह से वे जैसे कुट-पिस गये हैं। घर में गरीबी और बेबसी है। पुराना मकान स्थान स्थान से टूट गया है। बेचारे मुरलीधर एक अधेड़ किन्तु अमीर अधेड़ ग्रामीण से बीला का विवाह करने की सोचते हैं। पत्नी विरोध करती है, दहेज के कारण मकान तक को बेचने की नौबत आ जाती है।

लेखक ने स्थान स्थान पर विचारोत्तेजक गंभीर बातें कही हैं, जो हमें दहेज समस्या पर गहराई से सोचने के लिए बाध्य करती हैं। अमीर लोग अपने धन के बल पर कैसे नई उम्र की कन्याओं से विवाह करने का षड्यंत्र करते हैं और बेचारे गरीबों को निर्धनता कैसा अभिशाप बन जाती है, यह निम्न उद्धरण के वर्णन में देखिए। जमुना प्रौढ़ किन्तु धनी वर पर व्यंग्य कसती हुई कहती है :—

"जमुना— ऐसे खसमर का मैं अचार रखूँ री। बाबा की उम्र का होकर चला है ब्याह रचाने। जो मैं माया मूँछे पकड़ कर हिलाऊ और कहूँ जा अपनी माया को गाड़ रख। कोई पुतला ही तुझे वरेगी।

मुरली— (उसका पति) कहू देती।

जमुना— पर भवानीशंकर ने उसे क्या समझकर भेजा? ऐसा ही धवलीकुमार था तो अपनी बड़ी के लिए कर लेते। वह तो मेरी बीला से दो साल बड़ी है। देखा गरीब है। धन के लोभ से लड़की को झोंक देंगे।

"मुरली— अब पारा चढ़ गया है। जाकर थोड़ा ठण्डा पानी पियो।"

लेखक ने मध्यवर्ग ही के नागरिकों की आर्थिक विवशता और समाज द्वारा शोषण

के नए नए तरीकों को स्पष्ट कर दिया है। आज के युवकों की यह दूषित प्रवृत्ति है कि वे पत्नी के रूप में बड़ी रूपवती कन्या चाहते हैं। एक ओर बड़ी रकम का दहेज चाहिए, तो दूसरी ओर कन्या बेहद सुन्दर होनी चाहिए। सांवली मामूली या काली लड़कियों का विवाह भी एक विषम समस्या बन गया है। यदि इसी प्रकार चलता रहा तो एक दिन वह आयेगा जब मामूली कन्याओं को कोई न पूछेगा और न पसन्द के मार्ग पर जायेंगी। होना यह चाहिए कि कन्या के रूप के स्थान पर उसके गुण देखे जायें। शील, गुण चरित्र और घर के कामकाज की कुशलता गृहस्थी के लिए महत्वपूर्ण है। लेखक ने इस दृष्टिकोण को राधा के मुँह से इस प्रकार स्पष्ट कराया है —

राधा — कैसे आदमी हो तुम लोग ? क्या घर की बहू-बेटियों को बाजार में बिकाना है ?

लाला — भाभी आप नहीं समझतीं।

राधा — मैं क्या समझूँ जी ? नये जमाने के तुम लोग समझोगे। कोई भलामानस अपनी लड़की देने आता है तो उससे इस तरह का व्यवहार किया जाता है। ऐसा ही घर घर होने लगे तो काली कलूटी लड़कियाँ कहाँ जायेंगी ? रंगरूप क्या अपने हाथ का है ? भगवान के दिये हुए रूप का इतना अनादर; और बिना देखे ही। छिः।

ज्वाला — ठीक कहती हो। ऐसा नहीं होना चाहिए।

राधा — बहू बेटियों का रंग देखा जाता है या गुण ?

ज्वाला — देखना तो गुण ही चाहिए।

राधा — फिर अपने लड़के को भी देख लो। वह कौनसा संगमरमर का देवता है ?— जो इस प्रकार सरस्वती और लक्ष्मी का अनादर करते हैं उन्हें वे फिर मुँह नहीं दिखातीं।'

लाला प्रसाद की पत्नी सुलोचना नए युग की सौन्दर्य प्रवृत्ति को स्पष्ट करती है। जो व्यक्ति कोरे सौन्दर्य ही सौन्दर्य के पीछे पागल रहते हैं उन्हें बहुत खराब बहू मिलती है और कभी कभी बिल्कुल ही नहीं मिलती। ऐसे व्यक्तियों पर भी 'सगाई" एकांकी में अच्छा व्यंग किया गया है। निम्न उद्धरण में इसी समस्या का निदान प्रस्तुत किया गया है देखिए :—

"लाला — भाभी तुम्हें भला चांदनी-सी बहू बुरी क्यों लगती है ?

राधा — बुरी किसे लगती है ? मैं तो कहती हूँ तुम लोग चांदनी-सी ही लाओ।

सुलोचना— लो !

राधा— मैं यही कहती हूं कि हीरों की तलाश में कहीं कोयलों को भी मत ले लेना। तीन साल से चर्चा चल रही है। अभी तक तो कुछ नहीं हुआ। चांदनी-सी बहू आवे तो मैंने नहीं देखी।

सुलोचना— नीली मखमल पर मोतियों के हार की शोभा का विचार करो। तब ऐसा कहो ? (मुसकराती है)

राधा— यह तो अपने स्वार्थ की बात हुई। यह भी तो सोचो कि हमारे घर में ही चार लड़कियां हों तो, तो क्या वे सब अप्सराएं होतीं। फिर अगर कोई उसके लिए ऐसी मांग करता तो उसे हम क्या कहतीं ? किसकी सयानी लड़की के लिए ऐसा कहा जाय उसकी मां की तरफ से सोचो लल्लू का विवाह हो जाय तो उसके भी हो सकती हैं। अगर लड़कियां ही हुईं अप्सराएं न हुईं, तो कहां जायेंगी वे ? आदमी को इच्छाएं उसके अनुरूप होनी चाहिए।

एक स्थल पर एक रूपवती आधुनिक पत्नी का व्यंग्यचित्र प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक शिक्षा में ढली हुई कन्याएं अपने पारिवारिक जीवन में स्थिर नहीं हो पातीं; उसका सभी के साथ दुर्व्यवहार होता है घर भर परेशान हो उठता है। उम्मी की बहू के विषय में सरला की यह मार्मिक उक्ति देखिये—

सरला— रूप ही रूप है। निगोड़ी न काम की न काज की। आते ही उठा कर सास को ताक में धर दिया। कभी छत पर कभी सड़क पर। घंटों कंघी चोटी में लगाती है। तीन बार आइसक्रीम खाती है। चार बार चाय पीती है। बुढ़िया तो घुटघुट कर घुलती जा रही है।

राधा— (सुलोचना का हाथ खींचकर) लो सुन लो।

सुलोचना— बुढ़िया तो सिहाते सिहाते मरी जा रही थी।

सरला— वही तो मैं आज बधाई देने गयी तो बुढ़िया आठ आठ आंसू रो पड़ी।

सुलोचना— उम्मी कुछ नहीं कहता ?

सरला— उम्मी क्या कहेगा ?

राधा— यह बहू का रूप देखेगा या मां का दुःख ?

सुलोचना— राम राम !"

आजकल के युवकों की विवाह सम्बन्धी माँगें भी नवीन हैं। वे गृहपत्नी नहीं चाहते, प्रत्युत बनी ठनी रंगीन नाचने गानेवाली संगिनी चाहते हैं जिसकी वे कामना करते हैं। उनकी मनोवृत्ति दूषित करने में फिल्मों का पूरा हाथ है। वे जैसा फिल्म अभिनेत्रियों का बनाव शृंगार और वेशभूषा हाव भाव भंगिमा देखते हैं अपनी पत्नी में भी वैसी ही कामना करते हैं। कामता प्रसाद की माँग देखिये जो हमारी दूषित मनोवृत्तियों का स्पष्ट रूप है :—

'कामता— मैं उसी लड़की से शादी करूँगा जो फिल्म में मेरे साथ अभिनय करने को तैयार हो ? नृत्य और संगीत की जानकार हो।

मुरली— आपकी इच्छा।

कामता— कला की दुनिया तो आजकल मात्र सिनेमा, फिल्म में ही बसती है।

मुरली— सिनेमा के बाहर का जीवन तो—

कामता— निकम्मा है।

मुरली— घर घर की लड़कियाँ तो—

कामता— कुएँ की मेंढकी हैं जी। नाचना वे नहीं जानतीं, गाना वे नहीं जानतीं। जीवन की नाव को मझधार में खेना हो तो कोई उनसे ब्याह करे।"

— समाई (पृष्ठ ४२)

मध्यवर्ग का प्रतिनिधि बेचारा मुरलीधर जहाँ गया वहीं उसे मालूम हुआ कि आज के सामाजिक मूल्यांकन के युग में दोनों तौल पर सफल प्रायः होते हैं। वह जहाँ जहाँ जाता है वर के पिताओं को दहेज का मोलभाव करता हुआ पाता है। उसके पास ले देकर एक मकान है। उसे बेचकर कन्या के दहेज की समस्या को हल करना चाहता है। दहेज न देने पर कहीं सास आग उगल रही है तो कहीं बहू आग लगाकर आत्म हत्या कर रही है। इस प्रकार दहेज कुप्रथा के कारण घर घर में रावण है। इस समाज के साधारण और शिक्षित स्त्री और पुरुष, सभी का दृष्टिकोण दूषित हो गया है। यदि यह कुप्रथा चलती रही तो निश्चय ही यह समाज रसातल को जायगा। दुःख की बात तो यह है कि लेन देन और प्रदर्शन व दहेज प्रथा को हटाने की बात पढ़े लिखे लोग सबसे अधिक करते हैं लेकिन यह सब केवल लेखों और अखबारों में ही है, व्यवहार में नहीं। व्यवहार में सबसे अधिक लोभी और गुलाम पढ़े लिखे ही हैं। एक मार्मिक स्थल

भी देखिए, जिसमें पति पत्नी निराश होकर कहते हैं —

'मुरलीधर— हमें बीणा का बेड़ा पार लगाना है। मकान बेचकर दो हजार रुपये मिल जायगे। कुछ तुम्हारे पहले हैं। एक-दो हजार का करार करने से औसत दर्जे का लड़का मिल जायगा।

जमुना— और कोई उपाय नहीं है ?

मुरलीधर— तुम्हीं बताओ।

जमुना— तुम्हीं से सुनती थी पढ़े लिखे लोग करार की प्रथा उठा रहे हैं।

मुरलीधर— (हसते हैं)

जमुना— क्यों ?

मुरलीधर— केवल लेखों और अखबारों में व्यवहार में नहीं। व्यवहार में सबसे अधिक लोभी और गुलाम पढ़-लिखे ही होते हैं।

जमुना— ऐसे समाज को दियासलाई दिखाओ।

मुरलीधर— परन्तु दिखाना कठिन है।

जमुना— ऐसे समाज को छोड़ दो। मैं कहती हूँ छोड़ दो। चलो हम ईसाई हो जायें, मुसलमान हो जायें। ऐसी दुनिया में चल कर बसें, जहां मनुष्य न बसते हों।

—सगाई (पृष्ठ ६१)

इस एकांकी में मध्यवर्ग की विवाह समस्या के विभिन्न पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। लेखक ने दिखाया है कि समस्या का निदान हमारे कर्मनिष्ठ और सही दिशा में विकसित होने वाले युवकों के हाथों में है। दहेज के कारण हमारी नारी जाति की दुरावस्था होती जाती है। जो समाज अपनी कन्याओं को हीन समझता है, उनके शील गुण चरित्र इत्यादि का ठीक मूल्यांकन नहीं करता उनका सम्मान नहीं करता, वह निश्चित ही एक पतित समाज है। तिरस्कृत नारी के हृदय में आत्म-गौरव के भाव नहीं उठ सकते। वह अपनी महत्ता उपयोगिता और शक्ति का अनुभव नहीं कर सकती। जिस कन्या के आत्म-गौरव को दबा दिया गया हो विवाह की चर्चा के दिनों में ही जिसने अपनी व्यर्थता का अनुभव कर लिया हो, उसका अन्तःकरण कभी तेजस्वी धीर्य साहस एवं वीरता से परिपूर्ण नहीं बन सकता। उसका मन सदा दबा दबा सा रहता है। इस नाटक की नायिका बीणा (मुरलीधर की चौथी कन्या) का मन सदा दबादबा सा रहता है। ऐसी लड़की के लिए कोई बड़ा विचार संभव नहीं हो सकता। लेखक ने

चित्रित किया है कि जिसका मन मर गया जिसने अपने को तुच्छ मान लिया हो, उसका विचार क्षेत्र और कार्य क्षेत्र भी सदा संकुचित ही रहेगा। मात्र क्षेत्र में आयल ऐसी नारी दूसरों के लिए भार ही बन सकती है, वाले रह सकती है भोजन बनाने बच्चे उत्पन्न करने और घर की चौकीदारी का काम भले ही कर सकती हो, पर वह गृहलक्ष्मी के रूप में अपना अस्तित्व प्रकट न कर सकेगी।

नया हल

इस एकांकी में भारत के एक पिछड़े हुए गांव में खेती के क्षेत्र में क्रान्ति लाने का प्रयास चित्रित किया गया है। लेखक ने दयाराम के माध्यम से नवीन क्रान्ति और विचार धाराएं स्पष्ट की हैं। कथानक नपातुला है और उसका निर्माण पुराने और नए जीवन की तुलना करने की दृष्टि से हुआ है। दयाराम नवीन युग को विशेषताएं स्पष्ट करता है तो गांव की शाला का अध्यापक शिवचरण नए युग की कमजोरियों पर भी प्रकाश डालता है। इस प्रकार आधुनिक प्रगति के गुण दोषों का विवेचन करते हुए लेखक ने आधुनिक भारत की विकास योजनाओं से होने वाले लाभों को स्पष्ट किया है। धनराजसिंह के शब्दों में लेखक का सन्देश इस प्रकार है —

"अब तो देश आजाद है। सब नागरिक बराबर हैं। एक वोट मैं दे सकता हूं, वही आप दे सकते हैं। वही गांव का किसान और मेहतर दे सकता है। उसी तरह वैज्ञानिक औजारों को हर कोई काम में ला सकता है। आप झूठे मोह में पड़े हैं। उसे छोड़ दीजिए और आज के (युग) धर्म का झंडा उठाइये।'

यह एकांकी ठोस विचारों और गंभीर चिंतन से परिपूर्ण है। लेखक ने भोलेभाले कृषक समाज में पाई जानेवाली त्रुटियों का कई स्थलों पर संकेत किया है। देश की आधुनिक विकास योजनाओं को स्पष्ट करने और जागृति का मन्त्र फूंकने की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। भारत का साधारण किसान क्यों कमजोर है और उसकी निर्धनता के क्या कारण हैं इनको लक्ष्य कर लेखक ने लिखा है :—

दयाराम— "गरीब तो वह (भारत का साधारण किसान) इस अर्थ में है कि वह युग के साथ नहीं चलता। वह अब भी बाबा आदम के युग के रीतिरिवाजों से चिपटा हुआ है। वह मोसर-मोसर और शादी-ब्याह में घर की सम्पत्ति फूंक देता है। पशुधन के बारे में डूब जाता है। भारी ब्याज भरता है। खेत में अच्छी खाद नहीं दे पाता अच्छे बैल नहीं रख पाता। सिंचाई के साधन नहीं जुटा पाता। नये किस्म के

भी देखिए जिनमें पति पत्नी निराश होकर कहते हैं —

'मुरलीधर— हमें वीणा का बेड़ा पार लगाना है। मकान बेचकर दो हजार रुपये मिल जायगे। कुछ तुम्हारे गहने हैं। एक-दो हजार का करार करने से बीस वर्ष का लड़का मिल जायगा।

जमुना— और कोई उपाय नहीं है ?

मुरलीधर— तुम्हीं बताओ।

जमुना— तुम्हीं से सुनती थी पढ़े लिखे लोग करार की प्रथा उठा रहे हैं।

मुरलीधर— (हंसते हैं)

जमुना— क्यों ?

मुरलीधर— केवल लेखों और अखबारों में व्यवहार में नहीं। व्यवहार में सबसे अधिक लोभी और गुलाम पढ़ लिखे ही होते हैं।

जमुना— ऐसे समाज को दियासलाई दिखाओ।

मुरलीधर— परन्तु दिखाना कठिन है।

जमुना— ऐसे समाज को छोड़ दो। मैं कहती हूँ छोड़ दो। चलो हम ईसाई हो जायें, मुसलमान हो जायें। ऐसी दुनिया में चल कर बसें, जहां मनुष्य न बसते हों।

—सगाई (पृष्ठ ६१)

इस एकांकी में मध्यवर्ग की विवाह समस्या के विभिन्न पहलुओं पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। लेखक ने दिखाया है कि समस्या का निदान हमारे कर्मनिष्ठ और सही दिशा में विकसित होने वाले युवकों के हाथों में है। दहेज के कारण हमारी नारी जाति की दुरावस्था होती जाती है। जो समाज अपनी कन्याओं को हीन समझता है, उनके शील गुण चरित्र इत्यादि का ठीक मूल्यांकन नहीं करता, उनका सम्मान नहीं करता, वह निश्चित ही एक पतित समाज है। तिरस्कृत नारी के हृदय में आत्म-गौरव के भाव नहीं उठ सकते। वह अपनी महत्ता उपयोगिता और शक्ति का अनुभव नहीं कर सकती। जिस कन्या के आत्म-गौरव को दबा दिया गया हो विवाह की चर्चा के दिनों में ही जिसने अपनी व्यर्थता का अनुभव कर लिया हो, उसका अन्तःकरण कभी तेजस्वी शौर्य साहस एवं वीरता से परिपूर्ण नहीं बन सकता। उसका मन सदा दबा दबा सा रहता है। इस नाटक की नायिका वीणा (मुरलीधर की बड़ी कन्या) का मन सदा दबा-दबा सा रहता है। ऐसी लड़की के लिए कोई बड़ा विचार संभव नहीं हो सकता। लेखक ने

चित्रित किया है कि जिसका मन मर गया, जिसने अपने को तुच्छ मान लिया हो, उसका विचार क्षेत्र और कार्य क्षेत्र भी सदा संकुचित ही रहेगा। भाव क्षेत्र में पागल ऐसी नारी दूसरों के लिए भार ही बन सकती है दासी रह सकती है जीवन बनाने उनके लालन करने और घर की चौकीदारी का काम भले ही कर सकती हो पर वह गृहलक्ष्मी के रूप में अपना अस्तित्व प्रगट न कर सकेगी।

नया हल

इस एकांकी में भारत के एक पिछड़े हुए गांव में खेती के क्षेत्र में क्रान्ति लाने का प्रयास चित्रित किया गया है। लेखक ने दयाराम के माध्यम से नवीन क्रान्ति और विचार धाराएं स्पष्ट की हैं। कथानक सशक्त है और उसका निर्माण पुराने और नए जीवन की तुलना करने की दृष्टि से हुआ है। दयाराम नवीन युग की विशेषताएं स्पष्ट करता है, तो गांव की आत्मा का सम्यक चित्रण नए युग की कमजोरियों पर भी प्रकाश डालता है। इस प्रकार आधुनिक प्रवृत्ति के गुण दोषों का विवेचन करते हुए लेखक ने आधुनिक भारत की विकास योजनाओं से होने वाले लाभों को स्पष्ट किया है। मकरानसिंह के शब्दों में लेखक का सन्देश इस प्रकार है —

"अब तो देश आज़ाद है। सब नागरिक बराबर हैं। एक वोट में वे सरदार हैं, वही मान वे सकते हैं। वही गांव का किसान और मेहतर दे सकता है। उसी तरह वैज्ञानिक औजारों को हर कोई काम में ला सकता है। आप झूठे मोह में पड़े हैं। उसे छोड़ दीजिए और आज के (युग) धर्म का मज़ा उठाइये।'

यह एकांकी ठोस विचारों और गंभीर चिन्तन से परिपूर्ण है। लेखक ने मौजूदा कृषक समाज में पाई जानेवाली त्रुटियों का कई स्थलों पर संकेत किया है। देश की आधुनिक विकास योजनाओं को स्पष्ट करने और जागृति का मन्त्र फूंकने की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। भारत का साधारण किसान क्यों कमज़ोर है और उसकी निर्धनता के क्या कारण हैं इसको लक्ष्य कर लेखक ने लिखा है :—

दयाराम— "गरीब तो वह (भारत का साधारण किसान) इस अर्थ में है कि वह युग के साथ नहीं चलता। वह अब भी बाबा आदम के युग के रीतिरिवाजों से चिपका हुआ है। वह जेवर-जेवर और शादी-ब्याह में घर की सम्पत्ति फूंक देता है। साहूकार के चंगुल में डूब जाता है। भारी ब्याज भरता है। खेत में अच्छी खाद नहीं दे पाता, अच्छे बैल नहीं रख पाता। सिंचाई के साधन नहीं जुटा पाता। नये किस्म के

हल नहीं खरीद पाता वह इस तरह अज्ञान की दुनिया में रहता है। विज्ञान ने खेती को कहां से कहां लाकर खड़ा कर दिया है यह वह क्या जाने ?

शिवचरण— यह बात तो सही है। अभी तक गांवों के लोग अन्धविश्वासों में पड़े हैं। अभी तक भूत-प्रेत, टोना-टोटका तरह तरह के विश्वासों से उनका छुटकारा नहीं हुआ है।

और इसी चर्चा के साथ फिर लेखक ने देश के नए निर्माण और ग्रामों के बहुमुखी विकास की योजनाओं पर प्रकाश डाला है। प्राचीन आधार भूमि को लेते हुए नए युग की वैज्ञानिक आविष्कारों को खेती के उपयोग के लिए कैसे काम में लाया जाय यह सब इस एकांकी में स्पष्ट कर दिया गया है।

पवनराजसिंह के ये शब्द वास्तव में सत्य हैं, 'यह विज्ञान का युग है। अब देवी देवताओं का युग खत्म हो गया है। अब तो नये नये वैज्ञानिक उपकरण ही खेती के काम में आयेंगे.... आप जमाने के साथ नहीं चलेंगे तो आपको कोई नहीं पूछेगा .. आपको जिन्दा रहना है तो जमाने के साथ चलो।'

—नए एकांकी (पृष्ठ ७२)

नया खेत

विकास योजनाओं के अन्तर्गत छोटे छोटे खेतों को बड़ा कर के सहयोग पद्धति पर सहकारी खेती की एक योजना इस एकांकी में प्रस्तुत की गई है। परसादी एक किस्म में पुराने ढंग से टेढ़े-मेढ़े तिकोने खेत देख कर आता है। सब के खेतों के टेढ़े-मेढ़े होने के कारण बहुत-सी जमीन मेड़ों में बेकार हो गई है। खेतों की सीमाएं निश्चय करने में बड़ी कठिनाई होती है। बरसात में मेड़ों के बह जाने से झगड़ा हुए बिना नहीं रहता। लेखक ने दिखाया है कि चकबन्दी से किसानों का बड़ा हित हो सकता है। सरकार की नीति परसादी के निम्न वक्तव्य से स्पष्ट हो जाती है :—

"सरकार ने गांव वालों से ही एक पांच आदमियों की एक कमेटी चुनवा ली। उस कमेटी से गांव की भूमि का वर्गीकरण कराया गया। निकृष्ट कोटि की भूमि सम्मिलित चरागाह बनाने के लिए छोड़कर बाकी के चार वर्ग किये गये। इन चारों वर्गों की प्रति एकड़ पैदावार पूछ ली। उसी के मुताबिक गांव में जितने परिवार थे उतने चक बना दिये और लाटरी द्वारा कौनसा चक किसे मिले इसका निर्णय कर दिया।"

गांवों की हालत सुधारने के लिए लेखक ने सरकारी नीति को स्पष्ट किया है।

बलवन्ती के म में आनेवाली बाधाओं के निराकरण के उपाय भी स्पष्ट किये हैं। हरिजनों की दुरावस्था के सम्बन्ध में बड़े मार्मिक शब्दों में लिखा गया है। एक हरि-जन, भीखा और कस्तूरा नामक एक किसान युवक की बातचीत का एक अंश देखिये —

'कस्तूरा— अब हरिजन खेती करेंगे ?

"भीखा— हाँ, भय्या। बहुत भार ढोया। खून चूस तक दूसरों के खेतों में खाद पहुँचाई। अब अपने खेतों में खाद डालेंगे। पेट तो भरेगा।

परसादी — पेट तो पहले भी भरता था।

भीखा— वह पेट भरना क्या था ? पशुओं से भी गया बीता। जूठन, सूखी बासी सड़ी, भुनी, बासी-कूसी मोटी-झोटी खाना भी कोई जिन्दगी है ? हम समाज में कुत्तों से भी बदतर बनकर रहे हैं।

कस्तूरा— समाज का यही दस्तूर है। वह कुछ अपने हाथों नहीं देता। राज दिला देता सभी कुछ देता। उसको मर्दन दबाने की शक्ति रखने वाला उससे सब कुछ ले सकता है।

परसादी— ऐसा भी नहीं है। राज ने छुआछूत हटा दी है पर समाज तो नहीं बदला है। आज भी हरिजन भाइयों को कुओं पर पानी नहीं भरने दिया जाता। मन्दिरों में जाकर वे उपासना नहीं कर सकते। होटलों में सबके साथ बैठकर नहीं खा सकते। नाई उनकी हजामत बनाने को तैयार नहीं होते।

कस्तूरा— हरिजन कृषि करने लग जायेंगे, तब ऐसा नहीं रहेगा।

भीखा— और रह भी नहीं सकता। जिस पेशे ने हमें समाज में गिरा दिया है, उसी को अब हम छोड़ देंगे, तो बहुत फरक पड़ जायगा।'

इस प्रकार इस एकांकी में समाज की वास्तविकता एवं किन्हीं कुत्सित परम्पराओं के जिनके रहते भी नयी नीति और सरकार द्वारा सुधार के उपायों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। नयी सामाजिक व्यवस्था लाने में सरकार क्या कर रही है यह स्पष्ट हो जाता है।

नया गाँव

इस एकांकी में विभाजन के उपरान्त भारत के एक गाँव में आये हुए नवीन परि-वर्तन स्पष्ट किये गये हैं। जगपाल बाहर के देशों में कई वर्ष भ्रमण करके अपने पुराने ग्राम में लौटता है, तो पाता है कि उस गाँव का पुराना नकशा बिल्कुल ही बदल चुका

है। वह मित्र इटली, फ्रांस, जर्मनी, रूस इत्यादि की आन्तरिक अवस्था देख कर आता है कि वहाँ कहीं भी पूर्ण शान्ति नहीं है। वह कहता है —

"आदमी को शान्ति कहीं नहीं है। जहाँ जहाँ गया, एक न एक आग लगी हुई देखी। शान्ति से पुष्ट सफलता केवल इसी देश में देखा। कौन कहेगा कि यहाँ भी साल में भूकम्प भी आये और नई रचना भी रची गई।"

आज़ाद भारत की महिमा इस एकांकी में देखने को मिलती है गाँवें गुम हो जाती हैं। जयपत गाँव के स्कूल का भवन देखकर आता है। स्कूल का भवन ऐसा लगता है कोई बड़ा कारखाना हो। इस एकांकी में ग्रामोन्नति की सब समस्याएं हल होती दिखाई गई हैं। एक मार्मिक प्रश्न देखिए —

"जयपत— स्कूल का भवन देखकर लगता है कि कोई बड़ा कारखाना हो।

"सागर— यही बनने जा रहा है। दस्तकारी केन्द्र और वर्कशाप ये दो विभाग साथ साथ काम करेंगे। आसपास के तीस चालीस गाँव के बच्चे तो आयेंगे ही दूर दूर से भी पढ़ने वाले आ सकते हैं।

जयपत— अच्छा ... लोग तो यों ही कहते हैं। बड़े बड़े विद्यालय गाँवों में ही होने चाहिए। गाँवों से नगरों की ओर दौड़ने वाला जन-प्रवाह नहीं रुका तो भयानक परिणाम हो सकते हैं।

सागर— गाँवों को ऐसा बना देना चाहिए कि लोग नगरों को भूल जाय।

जयपत— इस तरह के नये गाँव में ही भारत की आत्मा का विकास होगा… ढेंकली से काम नहीं ले रहे हैं आजकल?

सागर— नहीं कुओं में पम्प बिठा दिये गये हैं। अपने गाँव में ऊंचाई के कारण नहर का पानी नहीं आ रहा था। इसलिए पम्पों की योजना की गई।

जयपत— यह काम कौन करता है?

सागर— सहकारी समिति ही करती है या कह सकते हैं कि सारा गाँव ही करता है। सहकारी समिति ने गाँव का साहूकारों से मुक्त कर दिया है। गाँव की समृद्धि अधिकतर उसी के कारण है जमींदारों की दाग-दाप से किसानों का जीवन कराह रहा था। उससे मुक्ति पाकर यह आधा स्वर्ग पा गया है शेष आधा एक शोषक साहूकार के ग्रस्त से हो जायगा ।

इस प्रकार सहकारी योजनाओं से आने वाली समृद्धियों की एक भव्य झांकी इस

एकांकी में प्रस्तुत की गई है। लेखक ने चित्रित किया है कि भविष्य में भारत की ग्रामीण सामाजिक बुराइयाँ—जैसे मृत्युभोज जाति-पाँति का भेद-भाव ब्याह-शादी में अपव्यय ऊँच-नीच के झगड़े आपस के बैर विरोध मुकदमेबाजी मार-पीट इत्यादि समाप्त हो जायगी। ऋषियों का यह देश संसार को शान्ति-संदेश देगा। दुनिया जिस शान्तिमय जीवन के लिए तरस रही है, शान्ति का वह मूल-मन्त्र भारत के पास ही है।

नया बैल

इस एकांकी का निर्माण किसनाराम नामक एक किसान के दो बूढ़े बैलों—बुढ़िया और मदुआ को लेकर किया गया है। किसनाराम की नई पत्नी बूढ़े बैलों को नीलाम देने के लिए झगड़ा करती है पति का बूढ़े बैलों के प्रति प्रेम उससे देखा नहीं जाता। बेचारा किसान उन्हें बेचने की सोचता है। धीरे धीरे बुढ़िया को सुमति आती है और वह बूढ़े बैलों को मंगल का कारण जान कर बेचने का विचार छोड़ देती है। लेखक ने दिखाया है कि जानवरों के प्रति आत्मभाव रखने से किसान बहुत लाभ उठा सकते हैं। जब तक किसान अपने जानवरों को परिवार का ही एक अभिन्न अंग नहीं मानेंगे, तब तक कोई लाभ नहीं हो सकता। खेती के पशुओं की भी उसी प्रकार सेवा और देखभाल होनी चाहिए, जैसे परिवार के व्यक्तियों की होती है।

कर्तव्य की ओर

इस एकांकी में हमारे समाज की एक नई कमजोरी पर व्यंग्य किया गया है, वह है अधिकारों के प्रति हर दिशा से जोरदार मांग। आज हमारे युवक हर दिशा से अपने अधिकारों ही अधिकारों की मांग कर रहे हैं। "मजदूर अधिकारों के लिए लड़ते हैं। किसान अधिकारों के लिए हल छोड़ते हैं। छात्र अधिकारों के लिए मचलते हैं।" सभी चाहते हैं कि मिलकर अधिकारों का आनन्द उठायें। अधिकारों के लिए भटकनेवाला महावीर इस एकांकी का नायक है। उसने अधिकारों की धुन में अपनी पत्नी चंचला को उपेक्षित कर रखा है। दोनों दुःख अशान्ति आवेश, क्रोध अर्थहीन जीवन के नरक में भटक रहे हैं। दूसरी ओर शिवरतन नामक सज्जन युवक है जो कर्तव्य को अधिकार से अधिक महत्त्व देता है। महावीर और चंचला में अधिकारों पर जोर देने के कारण झगड़ा होता है। पत्नी बेचारी कर्तव्य करती थी पर किसी ने उसका महत्त्व नहीं जाना। अब वह कर्तव्य की बात छोड़कर अधिकार की बात करती है। इस प्रकार दोनों ही अधिकारों के नशे में चूर बने रहते हैं। मनमानी ऊटपटांग बातें सोचते हैं।

इससे उसका सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। दोनों में मारपीट हो जाती है। इस मार पीट में शिवरतन घायल हो जाता है। चंचला शिवरतन को उठाती उसका रक्त पोंछती उसके सिर को अपनी गोद में रख कर दुआ करती है। महावीर इस पर और भी क्रोधित होकर उसे अपशब्द कहता है। धीरे धीरे दोनों का अधिकारों का नशा उतरता है और वे जीवन में कर्तव्य की महत्ता को स्वीकार करते हैं।

इस एकांकी में कर्तव्य द्वारा समाज सुधार की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है, जो सर्वथा उचित एवं तर्कपूर्ण है। लेखक का संदेश निम्न शब्दों में प्रकट हुआ है जो कवित्वपूर्ण है :—

"शिवरतन— जब बादल वर्षा द्वारा अपना कर्तव्य करता है। जब फूल सुगन्धि फैलाकर अपना कर्तव्य कर रहा है। जब माता बच्चे के लिए अपने शरीर को गला रही है। उनमें कोई भी तो अधिकारों की बात नहीं करता फिर हम ही क्यों ऐसा करें कर्तव्य देवता के पट कभी बन्द नहीं होते। सदा खुले रहते हैं। उसके यहाँ कोई अछूत नहीं है। बड़े से बड़ा पापी एक आसन पर बैठ सकता है।"

अन्त में पति पत्नी अधिकारों का व्यर्थ प्रलाप त्याग कर कर्तव्य-पथ के पथिक बनते हैं। अधिकारों से मुंह मोड़ने की घोषणा करते हैं। कर्तव्य ही उनके जीवन का प्रधान ध्येय हो जाता है।

इस तथ्य से कोई भी विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता कि आज के शिक्षित नवयुवकों में कर्तव्य के प्रति जागरूकता की भावना की अत्यन्त कमी है और कर्तव्य के प्रति लगन पैदा करने की परम आवश्यकता है। इस नाटक द्वारा लेखक ने कर्तव्य की प्रेरणा के साथ साथ भौतिकवाद से हटा कर आध्यात्मवाद की ओर मानव को मोड़ने का यत्न किया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा सम्बन्धी नीति में परिवर्तन और सुधार करना आवश्यक है। यदि हम अपने देश की प्राचीन संस्कृति को ही देखें तो स्पष्ट है कि हमारी उन्नति एवं विकास का कारण कर्तव्य के प्रति जागरूकता ही थी। इसी पर हमारे स्वतन्त्र भारत तथा नए समाज की उन्नति निर्भर है। खेद का विषय है कि इस दिशा में कर्तव्य की महत्ता के लिए कोई सक्रिय कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। युवकों में धार्मिक और सामाजिक प्रवृत्तियों को पनपाने के लिए हमारे द्वारा कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। इस नाटक का प्रधान पात्र अन्त में अधिकारों से मुंह मोड़ कर्तव्य पथ पर अग्रसर होते रहने की घोषणा करता है। यह ध्येय निस्संदेह

महत्वपूर्ण है ।

सब से बड़ी सेवा

इस एकांकी का सम्बन्ध कैयट नामक एक उद्भट विद्वान की साहित्य-साधना से है। वे अपनी साहित्य साधना में निरन्तर लगे रहते हैं पर घर में गरीबी और विवशता है। उनकी पत्नी शारदा भोजन की व्यवस्था में चिन्तित रहती है। अन्न समाप्त हो चुका है। नमक तक नहीं है। कुछ सूखे फल कूट कर रखे हैं। उनके साथ कुछ मिलाने तक को नहीं है। पत्नी चुपचाप विद्वान् पति के समीप इस आशा से खड़ी है कि शायद कुछ भोजन का प्रबन्ध हो सके पर कैयट को यह सब देखने तक का अवकाश नहीं है। इससे पत्नी के हृदय पर चोट लगती है। अतीत का सारा सुख भरा दृश्य उसके नेत्रों के आगे खेल जाता है। सम्पन्न ब्राह्मण परिवार की कन्या के भाग्य में भी ये गरीबी और अभाव के दिन बदे थे। बेचारी विवश पत्नी के नेत्रों में अश्रु छलछला आते हैं किन्तु वह उन्हें पलकों में थाम लेती है। पति के उघाड़ शरीर पर आँसू की बूंद न गिर पड़े इसकी वह सावधानी रखती है। इतने में निर्धन महात्मा के यश बल से कश्मीर नरेश अति सहानुभूति से प्रेरित विद्वान् कैयट के पास आते हैं। बेचारे परिवार के पास आतिथ्य-सत्कार के कोई साधन नहीं हैं।

महाराज कहते हैं कि उनके राज्य में विद्वान् को दरिद्र जीवन नहीं बिताना चाहिए, क्योंकि इससे राजा को पाप लगता है। वह उनकी हर प्रकार सहायता करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। सेवा करने की आज्ञा चाहते हैं विद्वानों और पंडितों को सुखी करने में ही गौरव समझते हैं पर कैयट यह कुछ नहीं चाहते। वे अपनी गरीबी विवशता, अभाव, भूख और हर प्रकार की कठिनाई की कोई परवाह न कर यह कह देते हैं :—

'कैयट— तो आप हमारी सेवा करने को कृत संकल्प हैं? आप हमें सुखी करने को पधारे हैं? हमारी सबसे बड़ी सेवा यही होगी कि आप फिर कभी यहाँ आने का कष्ट न करें।

महाराज— (आश्चर्य से) ऐं।

कैयट— न आप किसी कर्मचारी को ही भेजें। मुझे किसी वस्तु की कामना नहीं है। मेरे अध्ययन में विघ्न न पड़े। यही मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी। समझे महाराज!"

यह सुनकर कश्मीर के महाराज को ब्राह्मण के त्याग, संयम विद्याध्ययन कर्तव्य के प्रति निष्ठा एकाग्रता आदि का ज्ञान होता है। महाराज त्यागी ब्राह्मण की चरण रज सिर पर रखते और चुपचाप निकल जाते हैं। शारदा मन की पवित्रता पर गर्व अनुभव करती है और खुश जाती है कि उसके घर में प्राण जाने को कुछ भी नहीं है। कैयट पंडित पुस्तक निकालकर पुन उसी में तल्लीन हो जाते हैं।

लेखक ने प्राचीन विद्वानों ऋषि-मुनियों की त्याग-वृत्ति और विद्याध्ययन के प्रति सच्ची निष्ठा को स्पष्ट किया है। हमारे यहाँ जो यह कहा गया है कि "अग्नि ऋषि पवमानः पांचजन्यः पुरोहित" (ऋग्वेद) तेजस्वी ज्ञानी पवित्र तथा संयमी पुरोहित हों।— यह उद्देश्य इस नाटक के नायक में स्पष्ट हो जाता है। सुखी जीवन के लिए अपरिग्रह की आवश्यकता है। असंख्य सामग्रियों बड़े बड़े मकानों कामनाओं सुन्दर से सुन्दर महलों और सांसारिक सुविधाओं के होते हुए भी मनुष्य दुःखी हैं असंतुष्ट नजर आते हैं। दूसरी ओर ऐसे संयमी त्यागी इन्द्रिय-निग्रही कैयट जैसे महापुरुष भी हैं जिनके पास रहने को घर नहीं है, सोने की व्यवस्था नहीं है भूख मिटाने को भोजन नहीं है, कोई निश्चित आमदनी नहीं है और पग पग पर आपत्तियाँ मुँह बाये खड़ी हैं फिर भी जगत् से उन्हें सम्मान की कोई भी कामना नहीं है। वे अपने विद्याध्ययन में हमेशा प्रसन्न तुष्ट, हर्षित और मस्त रहते हैं। अभाव के कारण चिन्ता और दुःख के कोई चिह्न उनके मुखमण्डल पर दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। "त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्" (गीता १२-१२) त्याग से ही परम शान्ति होती है— यही इस एकांकी का मूल लक्ष्य है और त्याग का महत्व चित्रित करने में लेखक सफल हुआ है।

मृत्युदान

पाप और पुण्य धर्म और अधर्म उचित और अनुचित सत्य और असत्य— ये सभी बातें सापेक्ष (Relative) हैं और निर्णय के समय की परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं। इस एकांकी में ऐसे ही एक धर्म-संकट को स्पष्ट किया गया है। साबरमती आश्रम की गोशाला में गाय का एक कोमल बीमार बछड़ा तड़प रहा है। आश्रम के व्यक्ति उसके उपचार में संलग्न हैं पर उसके मृत्यु के मुख से बचने की कोई आशा नहीं। सब उपचार निष्फल होते हैं। लेकिन पता नहीं कितने छटपटाने के बाद, कितने कष्ट भोगने के बाद मौत आयेगी। बापू के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित होता है कि

बछड़े को उसी तरह मृत्यु की गोद में व्यथापूर्वक छटपटाने दिया जाय, अथवा उसकी आत्मा को चिर शान्ति दे दी जाय ? गांधी जी इस प्रश्न के हल में बछड़े को मृत्युदान ही धर्म समझते हैं। बाह्य दृष्टि से सामाजिक मर्यादा के हिसाब से यह नीति की भाषा पाप है किन्तु उन विशेष परिस्थितियों में मुस्लमान पुण्य है। अन्त में बापू बछड़े को इन्जेक्शन देकर मार डालने की ही आज्ञा दे देते हैं और इस प्रकार से वह संसार से विदा ले लेता है। उसे लगते ही मोक्ष रूपली मृत्यु प्राप्त हो जाती है। लेखक ने दिखाया है कि परिस्थितियों को सामने रख कर ही उचित-अनुचित तथा पाप-पुण्य का निर्णय होना चाहिए। इस एकांकी का विषय नैतिक मूल्यांकन है। धर्म-संकटों के समय नेताओं को बड़ी सूझबूझ से काम लेना चाहिए और परिस्थिति के हिसाब से ही धर्म-अधर्म के निर्णय देने चाहिए। जब बछड़े की मृत्यु से बचने की कोई भी सम्भावना नहीं थी मृत्यु का इन्जेक्शन देना भी धर्म ही गिना जायगा। इस निर्णय से गांधीजी की नैतिकता और धार्मिकता में कोई भी अन्तर नहीं आता।

नेहरू के बाद

इस समय यह प्रश्न है कि नेहरू के बाद कौन ऐसा विद्वान् कर्तव्यनिष्ठ, त्यागी और चतुर राजनैतिक नेता है जो स्वतन्त्र भारत की बागडोर सफलतापूर्वक सम्हाल सकता है। लेखक ने दिखाया है कि भारत में अनेक सच्चे देशप्रेमी और निस्पृह सेवी अब भी मौजूद हैं जो देश का कुशलता से संचालन कर सकते हैं। इस एकांकी का मूल भाव यों कहा जा सकता है— आ देवानाम् अभवः केतुरग्ने — (ऋग्वेद ३/१/१७) अर्थात् केवल श्रेष्ठ व्यक्ति ही जनता के नेता बनें। हमारे देश में जनता के नेतृत्व की बागडोर प्रगतिशील-अभिलाषी व्यक्तियों के ही हाथ में रहनी चाहिए। सच्चा देशभक्त जाति, धर्म, इत्यादि को कुछ भी महत्व नहीं देता वह तो देश की सच्ची सेवा तथा उसके लिए अधिक से अधिक त्याग में विश्वास करता है।

इस एकांकी के नायक स्वर्गीय श्री रफी अहमद किदवई हैं। जब से उन्होंने देश की सेवा का कार्य प्रारम्भ किया है तब से उनके शुद्धाचरण निस्वार्थ भाव सक्रियता, कार्यक्षमता के कारण महान् परिवर्तन आये दिखाये गये हैं। कर्तव्य के प्रति निष्ठा के कारण उनसे कामचोर रिश्वत खाने वाले भ्रष्टाचारी, फिरकापरस्त आलसी और सभी डरने लगे हैं। अशुद्ध और असत्य व्यवहार समाप्त हो गया है। इसलिए जैसे पुलिस

यह सुनकर कश्मीर के महाराज को ब्राह्मण के त्याग, संयम विद्याध्ययन कर्तव्य के प्रति निष्ठा, एकाग्रता आदि का भान होता है। महाराज त्यागी ब्राह्मण की वस्त्र रख सिर पर रखते और चुपचाप निकल जाते हैं। आरती घर की दरिद्रता पर गर्व अनुभव करती है और भूल जाती है कि उसके घर में खाने को कुछ भी नहीं है। कैयट पंडित पुस्तक निकालकर पुनः उसी में तल्लीन हो जाते हैं।

लेखक ने प्राचीन विद्वानों ऋषि मुनियों की त्याग-वृत्ति और विद्याध्ययन के प्रति सच्ची निष्ठा को स्पष्ट किया है। हमारे यहाँ जो यह कहा गया है कि "अग्नि ऋषि पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः (ऋग्वेद) तेजस्वी ज्ञानी, पवित्र तथा संयमी पुरोहित हों।— यह उद्देश्य इस नाटक के नायक में स्पष्ट हो जाता है। सुखी जीवन के लिए अपरिग्रह की आवश्यकता है। असंख्य सामग्रियों बड़े बड़े खजानों दरबारों सुन्दर से सुन्दर महलों और सांसारिक सुविधाओं के होते हुए भी मनुष्य दुःखी हैं असंतुष्ट नजर आते हैं। दूसरी ओर ऐसे संयमी त्यागी इन्द्रिय-निग्रही कैयट जैसे महापुरुष भी हैं जिनके पास रहने को घर नहीं है, सोने की व्यवस्था नहीं है भूख मिटाने को भोजन नहीं है कोई निश्चित आमदनी नहीं है और पग पग पर आपत्तियाँ मुँह बाये खड़ी हैं फिर भी जगत् से उन्हें सम्मान की कोई भी कामना नहीं है। वे अपने विद्याध्ययन में हमेशा प्रसन्न, तुष्ट, हर्षित और मस्त रहते हैं। अभाव के कारण चिन्ता और दुःख के कोई चिह्न उनके मुखमण्डल पर दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। "त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्" (गीता १२-१२) त्याग से ही परम शान्ति होती है— यही इस एकांकी का मूल लक्ष्य है और त्याग का महत्व चित्रित करने में लेखक सफल हुआ है।

मृत्युदान

पाप और पुण्य धर्म और अधर्म उचित और अनुचित सत्य और असत्य— ये सभी बातें सापेक्ष (Relative) हैं और निर्णय के समय की परिस्थितियों से सम्बन्धित हैं। इस एकांकी में ऐसे ही एक धर्म-संकट को स्पष्ट किया गया है। साबरमती आश्रम की गोशाला में गाय का एक कोई बीमार बछड़ा तड़प रहा है। आश्रम के व्यक्ति उसके उपचार में संलग्न हैं, पर उसके मृत्यु के मुख से बचने की कोई आशा नहीं। सब उपचार निष्फल होते हैं। लेकिन पता नहीं कितने छटपटाने के बाद कितने कष्ट भोगने के बाद मौत आयेगी। बापू के सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि

बछड़े को उसी तरह मृत्यु की गोद में व्यथापूर्वक छटपटाने दिया जाय अथवा उसकी आत्मा को चिर शान्ति दे दी जाय ? गांधी जी इस प्रश्न के हल में बछड़े की मृत्युदान ही धर्म समझते हैं। बाह्य दृष्टि से सम्भावित मर्यादा के हिसाब से यह मौत को आज्ञा पाप है किन्तु जब विशेष परिस्थितियों में मृत्युदान पुण्य है। अन्त में बापू बछड़े को इन्जेक्शन देकर मार डालने की ही आज्ञा दे देते हैं और इस प्रकार से वह संसार से विदा ले लेता है। उसे लगते ही मौत उसकी मृत्यु प्राप्त हो जाती है। लेखक ने दिखाया है कि परिस्थितियों को सामने रख कर ही उचित-अनुचित तथा पाप-पुण्य का निर्णय होना चाहिए। इस एकांकी का विषय नैतिक मूल्यांकन है। धर्म संकटों के समय नेताओं को बड़ी सूझबूझ से काम लेना चाहिए और परिस्थिति के हिसाब से ही धर्म-अधर्म के निर्णय देने चाहिए। जब बछड़े की मृत्यु से बचने की कोई भी सम्भावना नहीं थी मृत्यु का इन्जेक्शन देना भी धर्म ही गिना जायगा। इस निर्णय से गांधीजी की नैतिकता और धार्मिकता में कोई भी अन्तर नहीं आता।

नेहरू के बाद

इस समय यह प्रश्न है कि नेहरू के बाद कौन ऐसा विद्वान् कर्तव्यनिष्ठ, त्यागी और चतुर राजनैतिक नेता है जो स्वतन्त्र भारत की बागडोर सफलतापूर्वक सम्हाल सकता है। लेखक ने दिखाया है कि भारत में अनेक सच्चे देशप्रेमी और निस्पृह सेवी अब भी मौजूद हैं जो देश का कुशलता से संचालन कर सकते हैं। इस एकांकी का मूल भाव यों कहा जा सकता है— 'मा देवानाम भव नेतुरग्ने — (ऋग्वेद ३/१/१७) अर्थात् केवल श्रेष्ठ व्यक्ति ही जनता के नेता बनें। हमारे देश में जनता के नेतृत्व की बागडोर आत्म-बलिदानी व्यक्तियों के ही हाथ में रहनी चाहिए। सच्चा देशभक्त जाति धर्म, इत्यादि को कुछ भी महत्व नहीं देता वह तो देश की सच्ची सेवा तथा उसके लिए अधिक से अधिक त्याग में विश्वास करता है।

इस एकांकी के नायक स्वर्गीय श्री रफी अहमद किदवई हैं। जब से उन्होंने देश की सेवा का कार्य प्रारम्भ किया है तब से उनके शुद्धाचरण निस्वार्थ भाव सक्रियता कार्यकुशलता के कारण महान् परिवर्तन आये दिखाये गये हैं। कर्तव्य के प्रति निष्ठा के कारण उनसे कामचोर रिश्वत खाने वाले भ्रष्टाचारी फिरकापरस्त आलसी चोर कमी करने लगे हैं। अशुद्ध और असत्य व्यवहार समाप्त हो गया है। इमामुद्दीन" जैसे पुलिस

थानेदार, डेविड जैसे टिकट चेकर, कर्तारसिंह जैसे डाक तार विभाग के बाबू, रोशनअली जैसे राशन की दुकान के मालिक सभी किदवई साहब के संग में पलकर सबक सीख चुके हैं। लेखक ने किदवई साहब की इन्सानियत तथा कर्तव्यनिष्ठा को अच्छी तरह स्पष्ट किया है। उन्हें सच्चे इन्सान के रूप में चित्रित किया है। नाटक का एक मार्मिक अंश इस प्रकार है देखिए —

"इलाहीबख्श— खुदा की कसम हिन्दुस्तान एक अजीब देश है।

डेविड— यह जातियों फिरकों धर्मों और सम्प्रदायों में बंटता जा रहा है बंटता जा रहा है।

विजयकृष्ण— यह देश का दुर्भाग्य है, पर सच है।

रोशनअली— लोग दूसरी तरह सोचते ही नहीं। इन्सानियत के लहजे में सोचने की यहाँ की मिट्टी में गंध ही नहीं।

शंकरलाल— यह गलत है। यह वाहियात है।

कर्तारसिंह— कैसे ?

शंकरलाल— सच्चे इन्सान की लोग कद्र करते हैं। वहाँ जाति धर्म की कहाँ पूछ नहीं।

इलाहीबख्श— मुश्किल तो यह है कि सच्चे इन्सान बहुत थोड़े हैं।

शंकरलाल— लेकिन हैं वे ही इन्सानियत के चिराग को रोशन रखते हैं। हमारे रफी अहमद किदवई को ले लो। मुसलमान वे भी हैं न, पर कौन हिन्दू मुसलमान अदब से उन्हें सिर न झुकायेगा ?

कर्तारसिंह— सचमुच लाला साहब किदवई साहब बेमिसाल आदमी हैं। उन्हें हिन्दू मुसलमान सब बेहिचक अपना मानते हैं।

शंकरलाल— फिरकापरस्ती का दृष्टिकोण स्वार्थी नेताओं के दिमाग की उपज है। जनता के दरबार में कबीर और दादू, रहीम और तुलसी अपनी सेवा के अनुपात से ही आदर-मान के हकदार होते आये हैं।

विजयकृष्ण— किदवई साहब का तो कहना ही क्या ... ।"

इस प्रकार सभी पात्र अपने ऊपर बीतनेवाली किदवई सम्बन्धित घटनाएं सुनाते हैं जिनसे इस मन्त्री की जागरूकता और भ्रष्टाचार-निवारण की मनोवृत्ति स्पष्ट होती है। भ्रष्टाचार आखिर क्यों नहीं रुकता ? कौन जिम्मेदार है ? और कौन सार्व

नतिक जीवन से इस कमजोरी को दूर कर सकता है ? यह सब कुछ अच्छे नेता ही कर सकते हैं। उन्हें सेवाभाव तथा इन्सानियत की दृष्टि से कर्तव्य निर्धारण करना चाहिए। भ्रष्टाचार निवारण के लिए जनता और अच्छे अफसर दोनों को मिलकर कार्य करना चाहिए। शासन की मशीनरी में जो पुर्जे घिस गये हैं उन्हें बदलने की आवश्यकता है। अगर हमारे देशवासी राष्ट्र सेवा कर्तव्य पूर्ति और सतत जागरूकता से कार्य लें तो समाज में फैले हुए कुसंस्कार लालच धन का मोह ईर्ष्या द्वेष, छल, दंभ कपट, घूसखोरी असंयम एवं स्वार्थपरता दूर हो सकते हैं।

कन्यादान

यह एक अजीब प्रकार का एकांकी है। पैंसठ साल का मरणासन्न रामेसर भाटी, जिसका जीवन मार-धाड़ में ही व्यतीत हुआ है और जिसका परिवार नहीं है रूपमती नामक सांड को अपनी कन्या समझता है। उसकी इच्छा है वह अपनी कन्या का विवाह कर ही मृत्यु को प्राप्त हो। रामेसर की मृत्यु पास आ रही है, रूपमती वृद्ध की कांपती हुई आवाज सुनकर डींकती है। प्राण निकाले देती है। रामेसर को उसके प्रति बड़ा मोह है, उसके प्राण उसमें अटके हुए हैं। इतने में जोरावर राठौर नामक एक घुड़सवार युवक आता है। वह सांड ले जाना चाहता है। उसका सूअर के शिकार में घोड़ा घायल हो गया है। शिकार के लिए अब उसे सांड चाहिये। दिन छिपने से पूर्व ही उसे सूअर को मार कर लाना है। रामेसर उसे दामाद बना कर सांड का कन्यादान स्वीकार करने का निमन्त्रण देता है —

'रामेसर— मेरी बात का उत्तर दो कुंवर साहेब। मैं इस इलाके का नामवर रामेसर भाटी हूं। ये मेरे साथी हैं। या तो इन चारों की हत्या करके तुम उसे खोल ले जाओ या बेटी का कन्यादान स्वीकार करो। दूसरी दशा में इस इलाके के पचास गांवों और मेरे रत्न भंडार के तुम स्वामी होते हो।"

जोरावर इस बात को स्वीकार कर सांड पाणिग्रहण कर लेता है। बीमार रामेसर को निद्रा सी आती है और उसमें वह देखता है कि सांड शिकार में सूअर की ठोकर खाकर गिरी तो उसने पलट कर पेट में दांत घुसा दिये। पेट फाड़ कर आंतें बाहर कर दी। रामेसर सपने में बड़बड़ाता रहता है। हाथ पैर पटकता है। फिर उसी दुःख में उसका शरीर निश्चित हो जाता है और आंखें फटी की फटी ही रह जाती हैं। वह एक

सफल हृदय-विदारक दुखान्त एकांकी है।

लेखक ने स्पष्ट किया है कि शाहू के हृदय में भी चाहे मनुष्य के पुत्र-पुत्री के लिए न हो पर जानवर तक के लिए वात्सल्य भाव रहता है। पैंसठ साल के रामेसर माटी के हृदय में सांड के प्रति ममत्व वात्सल्य भाव है। वह उसका विछोह भी सहन नहीं कर पाता। बिल्कुल बेटी की तरह उसका सम्बन्ध करता और दहेज देता है। वाईत रामेसर माटी का यह वात्सल्य और पुत्री प्रेम उसके चरित्र को हमारी दृष्टि में बहुत ऊंचा उठा देता है।

रेवड़ का सौदा

इस एकांकी में निर्धन वर्ग का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। महमद माड़ेवाला अपने कच्चे मकान में बैठा दिखाई देता है। उसको दाहिनी आंख में एक फूला है, बाईं भी पूरी तरह नहीं खुलती। मक्खीसा कद और मुंह पर चेचक के दाग हैं। उसने कम उम्र की एक हसीन स्त्री फातिमा से विवाह किया है। महमद कुछ मन्द बुद्धि है। मियां बीबी की नहीं पटती। बीवा नामक चुस्त चालाक नौजवान उसे धोखा देकर ठग ले जाता है। गाय बैल बकरी भेड़ और भेड़ सौ रुपया नकद के बदले में वह एक पागल और बीमार ऊंट बदल लेता है। इस पर मर्मान्तिक बहस और लोवा करने वालों में मार पीट हो जाती है। नाटक की प्रधान पात्री फातिमा पति की मन्द बुद्धि पर कुपित है। खूब ही कभी कभी वहां से भाग निकलने तक की योजनाएं बनाती है। अन्ततः महमद पर दया करके उसके यहां विषम आर्थिक स्थिति से ही समझौता कर लेती है।

लेखक ने निम्न वर्ग के एक परिवार का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। वहां आर्थिक निर्बलता मूढ़ता चरित्र की कमजोरी के साथ साथ असंख्य प्रकार की विषमताएं हैं। अमीर लोग, पैसे से उनकी औरतों की असमत तक खरीदना चाहते हैं। अनुचित सम्बन्ध कर पैसे कमाने वाले सदा इनके पीछे लगे रहते हैं। कुलेमानी ऐसी ही पूर्ण दुश्चरित्र नारी है। ठीक अवसर पर फातिमा में सद्बुद्धि आती है और वह कुप्पा कुलेमानी के पंजे से बालबाल बचती है। महमद के जीवन की टीस और अभाव लेखक ने स्पष्ट कर दिये हैं। यत्र तत्र हास्यरस का पुट भी है जिससे इसे Delightful Comedy कहा जा सकता है।

मुर्दों का व्यापार

इस एकांकी में कलकत्ता में होने वाले मुर्दे के व्यापार का घिनौना और व्यंग्यपूर्ण चित्र खींचा गया है। सेठ सिधानिया का तीन वर्ष का पोता चेचक की बीमारी से चल बसता है। उसका अन्त्यकर्म करने के लिए घीसाराम को फोन किया जाता है। मुर्दों का अन्त्यकर्म करना ही घीसाराम का व्यापार है। वह ५० रुपये लेकर मुर्दा उठाता है। सिधानिया अपने पोते के शव के केवल दस रुपये देना चाहता है। मारवाड़ी पचास नहीं देना चाहता तो घीसाराम कोध मंपा से शव को पुन उठा लाता है। घर में लाश को देखकर कुहराम मच जाता है। हार कर सेठ सिधानिया को पचास की जगह सौ रुपये देने पड़ते हैं। लेखक ने दिखाया है कि आज के यांत्रिक युग में और व्यापारों की तरह मुर्दों तक का व्यापार चल गया है जो समस्त मानवीय भावनाओं से शून्य है। बड़े नगरों में मानवीय संवेदनाओं को स्थान तक नहीं रह गया है। शवों का दाह करने के लिए भी अन्य कामों की तरह काफी ऊँचे दाम देने पड़ते हैं।

यह एकांकी बीभत्स रस से परिपूर्ण है। पुत्र की मां भयभीत हो हो उठती है। रात्रि के घने अन्धकार में श्वेत वस्त्र में लिपटा हुआ शिशु का शव अपने पूर्ण अस्तित्व में उसकी आंखों के आगे आकर खड़ा हो जाता है। एकांकी का अन्त होते होते याद करते करते सिधानिया पागल सा हो उठता है कहता है 'लो, उसने मेरे बच्चे को ले जाकर पैरों में डाल दिया। उसके ऊपर दो तीन मुर्दे और लाकर डाल दिये। बेचारा फूल सा बालक बोझ से दबा जा रहा है। दौड़ो बचाओ उसे मेरे बच्चे को! भय, विस्मय तथा बीभत्स रस से परिपूर्ण यह एकांकी हमारे आधुनिक समाज पर तीखा व्यंग्य है, जिसमें मानवीय संवेदनाओं को कोई स्थान नहीं रह गया है।

स्नो और पाउडर

यह एकांकी बाल मनोविज्ञान पर आधारित है। रतनू और विष्णु रामधन के दो पुत्र हैं। वे घर में बहुत उत्पात करते रहते हैं। रामधन तथा उनकी पत्नी दोनों इस चपलता से बहुत परेशान हैं। बच्चों की तोड़ फोड़ के कारण उन्हें सजा देने की सोचते हैं। वे दोनों पूरे दण्डयानुखी हैं। उनका पड़ोसी जयजीत बाल मनोविज्ञान से परिचित है। वह बतलाता है कि बच्चों द्वारा की गई तोड़ फोड़ उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति और प्रतिभा को स्पष्ट करती है। अत हमें बच्चों की शरारतों के प्रति अपना दृष्टिकोण

कारण एकनाथ अपने नियम से विरत नहीं होना चाहते हैं। वे इसे एक व्रत मानकर पूर्ण करने पर तुले हुए हैं। इतने में भूखा प्यासा व्याकुल लड़खड़ाता हुआ एक गधा प्रवेश करता है और प्यास से व्याकुल हो एकनाथ के सम्मुख गिर पड़ता है। संत एकनाथ करुणा से आलोड़ित होकर उसे देखने लगते हैं। सब यात्री "पानी लाओ! पानी लाओ!!" कह कर चिल्लाते हैं किन्तु आसपास कहीं पानी नहीं है। इसलिए सब इधर उधर भागते हैं। संत एकनाथ हतबुद्धि से क्षण भर आकाश की ओर देखते हैं और फिर तड़पते हुए उस मूक पशु की ओर। एकाएक कर्तव्यबिन्दु उनके मानस में प्रकाश कौंध जाता है। किसी ओर से जल आता न देखकर वे अपनी कांवर से कलश उतार लेते हैं और मरते हुए गधे के मुँह से लगा देते हैं। पवित्र गंगाजल उस महाप्राण गधे में अमृत का स्रोत बन कर गिरता है। वे दूसरा कलश भी उठा लेते हैं और उसे पिलाने लगते हैं। जिस गंगाजल के लिए उन्होंने लाख लाख स्वर्ण मुद्राएं नहीं लीं, करुणा और दयावश वही गंगाजल एक गधे के प्राण बचाने में व्यय होता है। एकनाथ के साथी उन्हें मूर्ख बतलाते हैं। लेकिन संत एकनाथ इसी को भगवान रामेश्वर का पुण्याभिषेक समझते हैं। उनके [illegible] शब्दों में कितना आत्मसंतोष भरा है देखिए—

सकी शक्ति से है। भगवान का स्वरूप ही इन सब जीवों में व्याप्त है। इस जीव सृष्टि रे छोड़ कर जो व्यक्ति पत्थर या धातु की मूर्तियों की सेवा करते हैं, वे भक्ति से दूर। भगवद् भक्तों को अपने इर्द गिर्द रहनेवाले मनुष्य तो क्या, समग्र जीवों पर पनी करुणा की वर्षा करनी चाहिए। भक्ति के व्यावहारिक स्वरूप की व्याख्या इस टक में प्रस्तुत की गई है।

सामाजिक न्याय

प्रस्तुत एकांकी में हमारी दूषित समाज-व्यवस्था पर आक्रमण किया गया है। न्दू धर्म से अस्पृश्यता का कलंक जब तक नहीं हटता, तब तक समाज का एक बड़ा ग तिरस्कृत और उपेक्षित ही रहेगा। यह एक कटु सत्य है कि छुआछूत, वर्ण, जाति, ऊँच-नीच जैसी संकीर्ण भावनाएं हमारे समाज, और देश की प्रगति में बाधक हैं। ससे हिन्दू समाज की आधारभूत एकता को बड़ी हानि पहुँची है। हमारी समृद्धि को रोकने में कट्टर हिन्दुओं ने बड़ी हानि पहुँचाई है। हिन्दू समाज ने अपने २० प्रतिशत पूत मूत और पिछड़े हुए पैदा करनेवाले व्यक्तियों को दबाये रखा और उनकी उन्नति सदा के लिए अवरुद्ध कर दी।

इस एकांकी के नायक महात्मा गांधी जी हैं। वे सवर्ण हिन्दुओं से अपील करते हैं कि समाज से हरिजनों के प्रति घृणा का भाव निकाल दें। मन्दिरों में जाकर अछूत भी सवर्णों की तरह पूजन और दर्शन करें। मोची हज्जाम, डाक्टर, वकील सब अपना ना काम करें और सबका समान रूप से समाज में सम्मान हो। महात्मा गांधी जी के शब्द इस एकांकी के प्राण हैं।—

बापू—मेरी यात्रा हरिजन यात्रा है इसलिए कि हरिजन समाज के सबसे बड़े वक हैं। पर मैं इनसे अछूत कहलाया। सामाजिक अन्याय का यह पाप हमारी दासता ा कारण है। उसका परिमार्जन ही हिन्दू धर्म को उबार सकता है। हरिजन भंगी के र्मल वीर हैं। उनके हाथों में सब तीर्थों का निवास है। मैं इस यात्रा में सवर्ण हिन्दुओं को यह कहने निकला हूँ कि हरिजनों को समाज में समान दर्जा दिये बिना मात्मिक उत्थान का कोई उपाय नहीं है। ... यदि आप सचमुच मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं तो हरिजनों के साथ होनेवाले सामाजिक भेद-भाव को दूर कर मेरी यात्रा े सफल बनाओ। उन्हें प्रेम से गले लगाओ, उन्हें अपने साथ मन्दिरों में ले जाओ

कारण एकनाथ अपने निश्चय से विरत नहीं होना चाहते हैं। वे इसे एक व्रत मानकर पूर्ण करने पर तुले हुए हैं। इतने में भूखा प्यासा व्याकुल लड़खड़ाता हुआ एक गधा प्रवेश करता है और प्यास से व्याकुल हो एकनाथ के सम्मुख गिर पड़ता है। संत एकनाथ करुणा से आलोड़ित होकर उसे देखने लगते हैं। सब यात्री 'पानी लाओ! पानी लाओ!!" कह कर चिल्लाते हैं किन्तु आसपास कहीं पानी नहीं है। इसलिए सब इधर उधर भागते हैं। संत एकनाथ हतबुद्धि से क्षण भर आकाश की ओर देखते हैं और फिर तड़पते हुए उस मूक पशु की ओर। एकाएक कर्तव्यविमूढ़ उनके मानस में प्रकाश कौंध जाता है। किसी ओर से जल आता न देखकर वे अपनी कांवर से कलश उतार लेते हैं और मरते हुए गधे के मुंह से लगा देते हैं। पवित्र गंगाजल उस महाप्राण गधे में अमृत का स्रोत बन कर गिरता है। वे दूसरा कलश भी उठा लेते हैं और उसे पिलाने लगते हैं। जिस गंगाजल के लिए उन्होंने तन मन स्वयं सुध नहीं ली, करुणा और दयावश वही गंगाजल एक गधे के प्राण बचाने में व्यय होता है। एकनाथ के साथी उन्हें मूर्ख बतलाते हैं। लेकिन संत एकनाथ इसी को भगवान रामेश्वर का पुण्याभिषेक समझते हैं। उनके अन्तिम शब्दों में कितना आत्मसंतोष भरा है देखिए:—

"एकनाथ— (ममता और स्नेह से पुलकित होकर गधे पर हाथ फेरते हुये) मैं तो भगवान् रामेश्वर का ही पुण्याभिषेक कर रहा हूं। वे ही तो मेरा लाया हुआ पवित्र गंगाजल पी रहे हैं। ओह! कितना संतोष है इनकी आंखों में! न जाने कब से प्यासे थे ये? युग युग की इनकी तृषा को बुझाने का इस अकिंचन को सौभाग्य मिला। आज मैं धन्य हुआ! आज मैं कृतार्थ हुआ। मेरे परमाराध्य प्रभु आपकी अविचल भक्ति के सिवा मुझे और कुछ न चाहिए। आपकी आंखों में स्निग्ध स्नेह की जो ज्योति जग रही है उससे अधिक मेरे लिए कोई वरदान नहीं।"

इस भावावेश में संत विभोर हो चकित चित्त से निहारते रहते हैं। पुलकित होते रहते हैं। तब उस शुष्क मंदिर की पृष्ठभूमि में रामेश्वर की अथाह जलराशि लहराती हुई दिखाई देती है और सब को भगवान रामेश्वर के विराट् रूप के दर्शन होते हैं।

लेखक ने दिखाया है कि जीवों पर दया, भले ही वे कितने ही निम्न कोटि के गधे जैसे निकृष्ट पशु ही क्यों न हों, ही सबसे श्रेष्ठ भक्ति है। दया का सम्बन्ध प्रभु की

सच्ची भक्ति से है। भगवान का स्वरूप ही इन सब जीवों में व्याप्त है। इस जीव सृष्टि को छोड़ कर जो व्यक्ति पत्थर या धातु की मूर्तियों को सेवा करते हैं, वे भक्ति से दूर हैं। भगवद् भक्तों को अपने इर्द गिर्द रहनेवाले मनुष्य तो क्या समग्र जीवों पर अपनी करुणा की वर्षा करनी चाहिए। भक्ति के व्यावहारिक स्वरूप की व्याख्या इस नाटक में प्रस्तुत की गई है।

सामाजिक न्याय

प्रस्तुत एकांकी में हमारी दूषित समाज-व्यवस्था पर आक्रमण किया गया है। हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता का कलंक जब तक नहीं हटता, तब तक समाज का एक बड़ा वर्ग तिरस्कृत और उपेक्षित ही रहेगा। यह एक कटु सत्य है कि छुआछूत वर्ण, जाति, ऊंचनीच जैसी संकीर्ण भावनाएं हमारे समाज, और देश की प्रगति में बाधक हैं। इससे हिन्दू समाज की आधारभूत एकता को बड़ी हानि पहुँची है। हमारी समृद्धि को रोकने में कट्टर हिन्दुओं ने बड़ी हानि पहुँचाई है। हिन्दू समाज ने अपने १० प्रतिशत अछूत, शूद्र और पिछड़े हुए पैदा करनेवाले व्यक्तियों को दबाये रखा और उनकी उन्नति सदा के लिए अवरुद्ध कर दी।

इस एकांकी के नायक महात्मा गांधी जी हैं। वे सवर्ण हिन्दुओं से अपील करते हैं कि समाज से हरिजनों के प्रति घृणा का भाव निकाल दें। मन्दिरों में जाकर अछूत भी सवर्णों की तरह पूजन और दर्शन करें। मोची हज्जाम, डाक्टर, वकील सब अपना अपना काम करें और सबका समान रूप से समाज में सम्मान हो। महात्मा गांधी जी के ये शब्द इस एकांकी के प्राण हैं :—

बापू— मेरी यात्रा हरिजन यात्रा है इसलिए कि हरिजन समाज के सबसे बड़े सेवक हैं। उन्हें हमने अछूत ठहराया। सामाजिक अन्याय का यह पाप हमारी दासता का कारण है। उसका परिमार्जन ही हिन्दू धर्म को उबार सकता है। हरिजन गंगा के निर्मल नीर हैं। उनके हाथों में सब तीर्थों का निवास है। मैं इस यात्रा में सवर्ण हिन्दुओं को यह कहने निकला हूं कि हरिजनों को समाज में समान दर्जा दिये बिना सामाजिक न्याय का कोई उपाय नहीं है। ... यदि आप सचमुच मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं, तो हरिजनों के साथ होनेवाले सामाजिक भेद-भाव को दूर कर मेरी यात्रा को सफल बनाओ। उन्हें प्रेम से गले लगाओ, उन्हें अपने साथ मन्दिरों में ले चलो

ताकि वे भी भगवान् के दर्शन कर सकें। उनके लिए सब सार्वजनिक स्थान खोल दो —।'

सम्पूर्ण एकांकी में हरिजनों के मन्दिर प्रवेश तथा अस्पृश्यता को दूर करने का भाव प्रकट किया गया है। लेखक ने दिखाया है कि हिन्दू समाज को इस संकीर्ण मनोवृत्ति से बड़ी हानि पहुंची है। जो एक बार निम्न कोटि के पेशे में फंस गया है, उसे उसी से जकड़ कर बांध दिया गया है। उससे यदि वह निकलने के लिए छटपटाता है, तो निकलने नहीं दिया जाता। छुआछूत और जातीयता की ऊँची ऊँची असंख्य दीवारें उसे बाहर निकलने नहीं देतीं। आमृत्यु पर्यन्त उसे ऊँचे वर्गों के हाथों सामाजिक अपमान या तिरस्कार का कड़ुवा घूंट पीना पड़ता है। इस रोज रोज के अपमान से तंग आ कर हिन्दू समाज की अनेक छोटी छोटी जातियां मुसलमान या ईसाई हो गई हैं, अथवा होती जा रही हैं। अतः हिन्दुओं को इस समस्या पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। लेखक ने हरिजनों के पक्ष का कठोर समर्थन करते हुए समाज में उन्हें समान दर्जा और अच्छे व्यवहार की अपील की है। अस्पृश्यता की भावना ने हिन्दू समाज को निर्बल बना दिया है। अस्पृश्यता निवारण के मूलभूत कारणों अस्वच्छता, अविद्या अशिक्षा और जीर्ण शीर्ण अन्धविश्वासों आदि को सदा के लिए समाप्त कर देना चाहिए। इस दिशा में अब सरकार ने वैधानिक प्रयास भी किये हैं, किन्तु उन्हें चरितार्थ करने का भार अब जनता के ऊपर है। हमारा कर्तव्य है कि हम सम्पूर्ण हिन्दू समाज में समान व्यवहार तथा सद्भावना की दिशाओं में प्रयत्न करें।

अंगारों की मौत

भारतीय स्वाधीनता संग्राम स्वयं अपने आप में ऐसी ऐसी साहस वीरता, पौरुष, स्वातन्त्र्य प्रेम राष्ट्रीयता और बलिदान की लोमहर्षक घटनाएं समेटे हुए है कि उनमें से प्रत्येक पर एक एक नाटक लिखा जा सकता है। 'अंगारों की मौत' (१९६१) नाटक में सन् १९२४ से लेकर २३ मार्च १९३१ तक सरदार भगतसिंह सुखदेव और राजगुरु की फांसी तक की अनेक घटनाओं तथा स्मृतियों को संजोया गया है। भगतसिंह, सुखदेव राजगुरु चन्द्रशेखर आज़ाद बटुकेश्वरदत्त यशपाल आदि इस नाटक के प्रमुख पात्र हैं। उन्हीं से सम्बन्धित सत्य घटनाओं को लेकर एक संक्षिप्त कथानक का निर्माण कर लिया गया है, लेकिन नाटककार का मुख्य उद्देश्य आजादी के लिए प्रयत्न करने और

देश की बलिवेदी पर प्राण न्योछावर कर देने वाले क्रांतिकारियों के जीवन उद्देश्य कठिनाइयों सरकारी दमन के कुटिल प्रयत्नों और बलिदान को स्पष्ट कर देता रहा है। इन क्रांतिकारियों को लेखक ने "अंगारे" कहा है। वास्तव में भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन के अमर सेनानी अंगारे ही थे जो फांसी के तख्तों तक पर चमकते रहे। अतः नाटक का नामकरण 'अंगारों की मौत' उपयुक्त ही रहा है। नाटक सरदार भगतसिंह सुखदेव और राजगुरु के मृत्युदण्ड पर समाप्त होता है।

सरदार भगतसिंह का स्वातन्त्र्य प्रेम और बलिदान भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलनों में स्वर्णाक्षरों से अंकित किया जायगा। युवक क्रान्तिकारियों में भगतसिंह अग्रगण्य थे। वे जब एन्ट्रेन्स में पढ़ते थे तभी असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था। उन दिनों लाहौर में राष्ट्रीय कालेज खुला था। उसी में भगतसिंह पढ़ने लगे थे। राष्ट्रीय कालेज में उन्हें विभिन्न देशों के राष्ट्रीय तथा राजनीतिक इतिहास को पढ़ने का अवसर मिला। साम्यवाद और रूस की क्रान्ति पर उन्होंने बहुत सी पुस्तकें पढ़ी थीं। इन्हीं दिनों आपने युवकों में राष्ट्रीय जागृति और क्रान्तिकारी भाव उत्पन्न करने में बड़ा परिश्रम किया था। उन्हें संगठित करने के उद्देश्य से नौजवान भारत सभा की स्थापना की थी। आपकी सगाई का प्रबन्ध हुआ तो उसे राष्ट्रीय कार्य में बाधा समझने के कारण वे घर से भाग निकले और कानपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रवादी हिन्दी साप्ताहिक पत्र "प्रताप" में बलवन्तसिंह के नाम से कार्य करने लगे थे। अप्रैल १९२९ में असेम्बली में बम फेंकने की घटना हुई थी। इसी सम्बन्ध में आप पर मुकदमा चला था और जन्म भर के लिए कालेपानी की सजा हुई थी। श्री राजगुरु और सुखदेव के साथ लाहौर षड्यंत्र केस में साण्डर्स की हत्या के अपराध में २३ मार्च १९३१ को साढ़े सात बजे शाम को इन तीनों क्रान्तिकारियों को जेल में फांसी दे दी गई थी। 'अंगारों की मौत' नाटक का प्रारम्भ भगतसिंह के प्रताप कार्यालय में कार्य करने से प्रारम्भ होकर उनकी फांसी पर समाप्त होता है। भगतसिंह को ही नाटक का प्रमुख पात्र कहा जा सकता है।

प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में 'प्रताप' (कानपुर) कार्यालय का एक दृश्य दिखाया गया है। 'प्रताप' साप्ताहिक का अंक मशीन पर चढ़ा हुआ है। यशस्वी सम्पादक गणेश शंकर विद्यार्थी उसका सम्पादकीय लिखने में व्यस्त हैं। इतने में मित्र भी आते हैं और दो हजार रुपये की नकद जमानत जमा करने की सूचना देते हैं। प्रबन्ध केवल ५०० रुपये का हुआ है। "प्रताप" बन्द नहीं करना है— यही उनकी इच्छा है।

विद्यार्थी जी कहते हैं "प्रताप संकटों में ही जन्मा और संकटों में ही बड़ा हुआ है। संकटों से अब उसे भय नहीं रहा है।" मिश्र जी के शब्दों में 'हुकूमत' प्रताप "को कचाड़ने पर तुली हुई है।" और "प्रताप" उसे समुद्र पार भेजने के लिए कृतसंकल्प है। इसी समय पोस्ट से दो हजार का ड्राफ्ट आ जाता है। दाता का नाम नहीं है। सबको इस बात का हर्ष होता है कि जनता जनार्दन ने इस पत्र को छाती से लगा लिया है। पत्र अब मर नहीं सकता। इसी समय हैटसूटधारी आगन्तुक के रूप में भगतसिंह नौकरी के लिए प्रवेश करता है। वह निस्पृह युवक केवल देश की सच्ची सेवा की उत्कट भावना लेकर ही 'प्रताप' कार्यालय में आया है। यह स्थल नाटक का एक मार्मिक स्थल है देखिए :—

आगन्तुक— आप मेरी आवश्यकताओं की ओर न देखें सिर्फ कोई काम बता दें ?

विद्यार्थी जी— फिर भी आप जैसे शिक्षित नवयुवक को पचास साठ मासिक तो चाहिए ही।

आगन्तुक— नहीं १०–१० लेकर मुझे क्या करना है ? दोनों समय किसी तरह पेट भर जाय। बस इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए।

विद्यार्थी— ऐसा है।

आगन्तुक— जी, मेरी इच्छा तो आपके चरणों में रहकर कुछ काम करने की है। आपसे कुछ सीख सकूं ना यह मेरा सौभाग्य होगा।

विद्यार्थी जी— अच्छा तो आप आज से प्रताप परिवार के सदस्य हो गये। हम जायेंगे, तो आप भी जायेंगे और हम भूखे रहेंगे तो आप भी रहेंगे।"

विद्यार्थी जी— भगतसिंह के वचनों पर मुग्ध हो जाते हैं और बलवन्त के नाम से नौकरी प्रारम्भ कर देते हैं। उधर घर में उनकी खोज मच जाती है। उन्हें विवाह के बन्धन में बांधने की तैयारी हो रही है। लेकिन इस प्रकार भाग कर उन्हें यह बताना जरूरी था कि वह घर बसाने के लिए नहीं देश बसाने के लिए पैदा हुआ है। तभी तो देशसेवकों के घर जन्मा है। नेशनल कालेज में ही उसे भगवतीचरण, राजगुरु, सुखदेव, यशपाल जैसे साथी मिले हैं। अतः देश सेवा के व्रतों को घर से भागने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था। 'प्रताप' कार्यालय में ही उनकी मुलाकात साथी बटुकेश्वरदत्त से होती है। दोनों के समान उद्देश्य हैं। नवीन जी और पालीवाल जी बाहर चले जाते

है और "प्रताप" के सम्पादकीय तथा उसके प्रकाशन का सारा भार भगतसिंह पर आ जाता है। इस प्रकार प्रथम दृश्य में ही भगतसिंह तथा १९२४ के राजनैतिक संघर्ष की झांकी मिल जाती है। संघर्ष का वातावरण बनता जाता है। हमारा ध्यान उन वीरों की ओर खिंचता जाता है जिन्होंने क्रान्ति के पौधों को अपने रक्त से सींचा है।

इस नाटक के दूसरे दृश्य में ईस्वी सन १९२९ की ग्रीष्म ऋतु में कानपुर की एक गुमनाम बस्ती में एक पुराना सा मकान है। "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी" के कार्य को काकोरी ट्रेन डकैती के सम्बन्ध में हुई साथियों की गिरफ्तारी से काफी क्षति पहुंचती है। उसे फिर से संगठित करने और आगे बढ़ाने पर विचार करने के लिए दल के सदस्य दूर दूर से आये हैं— भगतसिंह सुखदेव चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण, शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा, जतीन्द्र घोष शालिग्राम बटुकेश्वरदत्त आदि आदि। देश की आजादी का जो व्रत इन्होंने लिया है वह उनके सामने है। इस लक्ष्य की सिद्धि में उन्होंने बहुत से साथी खो दिये हैं पर युद्ध जारी है। विजयकुमार के शब्दों में —

'शत्रु का दमनचक्र हममें से हरएक को खत्म कर सकता है पर वह उस युद्ध को खत्म नहीं कर सकता, जिसे हमने छेड़ा है। वह जारी रहेगा। देश की आजादी का लक्ष्य चाहे वह कितनी दूर हो हमारे करीब आ रहा है। इसी अटल विश्वास को लेकर हम सब यहां इकट्ठे हुए हैं। युद्ध के विश्रामकाल में ह भावी युद्ध का एक नकशा बना लेना चाहते हैं।

चन्द्रशेखर आजाद कहते हैं "मैं अपने आपको आजादी का एक सिपाही मानता हूं। युद्ध के जिस मोरचे पर लड़ने का आदेश हो, मैं तैयार हूं। इससे तिल भर भी खिसकने की बात आप नहीं सुनेंगे चाहे शरीर की बोटी बोटी मैदान में बिखर जाय।"

भगतसिंह बोलते हुए कहते हैं हाल की घटनाओं ने हमारे संगठन को भारी क्षति पहुंचाई है। सब तरह के अभावों से हम घिर गये हैं। बहुत दिनों के हमारे प्रयत्न अस्तव्यस्त हो गये हैं परन्तु इससे क्या हम हताश हो जायेंगे? ऐसा होता तो हम यहां इकट्ठे न होते। हमारे जिस घोर विनाश जिस पवित्र उद्देश्य के लिए दृढ़संकल्प हैं, वह इतना ऊंचा और भव्य है कि हम उसे छोड़ नहीं सकते धर्म जाति और प्रान्तों की सीमाएं हमारे काम में बाधा न पहुंचा सकेंगी।" — —

इस प्रकार "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी" का संगठन पुन [illegible] देश के

विद्यार्थी जी कहते हैं "प्रताप संकटों में ही जन्मा और संकटों में ही बड़ा हुआ है। संकटों से अब उसे भय नहीं रहा है।' मिश्र जी के शब्दों में "हुकूमत" प्रताप "को दबाइने पर तुली हुई है।" और "प्रताप" उसे समुद्र पार भेजने के लिए कृतसंकल्प है। इसी समय पोस्ट से दो हजार का ड्राफ्ट आ जाता है। दाता का नाम नहीं है। सबको इस बात का हर्ष होता है कि जनता जनार्दन ने इस पत्र को छाती से लगा लिया है। अब वह मर नहीं सकता। इसी समय हिन्दुकुमारी आगन्तुक के रूप में भगतसिंह नौकरी के लिए प्रवेश करता है। यह निस्पृह युवक केवल देश की सच्ची सेवा की उत्कट भावना लेकर ही प्रताप" कार्यालय में आया है। यह स्थल नाटक का एक मार्मिक स्थल है देखिए:—

आगन्तुक— आप मेरी आवश्यकताओं की ओर न देखें सिर्फ कोई काम बता दें?

विद्यार्थी जी— फिर भी आप जैसे शिक्षित नवयुवक को पचास साठ मासिक तो चाहिए ही।

आगन्तुक— नहीं १०–१० लेकर मुझे क्या करना है? दोनों समय किसी तरह पेट भर जाय। बस, इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए।

विद्यार्थी— ऐसा है।

आगन्तुक— जी, मेरी इच्छा तो आपके चरणों में रहकर कुछ काम करने की है। आपसे कुछ सीख लूं गा यह मेरा सौभाग्य होगा।

विद्यार्थी जी— अच्छा, तो आप आज से प्रताप परिवार के सदस्य हो गये। हम खायेंगे तो आप भी खायेंगे और हम भूखे रहेंगे तो आप भी रहेंगे।"

विद्यार्थी जी— भगतसिंह के वचनों पर मुग्ध हो जाते हैं और बलवन्त के नाम से नौकरी प्रारम्भ कर देते हैं। उधर घर में उनकी खोज मच जाती है। उन्हें विवाह के बन्धन में बांधने की तैयारी हो रही है। लेकिन इस प्रकार भाग कर उन्हें यह बताना जरूरी था कि वह घर बसाने के लिए नहीं देश बसाने के लिए पैदा हुआ है। तभी तो देशसेवकों के घर जन्मा है। नेशनल कालेज में ही उसे भगवतीचरण राजगुरु सुखदेव, यशपाल जैसे साथी मिले हैं। अतः देश सेवा के धनी को घर से भागने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था। 'प्रताप' कार्यालय में ही उनकी मुलाकात साथी बटुकेश्वरदत्त से होती है। दोनों के समान उद्देश्य हैं। नवीन जी और रामीलाल जो बाहर चले जाते

है और "प्रताप' के सम्पादकीय तथा उसके प्रकाशन का सारा भार भगतसिंह पर आ जाता है। इस प्रकार प्रथम दृश्य में ही भगतसिंह तथा १९२४ के राजनैतिक संघर्ष की झांकी मिल जाती है। संघर्ष का वातावरण बनता जाता है। हमारा ध्यान उन वीरों की ओर खिंचता जाता है जिन्होंने क्रान्ति के पौधों को अपने रक्त से सींचा है। —

इस अंक के दूसरे दृश्य में ईस्वी सन् १९२९ की ग्रीष्म ऋतु में कानपुर की एक सुनसान बस्ती में एक पुराना सा मकान है। 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी" के कार्य को काकोरी ट्रेन डकैती के सम्बन्ध में हुई साथियों की गिरफ्तारी से काफी क्षति पहुँचती है। उसे फिर से संगठित करने और आगे बढ़ाने पर विचार करने के लिए दल के सदस्य दूर दूर से आये हैं— भगतसिंह, सुखदेव चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण शिव वर्मा, विजयकुमार सिन्हा, यतीन्द्र नाथ, शालिग्राम बटुकेश्वरदत्त आदि आदि। देश की आजादी का जो व्रत इन्होंने लिया है वह सबके सामने है। इस लक्ष्य की सिद्धि में उन्होंने बहुत से साथी खो दिये हैं, पर युद्ध जारी है। विजयकुमार के शब्दों में —

"शत्रु का अत्याचार हममें से हरएक को खतम कर सकता है पर वह उस युद्ध को खत्म नहीं कर सकता जिसे हमने छेड़ा है। वह जारी रहेगा। देश की आजादी का लक्ष्य चाहे वह कितनी दूर हो, हमारे करीब आ रहा है। इसी अटल विश्वास को लेकर हम सब यहां इकट्ठे हुए हैं। युद्ध के विश्रामस्थल में व भावी युद्ध का एक नक्शा बना लेना चाहते हैं।

चन्द्रशेखर आज़ाद कहते हैं "मैं अपने आपको आजादी का एक सिपाही भर मानता हूं। युद्ध के जिस मोरचे पर लड़ने का आदेश हो मैं तैयार हूं। इससे तिल भर भी खिसकने की बात आप नहीं सुनेंगे चाहे शरीर की बोटी बोटी मैदान में बिखर जाय।'

भगतसिंह बोलते हुए कहते हैं 'हाल की घटनाओं ने हमारे संगठन को भारी क्षति पहुँचाई है। सब तरह के अभावों से हम घिर गये हैं। बहुत दिनों के हमारे प्रयत्न अस्तव्यस्त हो गये हैं परन्तु इससे क्या हम हताश हो जायेंगे? क्या इसीलिए हम यहां इकट्ठे न होते। हमारे दिल और दिमाग जिस पवित्र उद्देश्य के लिए दृढ़संकल्प हैं, वह इतना ऊँचा और महान् है कि हम उसे छोड़ नहीं सकते — कोई शक्ति और इन्सानों की सीमाएं हमारे काम में बाधा न पहुँचा सकेंगी।'

इस प्रकार 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' का संगठन कुछ नेताओं के हाथ के

नेतृत्व के लिए तैयार होता है। कई नामों से हर प्रदेश में अलग अलग नाम रखकर काम प्रारम्भ होता है। शक्ति संचय के प्रयत्न चलते हैं। पुलिस की यंत्रणाएं सहने की परीक्षाएं होती हैं। धर्म-दल का उद्देश्य कोरे आतंकवाद से शत्रु को डराना ही नहीं, ठोस जन-जागृति का कार्य करना है। देश के नेता भी उनसे भय खाते हैं कि कहीं वे अपने कार्यों से उनके नेतृत्व को फीका न कर दें। लेकिन क्रान्तिकारियों को नेताओं की परवाह नहीं। उन्हें केवल यही डर है कि कहीं इससे जनता गुमराह न हो जाये। इसलिए भिन्न भिन्न नामों से इसी की शाखाएं क्रान्तिकारियों के देशप्रेम स्वतन्त्रता के महान बढ़ावों तथा बलिदान से प्रभावित कराने के उद्देश्य से स्थापित होती हैं।

इस दृश्य में क्रान्ति के लिए तैयारियों का प्रारम्भिक रूप दिखाई देता है। दल के कार्यकर्ता संस्कृति धर्म, सम्प्रदाय जाति पांति को छोड़ स्वदेश-प्रेम की पावन अग्नि में कूदते हैं। वे ऐसा कोई भी चिन्ह धारण नहीं करना चाहते जिससे किसी प्रकार का भेद भाव प्रकट हो। केशों से चोटी दाढ़ी इत्यादि साफ की जाती है यज्ञोपवीत तोड़ दिया जाता है। अब सबस्यगण हिन्दू मुसलमान सिक्ख क्रिश्चियन न रहकर सभी भारतीय बन जाते हैं। राष्ट्र-धर्म में दीक्षित हो जाते हैं। धर्म दल के उद्देश्य स्पष्ट करते हुए भगतसिंह कहते हैं —

' कुर्बानी शक्ति से काम करके हमें देश की रगों में खून खौला देना है। सोतों हुओं को जगा देना है। दुश्मन को यह बता देना है कि हर जगह उसके लिए हमारा मोर्चा तैयार है। हर जगह मुझे संगठन प्रचार और सहायता के लिए हमारी बैठक कर होंगे ...।'

यह कोई साधारण अभियान नहीं है पुलिस भी सतर्क है तब योजनाबद्ध कार्य की तैयारी होती है। इस दृश्य में भगतसिंह चन्द्रशेखर आजाद, और राजगुरु इत्यादि के क्रान्तिकारी चरित्र उभर कर ऊपर उठते हैं। आगे के कार्य के प्रति हमारी जिज्ञासा जागृत होती है।

तीसरे दृश्य में सन् १९२९ में आगरा के नूरी दरवाजे के भीतर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट, रिपब्लिकन आर्मी की छावनी का शिविर देख पड़ता है। आजाद भगतसिंह विजयकुमार, जयप्रकाश, वैशम्पायन सदाशिवराव, सुखदेव भगवानदास इत्यादि उपस्थित हैं। इसमें भोजन का दृश्य है। हर प्रकार के अभाव होते हुए भी देश के लिए मर मिटनेवालों में त्याग और उत्सव की भावनाएं उभरी हुई हैं। तब आजाद में

अपनी मृत्यु की नाना प्रकार की कल्पनाएं कर रहे हैं। पत्ता खड़कते हैं। योगेश दादा को पुलिस के पंजे से छुड़ाने की योजनाएं बनती हैं।

चौथे दृश्य में लाहौर के शालीमार बाग में १६२६ के अक्तूबर महीने का सायंकाल चित्रित किया गया है। पार्क के एकान्त कुंज की छाया में भगतसिंह, भगवतीचरण और सुखदेव घास पर बैठे हैं। सायंकाल हो चुका है। वे चुपचाप दल की गतिविधि की बातें कर रहे हैं। उस पार्क के कुंजों तले प्रेमियों के युगल तथा मित्रों के दल आते हैं और भिन्न भिन्न प्रकार की बातचीत करते हैं। इसी बाग में दो बूढ़ों द्वारा लेखक ने भगतसिंह के नेतृत्व में होनेवाले क्रान्तिकारी कामों की झाँकियां दिखाई हैं। इससे क्रान्तिकारियों के प्रति जनता के भाव दिखाये गये हैं। रामलीला में एक बम फटता है जो शायद किसी मुसलमान गुण्डे के द्वारा हुआ है। लेकिन इसका नाम क्रान्तिकारियों के जिम्मे लगाया जाता है। पुलिस सरगर्मी से खोज करती है। उसकी आड़ लेकर क्रान्तिकारियों की पकड़ का वातावरण फैलाती है।

दूसरे अंक के प्रथम दृश्य में लाहौर में क्रान्तिकारियों का शिविर दिखाया गया है। १६२८ के दिसम्बर का मध्य और दिन का तीसरा पहर है। साइमन कमीशन के बहिष्कार के जुलूस का नेतृत्व करते हुए पुलिस के लाठी-प्रहार से आहत लाला लाजपतराय की मृत्यु सत्तरह दिन में ही हो गई है। इस दुःखित दुर्घटना से राष्ट्र प्रेमी जनता के मन में एक प्रकार का अंधकार सा छा गया है। इसी सिलसिले में अगला कदम उठाने के लिए एच० एस० आर० ए० की बैठक बुलाई गई है। इस बैठक में लाला लाजपतराय की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का निर्णय किया जाता है। सब इसे राष्ट्रीय अपमान समझते हैं और इसलिए बदला लेने में कोई कसर नहीं रखना चाहते। इस निर्णय के साथ एक बहुत बड़ा मोर्चा जुड़ता है। राजगुरु अकेले ही लाला जी की हत्या का बदला लेने को कटिबद्ध हैं :—

"राजगुरु — लाला जी का बदला तो मैं अकेला ही ले सकता हूं। एच० एस० आर० ए० का मोर्चा इस छोटे से काम के लिए खोलने की क्या जरूरत है ?"

इस पर भगतसिंह कहते हैं, ' — इस समय मंजे हुए सिपाहियों की हमारे लिए बड़ी कीमत है। हम किसी एक को भी बिना पूरी चौकसी के खतरे में नहीं झोंक सकते।"

जिस व्यक्ति ने लाला जी की हत्या की है उसे मौत की सजा दी जाती है।

भगतसिंह कहते हैं हम बेकरके मुले प्रसम्बली में बम फेंकेंगे और भारत की कोटि कोटि जनता के नाम एक संदेश प्रचारित करेंगे ताकि लोगों को गलतफहमी न हो और सरकार को बेकसूरों को फंसाने का मौका न मिले।

इस प्रकार लेखक ने क्रान्तिकारियों की देशप्रेम व राष्ट्र के लिए सर्वस्व बलिदान की भावनाएं व्यक्त की हैं।

दूसरे दृश्य में लाहौर में क्रान्तिकारियों का शिविर दिखाया गया है। १६२८ के मध्य दिसम्बर के एक ऐतिहासिक दिन का तीसरा पहर है। शिविर में पूर्व दिन जैसी चहलपहल नहीं है। आजाद भगतसिंह राजगुरु सुखदेव इत्यादि सबके मुह पर संजीदगी और चिंता है। भगतसिंह "टाम काका की कुटिया नामक फिल्म देखकर आये हैं। अमरीका में हब्शी गुलामों पर होने वाले अत्याचारों और उनकी स्वतन्त्रता की लड़ाई का यह चित्र देखकर सबको उबाल आता है। स्काट और सैण्डर्स की हत्या करने की योजनाएं बनती हैं और भगतसिंह तथा सुखदेव यह कार्य पूरा करने में सफल होते हैं। फिर साथियों को लाहौर से भेजने में शीघ्रता की जाती है और क्रान्तिकारियों तथा ब्रिटिश नौकरशाही सरकार में युद्ध प्रारम्भ हो जाता है।

तीसरे दृश्य में कलकत्ता, सेठ छाजूराम का बंगला १६२८ दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह की एक रात चित्रित की गई है। सुशीला दुर्गा, भगवतीचरण और भगतसिंह लाहौर से बच निकलने की बातचीत करते हैं। दुर्गा बताती है कि किस प्रकार भगतसिंह साहबी वेश में तथा वह मेम साहब का रूप धारण कर बच्चे को साथ ले फर्स्ट क्लास के डिब्बे में सफर कर लाहौर से साफ निकले थे। राजगुरु ने अर्दली का काम किया था। लाहौर काण्ड की सब जगह चर्चा है; जनता के उत्साह का तो कहना ही क्या? नेता लोग भी भीतर ही भीतर खुश हैं पर ऊपर से क्रान्तिकारी दल की कार्यवाही पर नाक भौं सिकोड़ते हैं।

चौथे दृश्य में दिल्ली फीरोजशाह के किले के खंडहर दिखाये गये हैं। १६२६ की फरवरी की एक रात है। एच० एस० आर ए० की केन्द्रीय समिति के सदस्य नियत समय पर एक एक कर किले के खंडहर में एकत्र होते हैं। सबके आ जाने पर भगतसिंह खड़े होकर क्रान्तिकारी दल की स्थिति स्पष्ट करते हैं। इनकी बातों से तत्कालीन राजनैतिक स्थिति स्पष्ट होती है। लेखक ने बड़े कौशल से देश की स्थिति पर प्रकाश डाला है देखिए—

"भगतसिंह— साथियो, बाधाओं और कठिनाइयों के बावजूद आज हमारी स्थिति दृढ़ है। आपरे का काम पूरा हो गया है। अब हम दिल्ली में आ गये हैं। उत्पादन-केन्द्र हर प्रदेश के लिए अलग अलग बनाने की व्यवस्था हो गई है... साइमन कमीशन को हम अपने लोहड़े भेंट नहीं कर सके और वह इस देश से जाने की तैयारी में है। इसका मलाल ही रह गया। वह हमारी भावनाओं को समझ कर जाता तो अपनी रिपोर्ट सही ढंग से बनाने में उसे जरूर मदद मिलती। असेंबली में कहने को तो जनता के प्रतिनिधि हैं पर होता वही है जो सरकार चाहती है। हमारे प्रतिनिधि किसी जनविरोधी या दमनकारी कानून के खिलाफ राय देकर उसे अमान्य कर दें, तो भी सरकार उसे विशेष आदेश से अमल में ले आती है। ऐसे ही दो बिल "औद्योगिक विवाद" और 'सार्वजनिक सुरक्षा' असेम्बली द्वारा रद्द कर दिये गये हैं पर सरकार विशेष कानून द्वारा उन्हें कानून बना देगी। एक हमारे श्रमिकों के शोषण को खुली छूट देगा तो दूसरा हमारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेगा ...।"

इस पर विजयकुमार स्पष्ट करते हैं कि तत्कालीन परिस्थितियों में एच॰ एस॰ आर॰ ए॰ का कर्तव्य जनता के हितों की रक्षा ही उचित है। असेम्बली जिन बिलों को रद्द कर दे, वे कानून न बन सकें यह बात सरकार के बहरे कानों को सुनाने के लिए क्रान्तिकारी जनता का ध्यान अपनी ओर खींचना चाहते हैं। ज्योंही सरकार असेम्बली के बहुमत का तिरस्कार करके मनमानी की घोषणा करे उसी समय असेम्बली में विस्फोट किये जायें और इस तरह लोक-भावना को व्यक्त किया जाय।

इस कार्य के लिए कौन जाय? इस प्रश्न पर देर तक वाद विवाद होता है। हर साथी जाने का आग्रह करता है। अन्त में असेम्बली में बम फेंकने का उत्तरदायित्व भगतसिंह पर सौंपा जाता है।

छठे दृश्य में १९२९ के सायंकाल नई दिल्ली में असेम्बली के एक माननीय सदस्य की कोठी में असेम्बली में बम-विस्फोट के बाबत चलकर, मोतीलाल नेहरू और सैफुद्दीन किचलू बैठे चर्चा कर रहे हैं। उनके अनुसार असेम्बली द्वारा तिरस्कृत बिलों को कानून बना देने के कारण ही यह विस्फोट हुआ था। भगतसिंह और दत्त दोनों बम फेंक कर इन्कलाब के नारे लगाते रहे। उनके रिवाल्वर में काफी गोलियां थीं किन्तु उन्होंने किसी को शूट नहीं किया। भगतसिंह को लगा कि पिस्तौल उसके हाथ में है। इसी से शायद पुलिस पास नहीं आ रही है। उन्होंने पिस्तौल को फेंक दिया और खाली

हाथ खड़े हो गये और तब सार्जेंट मेरी ने आगे बढ़ कर उन्हें गिरफ्तार किया।

इस दृश्य में लेखक ने क्रान्तिकारी दल के गुप्त इरादों को प्रकट किया है। क्रान्तिकारियों ने बड़ी बहादुरी से जनभावना को व्यक्त किया और गुलामी की जंजीरें तोड़ने में जन-मानस को प्रेरित किया; लेकिन विदेशी अंग्रेजी सरकार ने उनके इरादों को बुरे से बुरे रूप में प्रस्तुत किया और उनके नैतिक साहस को भंग करने के लिए कमीने हथकण्डों का प्रयोग किया। लेखक ने दिखाया है कि भगतसिंह तथा उनके साथी उत्कट देश प्रेम के वशीभूत थे और उनके साहस ने अंग्रेजों को हिला दिया।

सातवें दृश्य में १६ सितम्बर १९२९ का एक सायंकाल चित्रित है। पंजाब गवर्नर ने लाहौर षड्यन्त्र-सम्बन्धी समस्त कागजात तलब किये हैं। एक अधिकारी गुप्त फाइलों का परीक्षण करता है। लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप से भगतसिंह के चरित्र और पुलिस में छाये आतंक को प्रकट किया है। अंग्रेज सरकार की नीति तथा भारतवासियों के प्रति दुर्व्यवहार के भी चित्र हैं। सरकार की कमजोरी स्पष्ट कर दी गई है। इसका एक मार्मिक स्थल इस प्रकार है —

"अधिकारी— १७ जुलाई भगतसिंह द्वारा अदालत के सामने पुलिस के दुर्व्यवहार की बकवास। उपेक्षा बरती जाने पर मुकदमा दूसरी अदालत में ले जाने की धमकी। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से भगतसिंह की झड़प। उदण्डता के लिए अदालत द्वारा बन्दियों के लिए दण्ड की घोषणा।

गवर्नर— स्वजनों और अखबारों की सुविधा छीन ली नहीं न ? बहुत हल्का दंड। इससे इनके हौसले बढ़े हैं।

अधिकारी— जरूर श्रीमन्। यह अंग्रेज सरकार है जो इतना मौका देती है। मुगलिया हुकूमत से पहले ऐसा होता तो कभी के ये सब अहन्नुम रसीद कर दिये जाते।

गवर्नर— बिल्कुल सही। मुसलमानों के शासन का तरीका ही इस देश के लिए मौजूं था। कोई कानून नहीं, कोई न्याय नहीं। विद्रोही को पकड़ा और सिर कलम।"

गवर्नर के द्वारा जो प्रश्न लेखक ने कहलवाये हैं उनसे भगतसिंह का चरित्र स्पष्ट होता है —

"भगतसिंह का चेहरा आकर्षक और बुद्धिमत्तापूर्ण निहायत गंभीर और शान्त। उसकी बातचीत और दृष्टि में तत्परता। यतीन्द्रनाथ तो और भी मृदुल तथा एक कन्या की तरह कोमल और सुशील एक बम कूर और बनावटी। ये कांपते वाले ये

गांधीवादी अहिंसा और सत्य के पुजारी भी बनते हैं और हिंसक हत्यारों की प्रशंसा करते भी नहीं थकते हैं ।"

गवर्नर की कन्या तक देशभक्तों के शौर्य साहस, वीरता और देश के लिए होने वाले अपूर्व बलिदान से सहानुभूति रखती है। अ ए ब सरकार द्वारा क्रान्तिकारियों पर होनेवाले अत्याचारों को दृष्टि में रख कर वह विदेशी कन्या तक कहती है :—

"कन्या— उसका साहस गजब का है न पापा। ६३ दिन का लम्बा अनशन ! इतिहास में अनोखा !

गवर्नर— (अचकचाकर) तुम ऐसा कहती हो, मेरी बच्ची ?

कन्या— क्यों न कहूं ?

गवर्नर— वे खूनी हैं विद्रोही हैं।

कन्या— (अनसुनी करके) पापा मैं यतीन जैसे देशभक्त के लिए आंसू न रोक सकी।

गवर्नर— क्या ?

कन्या— वही यतीनदास जिसकी शव यात्रा का पथ लाहौर से कलकत्ता तक फूलों और आंसुओं से भरा था। वह उसका हकदार था पापा, क्या वह नहीं था ?

गवर्नर— ओह, सबसे बड़ी गलती जो सरकार ने की वह यह थी। उसका मृत शरीर देना नहीं था। उन्होंने उससे पूरा फायदा उठाया। उन्होंने सारे देश में आग बरसा दी है (अधिकारी के प्रति) एक आदेश लिखो इसकी पुनरावृत्ति एक दम वर्जित। बंदियों के शव उनके घर वालों को दे देने की प्रथा समाप्त।

कन्या— पापा पापा सर्वाधिक क्रूर और अमानुषिक आदेश। कृपया इसे रद्द कर दीजिए।

गवर्नर— शासन इसी तरह होता है ... हमें तो अपने देश का हित देखना है ।"

अधिकारी के निम्न शब्दों में देशभक्त यतीन के प्रति श्रद्धांजलि बड़े मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त हुई है :—

"यतीनदास, ओह ! बेचारा ! बन्दियों के अधिकारों की रक्षा के लिए बलिदान हो गया। उस दिन गवर्नर साहब चुपचुप लाहौर गये थे तभी मैंने उसे देखा था। कितना शान्त और सौम्य, परन्तु कितना बहादुर। उसने झुकने से इन्कार कर दिया, अपरिचित

की जमानत से मिली रिहाई को ठुकरा दिया। मुट्ठी भर हड्डियाँ और विरक्त दिन का उपवास। हिन्दुस्तान की धरती तुम्हें मैं सिर झुकाता हूँ, जो ऐसे सपूतों को जन्म दे रही है।"

इस दृश्य में लेखक ने क्रान्तिकारियों के चरित्र को अंग्रेजों तथा पुलिस अधिकारियों के मुख से उभारा है। देश के प्रति उनके अनन्य अनुराग और बलिदान की भावनाओं को अभिव्यक्त किया है। गवर्नर की अबोध और निश्छल हृदया कन्या के मुख से जो वाणी निःसृत हुई है उससे प्रकट होता है कि विदेशियों तक के हृदय में भारतीय क्रान्तिकारियों के प्रति कितना अनुराग था।

तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में लाहौर बहावलपुर रोड पर क्रान्तिकारियों का नया निवास दृष्टिगोचर होता है। २८ मई १९३० दिन का तीसरा पहर है। लाहौर षड्यंत्र के सभी बंदियों को बीच अदालत से छुड़ा कर ले आने की योजना पर दल का निर्णय हो चुका था। पूरे साधन न जुट सकने से जब वैसा संभव न हो सका तो प्रतीकस्वरूप दल के दोनों अभियुक्तों— भगतसिंह और दत्त— को छुड़ाने का विचार किया गया। इसी को पूर्ण करने के हेतु एक एकान्त में बहावलपुर रोड पर एक बंगला किराये पर लिया गया है जिसमें एक सम्पन्न परिवार के रूप में आज़ाद, भगवतीचरण, यशपाल, वैशम्पायन दुर्गा, सुशीला तथा अन्य साथियों ने आसन जमाया है। यह तय हो चुका है कि बोर्स्टल जेल से बन्दियों के निकलते ही आक्रमण करके उन्हें पुलिस के हाथों से छीन लिया जायगा और मोटर में बिठाकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया जायगा।

इस दृश्य में बम का परीक्षण करते समय फट जाने से हरी भाई की मृत्यु तथा सुखदेवराज का घायल होना चित्रित किया गया है। इस मृत्यु से दुर्गा और सुशीला पर भी बड़ा आघात पहुँचता है। आज़ाद उन्हें अपनी माँ बहिन से बढ़ कर मानने का आश्वासन देते हैं। मरते मरते तक हरी भाई को यह अफ़सोस रहा कि वे भगतसिंह को छुड़ाने में योग नहीं दे सके। आज़ाद तक ऐसे कर्मनिष्ठ सर्वस्व त्यागी वीर पर आँसू बहाते हैं। उनका अन्तिम अनुरोध था कि एक्शन न रुके।

दूसरे दृश्य में लाहौर की सेन्ट्रल जेल में ७ अक्टूबर १९३० का एक सायंकाल दिखाया गया है। लाहौर षड्यंत्र केस के लिए नियुक्त ट्रिब्यूनल ने आज अपना फैसला सुना दिया है। यह समाचार अग्नि की तरह बोर्स्टल जेल से सेन्ट्रल जेल की चहार दीवारी के अन्दर पहुँच गया है। कैदियों ने खाना लेने से इन्कार कर दिया है और वे

"भगतसिंह जिन्दाबाद" के नारे लगाते हुए वापस लौट आये हैं। इसमें जेल के अधिकारियों की हलचल चित्रित की गई है। जेलर के ये शब्द सरकार के अधिकारी वर्ग में फैले हुए हंगामे को व्यक्त करते हैं :—

"जेलर— जेल के बाहर और भीतर एक तूफान उठ खड़ा हुआ है। आपके (अर्थात् सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब के) इकबाल से जेल के अन्दर हम उसे इस तरह नेस्तनाबूद कर देंगे कि उसका निशान भी बाकी नहीं रहेगा।

तीसरे दृश्य में इलाहाबाद के हीवेट रोड के एक एकान्त रेस्टोरां में तीन नवयुवकों के माध्यम से २७ फरवरी, १९३१ की दोपहर से पहले की कुछ घटनाएं दिखाई गई हैं। इसमें आजाद की मृत्यु का रोमहर्षक चित्रण है। लेखक ने भारत व्यापी गुप्त क्रान्ति की एक लम्बी परम्परा दिखाई है। भारत में सिपाही विद्रोह, बंगीय क्रान्ति, दिल्ली और पंजाब के षड्यन्त्र व दूसरे क्रान्ति के प्रयत्न भारत से अंग्रेजों को निकालने के ही प्रयत्न थे। दो मित्रों के वार्तालाप में आजाद और पुलिस के गोलीकांड का यह चित्रण देखिये —

"पहला युवक— मैं तो दूर था। वह पुरुषसिंह आराम से बैठा अपने साथी से बातों में तन्मय था।

दूसरा युवक— बिल्कुल बेखबर ?

पहला युवक— फिर भी पुलिस की मोटर पास आते ही वह एकदम उछला और चारों ओर से धनाधन गोलियां छूटने लगीं। पुलिस कप्तान की पहले से चली हुई गोली उसके लगी साथ ही उसकी गोली ने कप्तान की कलाई बींध कर पिस्तौल दूर गिरा दिया, परन्तु पुलिस टिड्डी दल की भांति उसे घेर चुकी थी। गोलियां खाकर भी वह वीर पिस्तौल चलाये जा रहा था। उसकी आखिरी गोली एक बड़े पुलिस अधिकारी के मुँह में धंस गई...।

दूसरा युवक— आजाद के आजाद थे? क्रान्ति की जीवन्त मूर्ति, आजाद! हाय, तो क्या अब उनके दर्शन भी नहीं हो सकेंगे? अब उनके बिना भगतसिंह को कौन छुड़ायेगा?"

लेखक ने आजाद की मृत्यु पर होने वाले देशव्यापी दुःख को भावुकता से अभिव्यक्त किया है। इसमें पुलिस की कोई बहादुरी नहीं है क्योंकि एक ओर पुलिस की पूरी बटालियन थी और दूसरी ओर अकेले आजाद। अनायास प्रहार हो जाते हैं और इस

बात को पुलिस के सिर पर भारी कलंक समझा जाता है। असेम्बली कांड के बन्दी, जसवांव के वादी तथा अन्य क्रान्तिकारी जो पकड़े जाते हैं, व पुलिस की योग्यता के प्रमाण नहीं माने जा सकते क्योंकि उनमें से अधिकांश अपने आप को स्वयं ही सौंप देते हैं, या दुर्भाग्यवश चक्कर में आ जाते हैं।

पांचवें दृश्य में लाहौर, सेन्ट्रल जेल के भीतर फांसीघर का आहाता २३ मार्च १९३१ दिन के तीसरे पहर दिखाया गया है। इस दृश्य में "अंगारों की मौत" नाटक की चरम सीमा पहुंचती है।

फांसी की सजा पाये हुए बन्दियों में भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु अपनी अपनी कोठरियों में मौजूद हैं। वहीं समीप दूसरे लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्त करतारसिंह जहांगीरालाल यशपाल और जयप्रकाश भी बन्द हैं। आज अदालत से उन्हें जल्दी ही लौटा दिया गया है और उनकी कोठरियों में बन्द कर दिया गया है। तीसरे पहर तक जेल के सभी बन्दी बारकों में भेज दिये गये हैं और सब जगह कड़ा पहरा लगा दिया गया है। अन्य दिनों से भिन्न हलचल से बन्दियों को किसी नई घटना का आभास हो रहा है। भगतसिंह अपनी कोठरी के दरवाजे पर खड़े खड़े सोच रहे हैं —

"आशाएं आकांक्षाएं सब समाप्त हो चुकी हैं। इन कपड़ों को छोड़कर अपनी कही जानेवाली किसी चीज़ को मैंने नहीं रखा है। सब बांट दी हैं। मोह का दायरा संकरा हो गया है। वह इस शरीर तक सीमित भर रह गया है। कुछ घंटों बाद इस शरीर का मोह भी छूट जायेगा। जीवन की वह चरम शान्त अवस्था होगी।

इसी प्रकार राजगुरु और सुखदेव भी देश के लिए बलिदान का सुख संतोष अनुभव करते हुए साहस और निर्भयता से मरने के लिए तैयार होते हैं। सुखदेव महात्मा गांधी को पत्र लिखते हैं कि अगर आप हमारी सहायता नहीं कर सकते, तो कृपया हम पर रहम कीजिए और हमें अकेला छोड़ दीजिए। आप अपनी अपीलों के द्वारा हममें फूट और विश्वासघात के बीज बो रहे हैं। आपकी अपीलें क्रान्तिकारियों के प्रति उत्पन्न हो रही सार्वजनिक सहानुभूति और सहायता की भावना को नष्ट कर रही हैं और सरकार उसके साथ खड़ा कर हमें कुचल रही है।'

भगतसिंह समझते हैं कि महात्मा जी इन तथ्यों से अनजान नहीं हैं लेकिन जनता को क्रान्तिकारियों का दृष्टिकोण स्पष्ट करने के लिए ऐसा पत्र लिखना आवश्यक समझा जाता है। भगतसिंह मरने से पूर्व क्रान्तिकारी लेनिन के विचार पढ़ते हैं, उन्हें हृदयङ्गम

लगाई जाती है और आज़ादी के गीत गाते हुए फांसी के तख्ते पर चढ़ जाते हैं। यह दृश्य इस नाटक की चरम सीमा कहा जा सकता है।

अंतिम दृश्य में सरदार भगतसिंह के पिता सरदार किशनसिंह का पुत्र की मृत्यु पर विलाप दिखाया गया है जो करुण रस से ओतप्रोत है। इस नाटक का नायक भगतसिंह है। निम्नलिखित शब्दों में लेखक ने भगतसिंह का महत्व भर दिया है :—

"सन्तानन— गांधी और जवाहर के नाम से भी अधिक आज भगतसिंह का नाम लोगों में प्रिय हो गया है। उसकी इस ख्याति से अंग्रेज सरकार भी डरती है।

राम— मैं कहता हूं जीवित भगतसिंह से उन्हें कम खतरा है। मृत भगतसिंह ब्रिटिश सिंह को कच्चा ही चबा जायगा। सारे देश में घर घर गली गली भगतसिंह पैदा हो जायेंगे।"

और इन्हीं वाक्यों को पूरे नाटक का मुख्य भाव कहा जा सकता है। लेखक ने चित्रित किया है कि क्रान्तिकारियों के बलिदान व्यर्थ नहीं गये अपितु इन फांसियों ने ब्रिटिश सरकार की बुनियादों को हिला दिया। भारत ने इन बलिदानों का प्रतिशोध लिया और आज हम देखते हैं कि भारत से ब्रिटिश राज्य का अन्त हो चुका है।

नाटक का मूल भाव : क्रान्तिकारी मार्ग का चित्र प्रस्तुत करना —

"अंगारों की मौत" नाटक का मूल अभिप्राय भारतीय क्रान्ति का इतिहास प्रस्तुत करना ही रहा है। प्रमुख पात्रों सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद सुखदेव, राजगुरु और भगवतीचरण इत्यादि के माध्यम से लेखक ने भारत को आज़ाद करानेवाले विप्लववादियों के उद्देश्य नीति प्रधान काम, योजनाएं और दुःख-दर्द की मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। विप्लववादियों को दबाने के लिए सरकार ने क्या क्या षड्यन्त्र किये पुलिस को कैसे खतरे का सामना करना पड़ा, उन्हें निर्मूल करने के लिए कहां कहां मोर्चे लगे— यह सब तथ्य विस्तार से प्रकट किये गये हैं। कुल मिलाकर नाटक में भारत की सशस्त्र क्रान्ति का इतिहास और क्रान्तिकारी मूर्तिमान हो उठे हैं।

पूर्ण नाटक को पढ़कर एक बार स्मृतिपटल पर वे सब कठिनाइयाँ से भरे दृश्य घूम जाते हैं जो भारतीय वीरों को आज़ादी लाने के लिए अपने तन और मन पर सहने पड़े थे। इस नाटक की रचना कथोपकथन, और जोरदार दलीलों को पढ़कर हमें लुई माइकेल के ये शब्द याद हो आते हैं— स्वाधीनता के लिए तड़पनेवाले हृदयों को केवल एक ही अधिकार मिलता है— गोली को सीने में सीसे का टुकड़ा।"

भारत के अमर शहीद भगतसिंह चन्द्रशेखर आज़ाद और राजगुरु के बलिदान चित्र दिखलाकर इस बात की घोषणा करते हुए दिखाई देते हैं कि शहीदों के रक्त का एक एक बूंद का अंग्रेजों से बदला लिया जाय। नाटक समाप्त करते करते हम राष्ट्रीयता, स्वदेश-प्रेम और बलिदानों का बदला लेने को आतुर हो उठते हैं।

नाटक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

लेखक का उद्देश्य कांग्रेस के अन्तर्गत आतंक-मार्ग का अनुसरण करनेवाले दल का इतिहास और क्रान्ति की चेष्टा प्रस्तुत करना रहा है। कांग्रेस में एक दल ऐसे उग्र विचारवाले नेताओं का भी था, जो सरकार से खुलकर तो नहीं चुपचाप गुप्त तरीकों से संघर्ष कर रहे थे। इन्हें आतंक-मार्गी कहा जा सकता है। उनका विचार था कि जो ब्रिटिश सरकार विधानवाद की उपेक्षा करती है वह आतंकवाद से भयभीत होकर रहेगी। इस आतंकवाद की उत्पत्ति के मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार का भारत वासियों पर घोर दमन और अत्याचार था। विक्टोरिया की घोषणा के बाद से हिन्दुस्तान में रहनेवाले अधिकारियों का व्यवहार ऐसा भेद भाव मूलक स्वार्थपूर्ण तथा निर्दय रहा कि यहां खासकर साहसी राष्ट्रवादी युवक ही स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते रहे। भगतसिंह और आज़ाद राज में सभी क्रान्तिकारियों की तरह थे, जो अनुकूल हवा पाकर उग्र हो उठे और उन्होंने अंग्रेज सरकार की जड़ें तक हिला दीं। अनेक स्थानों पर गुप्त सभाएं, क्रान्तिकारी दलों द्वारा की जाती रहीं।

नाटक १९२४ से प्रारम्भ होकर २१ मार्च १९३१ को समाप्त होता है। ये सात वर्ष क्रान्तिकारी दल के जीवन के सबसे कठोर वर्ष थे। सन् १९१९ से १९२१ तक आतंककारी आन्दोलन महात्मा गांधी जी के अनुरोध से बन्द रहा था, पर सन् १९२२ में उनकी गिरफ्तारी के उपरान्त पुनः जोर शोर से प्रारम्भ कर दिया गया था। सरकारी अधिकारियों को गोली का निशाना बनाने शासन का तख्ता उलट देने के प्रयत्न, गुप्त योजनाएं बनाने डाका डालने का क्रम फिर से प्रारम्भ हो गया था। सरकार की ओर से भी षड्यन्त्र के मामले चलाये गये और सक्रिय या प्रमाणित क्रान्तिकारियों को कठोर दंड दिये गये। उनकी अनेक मार्मिक झांकियां इस नाटक में जब तब मिलती हैं।

लेखक ने भगतसिंह के चरित्र तथा कार्यों को लेकर नाटक का तानाबाना बुना है। पंजाब की 'नौजवान भारत सभा' तथा यू० पी० की "सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन" का एकीकरण होकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' बनी थी,

जिसका केन्द्र झांसी था। इसके दो प्रमुख नेता थे भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद। इस दल ने भारत की आज़ादी के लिए रोमांचकारी प्रयत्न किये अनेक प्रकार के कष्ट सहे, पुलिस से मोर्चे लिए। इन सबका उपलब्ध सामग्री के आधार पर इतिहास-सम्मत विश्लेषण लेखक ने प्रस्तुत नाटक में उपस्थित किया है। प्रायः इतिहास से सम्बन्धित नाटक शुष्क हो जाते हैं, उनमें औत्सुक्य भावना नहीं रह पाती किन्तु इस नाटक में एक ओर तो इतिहास का सुदृढ़ और अध्ययनपूर्ण आधार है दूसरी ओर मानवीय हर्ष, विषाद, करुणा, देशानुराग, कष्ट सहिष्णुता, और बलिदान की हृदयस्पर्शी कोमल संवेदनाओं का विश्लेषण है; भावमयता है; अनेक सरस भाव-भीने प्रसंग हैं।

हास्य रस का एक उदाहरण देखिए

प्रसंग भोजन का है। आटा दाल मंगा कर टिक्कड़ सेंकने की सोची है। उनके पास बरतन नहीं हैं। मिट्टी के कनस्तर में दाल बनाती है। बिल्कुल अघोरियों की तरह भोजन पक जाता है। आज़ाद सबसे पहले और भगतसिंह बाद में शामिल होते हैं। फूटी मटकी का कनस्तर जिसमें दाल बनी है लाकर बीच में रख दिया जाता है। उनके पास अधजली रोटियाँ। बिना हल्दी दाल का रंग धुंधला सा है। आज़ाद बड़ी बेतकल्लुफी से रोटी का टुकड़ा तोड़कर खाने लगते हैं भगतसिंह कुछ झिझकते हैं :—

"भगतसिंह— (हंसी के भाव को मन में छिपाकर) साथियो, हमारा भोजन किसी शाही भोज से कम नहीं है। तो क्यों न हम उसी तकल्लुफी अन्दाज से खावें, जिससे लखनऊ के नवाब और रईस खाते हैं।

चन्द्रशेखर— (हंसकर) जरूर, पर हम मजबूर लोग हैं। हमें तो पेट भर कर खाना है। नज़ाकत और नफासत में पड़ रहें तो

भगतसिंह— पर अमीरी अन्दाज भी कोई बुरा नहीं है। देखो ।"

वे बड़ी नज़ाकत से टिक्कड़ में से एक बिल्कुल चींटी सा टुकड़ा तोड़ते हैं, देखे कि कहीं बेचारे टिक्कड़ का दिल न टूट जाय और अपनी उंगलियों में खरोंच न आने पावे।

"भगवानदास— (खाते हुए उछलकर) खूब वाजिदअली शाह को भी मात दे दिया।

विजयकुमार— कोई नाजनी देख लेगी तो मुग्ध हो जायगी।

भगतसिंह— वल्लाह क्या लज़ीज़ खाना है। सुभानअल्लाह

विजय— (आँख मारकर) सबके सामने तेरी मजा के ।

विजयकुमार के ये शब्द कितने मधुर और मार्मिक हैं :—

'विजय— और मोहन चाँदनी रात में कहीं पार्क में चाँद को निहारते हुए पकड़े जायेंगे । सम्मोहन में निमग्न खुद पुलिसवालों से ही पूछ बैठेंगे लेकिन यार तुमने चाँद भी देखा है ? जरा ऊपर देखो ! ओह ! कितना प्यारा कितना सुन्दर है वह ।"

आज़ाद के पुलिस से मुकाबले का एक मार्मिक चित्रण इन शब्दों में किया गया है :—

'वह आराम से बैठा अपने साथी से बातों में तन्मय था ...फिर भी पुलिस को देखकर पास आते ही वह एकदम उछला और दोनों ओर से धनाधन गोलियाँ छूटने लगीं। पुलिस कप्तान की पहले से तनी हुई गोली उसके लगी, साथ ही उसकी गोली ने कप्तान की कलाई बींध कर पिस्तौल को दूर गिरा दिया परन्तु पुलिस टिड्डी दल की भाँति उसे घेर चुकी थी । गोलियाँ खाकर भी वह शेर पिस्तौल चलाये जा रहा था। उसकी आखिरी गोली एक बड़े पुलिस अधिकारी के मुँह में धंस गई ।"

भगतसिंह का वीरता और साहस से बातों के लिए आम जनता के 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे, भगतसिंह के पिता किशनसिंह का करुण रोदन आदि स्थल विशेष सफल और मार्मिक बन पड़े हैं ।

सम्पूर्ण नाटक आद्यन्त की प्रशस्त भावनाओं से परिपूर्ण है । राष्ट्रीय क्रान्तिकारियों का यह इतिहास अपने विषय तथा प्रतिपादन दोनों दृष्टियों से सफल सुन्दर और प्रभावशाली बना है । इसे लेखक की सर्वाधिक प्रभावशाली रचना कहा जा सकता है । व स्वयं राष्ट्रीय विचारों में अटल विश्वास रखनेवाले हैं और उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को इस नाटक के पात्रों के माध्यम से प्रकट होने का अच्छा अवसर मिला है ।

छठा खण्ड

राजस्थान में कहानी का विकास, उसमें लेखक का योगदान

राजस्थान में कहानी का इतिहास भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पुराना है। यहां बालसाहित्य के रूप में कहानी बहुत पुराने युग से चली आ रही है। राजस्थानी बाल-साहित्य का इतिहास तो सैकड़ों वर्ष पुराना है। प्राचीन मारवाड़ी साहित्य में अनेक कहानी बड़ी छोटी मोटी रचनाएं हैं, जिनमें कुछ लौकिक तथा कुछ अलौकिक हैं कुछ प्रेम तथा शृंगार सम्बन्धी हैं कुछ लोकप्रिय लोक नायकों के सम्बन्ध में हैं कुछ ऐतिहासिक शौर्य सम्बन्धी लोक गाथाएं हैं जिनकी प्रतिष्ठा लोक मानस में वाणों के रूप यौवन, शौर्य पराक्रम त्याग साहस और बलिदान आदि के कारण सहज ही प्रचलित हो गई हैं। यहां इन लोक गाथाओं का सुनना और सुनाना एक लोक परम्परा सी रही है।

लोककथा वार्ता और लोककथा संगीत में तो राजस्थानी साहित्य सम्पन्न है ही, इसके वीर वीरांगनाओं ने एक नया सिलसिला ऐतिहासिक कथाओं का यहां के साहित्य को प्रदान किया है। राजस्थानी चारणों की ख्यातों और दरबारी कवियों के ग्रन्थों में मर्यादित वीर गाथाओं का चयन हुआ है। कथा साहित्य के इस स्वरूप ने जिसमें "मुहणोत नैणसी री ख्यात" जैसे ग्रन्थ हैं, सारे भारत के लेखकों और कवियों को प्रेरणा दी है।

इन कथाओं और चरित्रों ने नया जीवन और नया प्राण भारतीय साहित्य के शरीर में फूंका है। प्राण हथेली पर रखकर जीवन-व्यापार में संलग्न वीर-वीरांगनाओं के चरित्र लेखकों के लिए अलौकिक ओज के स्रोत रहे हैं। विदेशी लेखक जैसे कर्नल टॉड डाड और टैस्सीटोरी इन कथाओं के शिल्प-नैपुण्य पर तो मुग्ध हुए ही हैं उनके वरना ब्रज के ऐतिहासिक प्रमाणों ने तो उन्हें अभिभूत कर दिया। ऐक्सन और स्मार्ट के बीरों की बात वहीं भूल गई। वहीं राजस्थान की मरुभूमि माटी में बलिदानी और स्वोत्सर्ग मिले। इन वीर कथानकों पर विकसित प्रचुर और विशाल कथा-साहित्य बंगाल से लेकर पंजाब-सिंध तक के कहानी साहित्य पर छा गया। बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना पर इस साहित्य ने मौलिक प्रभाव डाला।

राजस्थान के लेखकों ने भी इन कथानकों पर प्रचुर कथा-साहित्य रचा। कथा-काव्यों के रूप में, कथा-माध्यमों के रूप में तथा उपन्यास कहानियों के रूप में यहाँ के लेखकों ने बहुत सा साहित्य तैयार किया। सचाई, वीरता, त्याग, स्वाभिमान, प्रेम और साहस के अपूर्व दृष्टान्तों से इस समय का कथा-साहित्य ओत-प्रोत है। यह धारा बहुत बाद तक जारी रही और अब तक वह थोड़ी बहुत मात्रा में मिल जाती है।

राजस्थान के कथा-साहित्य के तृतीय उत्थान में वह आधुनिक कहानी आती है जिसकी सामग्री जन-जीवन के बहुविध चरित्रों के मन्थन से प्राप्त होती है। समाज की पृष्ठभूमि पर नित्य प्रति घटनेवाली घटनाओं से लेखक जहाँ कहीं मर्माहत होता है, वहीं उसे कहानी के बीज मिल जाते हैं। वह उसे साहित्य में संजो कर रखता है। मनोविज्ञान के संतुलन के मिश्रण से वह कथा-साहित्य का ऐसा धूपछाँही वस्त्र बुन कर रखती है, जो रोचक और चमत्कारजन्य तो होता ही है कला की अविस्मरणीय कृति भी होता है।

इस प्रकार की कहानियों का प्रारम्भ भारतीय साहित्य में अंग्रेजी साहित्य के संसर्ग से हुआ है सही, परन्तु राजस्थान में आते आते उसका स्वरूप प्रायः मौलिक बन गया है। कथा के टैकनीक की दृष्टि से, विचार सामग्री की दृष्टि से शैली की दृष्टि से यह आधुनिक कहानी का सही रूप प्रस्तुत करती है। इसमें राजनैतिक सामाजिक जीवन के भिन्न भिन्न वर्गों का चित्रण जीवन के नये मूल्यों का स्थिरीकरण करने की प्रबल आकांक्षा दिखाई देती है। ऐतिहासिक कथानक भी इस काल की कहानियों में गृहीत हुए हैं पर उनमें भी नये दृष्टिकोण का प्रवेश दिखाई देता है। इस काल में हिन्दी और राजस्थानी दोनों भाषाओं में कहानी साहित्य प्रचुर परिमाण में रचा गया है। इस काल के प्रमुख कहानीकारों में सर्व श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, चन्द्रकान्त व्यास, जगदीशप्रसाद "दीपक" डा० विष्णु अम्बालाल जोशी, जनार्दनराय नागर, सुन्दरलाल गर्ग, शंभुदयाल सक्सेना, मोहनसिंह सेंगर इत्यादि हैं। इन्होंने नयी शैली की टैकनीक की कहानियों का प्रारम्भ किया और राजस्थान की कहानी को नई दिशा की ओर मोड़ा।

राजस्थान ने भारत की आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास में भी प्रचुर योगदान दिया है। हिन्दी की लोकप्रियता तथा गद्य में बल आने पर आधुनिक पाश्चात्य शैली की कहानियाँ राजस्थान में लिखी जाने लगीं। भारतीय लोकजीवन भी नवीन दिशा की ओर प्रवाहित होने लगा। जयपुर निवासी पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने पाश्चात्य कथा-

शैली का प्रभाव अपनी तीन कहानियों में दिखाया। ये कहानी के क्षेत्र में सर्वथा नए प्रयोग थे।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी के पिता पंडित शिवराम व्याकरण आदि शास्त्रों के पंडित थे और जयपुर के महाराज सवाई रामसिंह जी के दरबारी थे। उन्हीं से उच्चसाहित्यिक संस्कार गुलेरी जी में आये थे। प्रारम्भ में गुलेरी जी ने अपने घर पर ही अपने विद्वान् पिता जी से शिक्षा प्राप्त की थी। बाल्यकाल से ही आपको संस्कृत का अभ्यास कराया गया था। आपको छोटी अवस्था से ही भाषण और लेखन का शौक था साहित्य प्रेम और देशप्रेम के महान् विचार विद्यमान थे। सन् १६०३ में आपने प्रयाग विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की थी। आपने अंग्रेजी का भी पर्याप्त अभ्यास कर लिया था। कप्तान गैरट के साथ इन्होंने अंग्रेजी में "दी जयपुर आबजर्वेटरी एण्ड इट्स बिल्डर" नामक ग्रन्थ लिखा था। सन् १६२० में गुलेरी जी काशीविश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हुए। आपने संस्कृत अंग्रेजी प्राकृत पाली बंगला मराठी आदि भाषाओं का अच्छा अध्ययन किया था तथा वैदिक साहित्य दर्शन और पुरातत्व का अनुशीलन किया था। राजस्थान के आप प्रथम सफल हिन्दी कहानीकार थे।

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी 'सुखमय जीवन" सन् १६११ में "भारत मित्र' में प्रकाशित हुई थी। "उसने कहा था' सरस्वती में १६१५ में प्रकाशित हुई। उनकी तीसरी कहानी "बुद्धू का काँटा" है जिसमें युवकों की असफलताओं का चित्रण है। यदि केवल तीन कहानियों की पूँजी पर कोई कहानीकार अमर हो सकता है तो वह गुलेरी जी ही थे। 'सुखमय जीवन' १६११ में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं दिनों प्रसाद जी की 'ग्राम' नामक कहानी 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। अतः गुलेरी जी को हम 'प्रसाद और प्रेमचन्द के साथ आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्मदाता भी मान सकते हैं। वे १६११ में हिन्दी कहानी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और चार वर्ष के अन्दर ही आपने ऐसी बेजोड़ कहानी "उसने कहा था' प्रस्तुत की जो आज तक हिन्दी कहानी जगत् में कीर्ति स्तम्भ बनकर स्थित हुई है।' यह प्रथम घटनात्मक या ऐतिहासिक शैली में लिखी गई है। कहीं कहीं आत्मकथा एवं कथोपकथन की भी पुट है। इसकी मुख्यता यह है कि लेखक ने बड़े कौशल से पात्रों के पूर्व जीवन, मनोभावों एवं अन्तःसंघर्ष को चित्रित किया है। भाषा सजीव, प्रवाहपूर्ण और मुहावरेदार है.

संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण है और कहीं कहीं पंजाबी के शब्दों की भी पुट है। यथार्थता की रक्षा के लिए पंजाब का वातावरण उत्पन्न किया गया है। पात्र पंजाबी हैं। वैसे ही उनके नाम हैं। चरित्रचित्रण में संकेतात्मक और कथोपकथनात्मक प्रणाली का अधिक प्रयोग किया गया है। कथानक तत्कालीन प्रथम महायुद्ध से सम्बन्धित है। युद्ध तथा उसमें होनेवाले संघर्षों की यथार्थ झांकी है। 'पुत्र तथा पति का कल्याण चाहनेवाली नारी की विनय यूरोप के प्रथम महायुद्ध का भीषण वातावरण तथा विशुद्ध प्रेम के लिए आदर्शबलिदान"— इन्हीं तत्वों को लेकर इस सफल कहानी का निर्माण हुआ है। यह हिन्दी की प्रथम पाश्चात्य ढंग की आधुनिक कहानी है।

"गुलेरी जी की रचनाएं हास, उपहास व्यंग्य करुण आदि भावों का ऐसा मनोहर चित्रण करती हैं कि वास्तविकता के प्रत्यक्ष दर्शन होने लगते हैं। इनकी तीनों कहानियों को हम हिन्दी साहित्य का अमूल्य रत्न कह सकते हैं। यदि यह कहा जाय कि इन कहानियों ने राजस्थान में नहीं प्रत्युत हिन्दी संसार भर को पाश्चात्य ढंग की कहानियां लिखने को प्रेरित किया, तो अत्युक्ति न होगी।

हिन्दी कहानी के उत्थान काल पर दृष्टि डालते हैं तो विदित होता है कि सन् १९२१ तक प्राय अनेक लेखक उभर आ चुके थे। प्रसाद प्रेमचन्द और 'उग्र" हिन्दी कहानी के कीर्तिस्तम्भ माने जाने लगे थे। उस युग के हिन्दी कहानीकारों को मुख्यत तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है १— प्रसाद का भावात्मक स्कूल २— प्रेमचन्द का यथार्थवादी स्कूल ३— अनुवाद स्कूल। राजस्थान के कहानीकार भी इन्हीं स्कूलों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

राजस्थान के श्री जयनारायण व्यास श्री जगदीशप्रसाद दीपक डा० विष्णु अम्बालाल जोशी श्री जनार्दनराय नागर, श्री सुन्दरलाल शर्मा और श्री जगदीशप्रसाद माथुर, कमल आदि सामाजिक यथार्थवादी प्रेमचन्द वर्ग के कहानी लेखक हैं। इन्होंने समाज की रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और सड़ी गली परम्पराओं पर व्यंग्य किए; समाज की अनेक समस्याओं का चित्रण किया; यथार्थ और आदर्श का समन्वय किया। इनका ढांचा पाश्चात्य साहित्य से लिया गया था पर आत्मा भारतीय थी। श्री जयनारायण व्यास ने आरम्भ में सफल कहानियां लिखी हैं। किन्तु राजनीति ने उनके कहानीकार की हत्या कर दी। श्री जगदीश प्रसाद "दीपक" सम्पादक "मीरां" राजस्थान के वयोवृद्ध हिन्दी साहित्य सेवी और ऐतिहासिक विषयों के लेखक हैं। इतिहास पर भी आपने कई शोध

पूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। "दीपक" जी भी राजनीति में फंसे रहे किन्तु लगातार साहित्य का निर्माण करते रहे। इतिहास में प्रवृत्ति होने से इनकी रुचि इतिहास सम्बन्धी नई नई खोजों की ओर हो गयी। फलत: उनकी ऐतिहासिक कहानियां निजी देन हैं। "राजपूत रमणियां" उनका एक प्रकाशित कहानी-संग्रह है। श्री जनार्दनराय नागर मनोविश्लेषक कहानीकार हैं। नागर जी की कहानियों में बौद्धिकता का अंश कुछ अधिक रहता है। इस पृष्ठभूमि में हम कहानीकार शम्भुदयाल सक्सेना के कहानी-साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे।

प्रयोग परिमाण और कहानी कला की दृष्टियों से श्री शम्भुदयाल सक्सेना ने राजस्थान की कहानीकला को आगे बढ़ाया है। आप प्रसाद-स्कूल के कहानीकार हैं। सक्सेना जी के १— सलाइयां २— सिगरेट ३— बन्दनवार ४— धूपछांह और ५— चित्ररेखा आदि कई कहानीसंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें प्रायः सामाजिक और भावात्मक कहानियां हैं जो हमारे आज के जीवन के हर पहलू को व्यक्त करती हैं। जितनी उन्हें पारिवारिक जीवन को व्यक्त करने में सफलता मिली है, उतनी अन्य कहानियों में नहीं। सक्सेना जी के साहित्य में जीवन और समाज की समस्याएं और भावनाएं हमारे आत्मचिंतन का विषय बन गईं। परिवारों तथा विविध गृहस्थों के दैनिक जीवन की विचित्रता और बहुलता की ओर सक्सेना जी प्रवृत्त हुए। मानव हृदय के अन्तर्जीवन के बहुत से पहलुओं का सफल चित्रण उन्होंने प्रस्तुत किया। इनका कहानी रचना-काल १९२३-२४ के आसपास से आरम्भ होता है।

इस सम्बन्ध में सक्सेना जी लिखते हैं —

"मुझमें कहानी लेखन का शौक १९२३-२४ के लगभग हुआ था। मैं सोचता था मुझे लेखक बनना है और अवश्य बनना है। बस मैं धीरे धीरे कुछ न कुछ लिखने लगा। वे उत्साह के दिन थे। ऐसे दिन जबकि संसार को उलट पुलट कर देने का आत्मविश्वास प्रत्येक युवक में जागृत रहता है। धीरे धीरे लेखक की कठिनाइयों से साक्षात् होने लगा। अब तक जीवन का स्वर्ण युग था ऐसा समय जबकि दुनिया सुनहले स्वप्नों से भरी हुई प्रतीत होती है। जब स्वप्न टूटा, व्यावहारिक जगत में आना पड़ा तो देखा कि लेखक उस ऊंचाई पर निवास नहीं करता जितना कि प्रायः उसके पात्रों को पढ़ने से मिला करता है और इसके भी अतिरिक्त हिन्दी लेखकों के दुर्भाग्य का तो ठिकाना नहीं।"— चित्रपट (प्रथम संस्करण— भूमिका पृष्ठ २)

सक्सेना जी ने जो कहानी साहित्य तैयार किया उसका आधार उनका निजी अनुभव यथार्थ जीवन का अनुभव और अपने निष्कर्ष थे। उन्होंने जैसा जीवन देखा, सुना, अनुभव किया वैसा ही कहानी के माध्यम से उतारा है। जिस जीवन से उसका निकट का परिचय है जिस वातावरण को उन्होंने अच्छी तरह देखा परखा है, वही उनकी कहानियों में पाया जाता है। उनका आधार वास्तविक जीवन तथा स्वपरित स्वानुभूत अनुभव हैं। कपोल कल्पना या गगनविहार से वे सदा बचे हैं। अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए सक्सेना जी ने लिखा है—

हम जब किसी लेखक का ग्रन्थ उठाते हैं, तो बहुधा जीवन का ऐसा मनोहर ससम्पन्न आकर्षक चित्र देखते हैं कि उसमें लेखक के निजी जीवन तथा आसपास के वातावरण से जरा भी परिचय नहीं पाते — अम्बर चमक रही धाम के पापे सुधांशु की शीतल किरणों का परदा डालकर वास्तविकता को दबा रखने से बहुधा बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं। लेखकों की दुर्दशा का कारण उनकी अपरिमित संख्या में पैदावार भी है और इसके उत्तरदायी हैं वही लेखक जो वास्तविकता पर इस प्रकार परदा डाले रहते हैं उस समय जितने लेखकों से मेरा परिचय हुआ उन सब में लेखक बनने की परम्परा आकांक्षा देखी। उनका रहन-सहन यद्यपि मृत्युलोक के कष्टों से पूर्ण था लेकिन उनके साहित्यिक आदर्श नन्दन-निकुंज में विहार करनेवालों से कम नहीं थे। जब तक बाहर भीतर एक-सा न हो तब तक लेखनी में विद्युत संचार कैसे हो ?

—"चित्रपट" भूमिका पृष्ठ १

सक्सेना जी ने प्रेम और आनन्द के स्थान पर जीवन के अभाव, पीड़ा दुःख-दैन्य असमर्थता कलह और वेदना के अधिक चित्र खींचे हैं। उनकी सहानुभूति दलित और पीड़ितों से अधिक है वे समाजवादी आदर्शों को मानते हैं प्रजातन्त्र के सिद्धान्त उनके अधिक निकट हैं। "परिवर्तन" शीर्षक कहानी का निर्धन किन्तु कुशाग्र बुद्धि हरीश उनका आदर्श है। वह बहुत ऊंचा उठता है, डिप्टी कलेक्टरी में चुना जाता है पर स्वदेश सेवा के लिए वह डिप्टी कलेक्टरी को अस्वीकार करता है। 'विधाता का परिहास" एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसमें एक पिता की ममता वात्सल्य और विचार का चित्र खींचा गया है। 'ममता का मन' में एक माँ के मोह का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है। वह अत्यधिक ममत्व के कारण जमती ही उठती है। मेरी बहियों में तीर्थ सम्मान' में इस पु आचारी पुत्र की अर्थ पिपासा और स्वार्थ की कहानी है। एक

मियाँ मोले भाले मजदूरों को १५-२० रुपया महीना पर नौकरी के लिए पसाला कोयले की खदान में ले जाते हैं। "अर्थ लोभ" में वे भोले व्यक्ति अपनी प्रियतमा तक की परवाह न कर खतरनाक काम करते हैं और कुछ तो अपने अंग भंग तक करा लेते हैं। इसमें एक करुण व्यथा भरी हुई है। इसी प्रकार 'रक्तासर' में एक गरीब कम्पोजीटर की तड़पती कलपती आत्मा की पुकार है। संसार की कटुता का चित्रण है। "नाव के पापी" में एक गरीब आदमी जो नाव को भंवर में से निकालने में सहायता करता है इसीलिए जल में फेंक दिया जाता है क्योंकि वह गरीब है और इसलिए पापी है। वे समझते हैं कि उसी पापी के कारण नाव डूब रही है।

इन्होंने ऐतिहासिक वीरों के चरित्रों को भी कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसी कहानियों के भी दो तीन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें कथा के मूलभाव को बड़ी ओजपूर्ण भाषा में विकसित करके चमत्कारोत्पादक बनाने का प्रयत्न देखा जाता है। भाषा का सौष्ठव इन कहानियों का प्राण है। इन कहानियों की कथावस्तु प्रायः ऐतिहासिक है परन्तु उसका विकास मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सरल और रोचक ढंग से इस प्रकार होता है कि उसके कार्य-कारण के सम्बन्ध का मेल बराबर बैठता जाता है। ये छोटी छोटी कहानियाँ अपना पृथक स्थान रखती हैं। इन कथानकों पर अन्य लेखकों ने भी रचनाएं की हैं पर सकसेना जी की लेखनी ने इन्हें अपूर्व रूप में प्रस्तुत किया है और वे साहित्य की स्थायी सम्पदा बन गई हैं।

सक्सेना जी का कहानी साहित्य विशाल है। उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। पौराणिक और वैदिक आख्यानों ग्रीस और रोम की लोकवार्ताओं के अनेक प्रसंगों को कलाकार की सहज कल्पना पुट के साथ उन्होंने बड़े रोचक रूप में उपस्थित किया है। उनकी ये रचनाएं विशेषतः बालकों के हाथों में रोचक कथा-साहित्य देने की उत्कट अभिलाषा की सूचक हैं। अपने क्षेत्र में इनका पर्याप्त प्रचार हुआ है। ये कहानियाँ 'सतयुग की कहानियाँ' 'वेदों की कहानियाँ' 'ऋषियों की कहानियाँ' आदि कई छोटे छोटे संग्रहों में मिलती हैं। '*पोपकालिक्स*' के *कथा प्रसंगों को कहानियों के* रूप में रोचक शैली और प्राणमयी भाषा में "नाव की कहानियाँ" नामक छोटी सी पुस्तक में दिया गया है। इन कहानियों का सांस्कृतिक-साहित्य निर्माण में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इन कथाओं के गठन में कहानी-कला का पूरी तरह निर्वाह किया गया है। आदि से अन्त तक कहानी की रोचकता में कोई कमी नहीं आने पाई है। उनमें प्रभावात्मक

विस्तार भी नहीं है। सक्सेना जी ने वैज्ञानिक विषयों पर भी कहानियां लिखने प्रयास किया है। आधुनिक विज्ञान ने कुछ मूल-तत्वों की खोज की है जो सृष्टि के आद माने जाते हैं। उनका ज्ञान कराने के लिए "बावने पुरखों की कहानी" नामक इस एक छोटी कहानी इसी कोटि की है।

इनकी छोटी बड़ी १०० से ऊपर कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं। स्थानाभाव सभी संग्रहों की कहानियों पर यहां विचार नहीं किया जा सकता। वे एक सफल और अनु कहानीकार हैं। मानव चरित्र के चितेरे के रूप में वे हमारे कथा-साहित्य में बहुत ऊं स्थान के अधिकारी हैं। उन्हें कथा शैली के मर्म का ज्ञान है। इसी में उनकी सफलत का रहस्य छिपा हुआ है। उन्होंने अपने 'धूपछांह' नामक कहानी संग्रह के आरम्भ कहानी की मीमांसा करते हुए कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं जिनसे स्पष्ट है कि "A fiction in all truth के माननेवाले कहानीकार हैं। वे लिखते हैं "कु लोग कहानियों को कल्पना प्रसूत होने के कारण मिथ्या मान लेते हैं। इसलिए वे उन पठन पाठन को उतना महत्व नहीं देते किन्तु यह धारणा भ्रान्त है। कहानी कल्पना प्रसूत होने पर भी सत्य होती है। उसमें जिस व्यापार का कल्पित चित्र खींचा जाता है उसे हम जीवन में नित्य होते हुए देखते हैं। किसी कल्पित नाम के साथ नित्य घटनेवाली घटनाएं जोड़ देने से ही वे मिथ्या हो जाती हैं, इसे कौन मानेगा? यही नहीं अतिरंजित अलौकिक अविश्वसनीय और अमानवीय घटना क्रम के बीच भी जीवन के सत्य का क्ष सदैव सुरक्षित रहता है।" सक्सेना जी की प्रतिभा अनेक ओर लगी है। पर उनक कहानीकार को हम नहीं भुला सकते। राजस्थान के कहानी के विकास को उन्होंने सर्वथा मौलिक देन दी है। उन्होंने अपनी कृतियों से कथा साहित्य के प्रशस्त पथ का निर्माण किया है। भावी कहानीकारों के लिए वे एक युग तक प्रेरणा के स्रोत रहेंगे।